वास्तु चिन्तामणि

रचयिता :

सिद्धांत रत्नाकर, ज्ञान योगी, सर्वोदयी संत, तीर्थोद्धारक

प्रज्ञाश्रमण श्री 108 आचार्य देवनन्दि जी महाराज

सम्पादक

नरेन्द्र कुमार बड़जात्या

छिन्दवाड़ा

श्री प्रज्ञाश्रमण दिगम्बर जैन संस्कृति न्यास

'ज्योति निलय' गरुड़ खांब चौक, इतवारी, नागपुर

गुरु गरिमा

तरूवर फल नहि खात हैं, नदिय न पीवे नीर।
परोपकार के कारणे, संतन धरा शरीर।।

वास्तव में सन्तों का जीवन परोपकार के लिए ही होता है। परमोपकारी, वात्सल्य मूर्ति, ज्ञान के अथाह सागर, परमपूज्य गुरुवर ज्ञानयोगी, प्रज्ञाश्रमण आचार्य 108 देवनन्दि जी महाराज ने वास्तु चिन्तामणि ग्रन्थ लिखकर श्रावकों के लिए महान उपकार किया है।

वे अल्पायु में ही जैनेश्वरी मुनि दीक्षा ग्रहण करके ध्यान, अध्ययन करते हुए तथा अपने आवश्यक कार्यों को संभालते हुए भी सदैव आत्म कल्याण तो करते ही हैं, पर हित में भी संलग्न रहते हैं। मन, वचन, काय पूर्वक सदैव सेवा एवं वैयावृत्ति के कार्य में तत्पर रहते हैं। आपके द्वारा जिनधर्म की महती प्रभावना हो रही है। आप स्व एवं पर दोनों का कल्याण कर रहे हैं। आप वात्सल्य, वैयावृत्ति, गुणग्राहकता, विनय आदि गुणों से विभूषित हैं। संघ का कुशल संचालन करते हुए तथा अपने आवश्यक कार्यों को करते हुए भी आपने समय निकालकर अनेकों अनेकों पुस्तकें लिखीं जिससे जिनवाणी माता की सेवा के साथ ही साथ जन-कल्याण भी हो रहा है। आपकी विलक्षण बुद्धि तर्क, प्रतिभा, विनय, क्षमाशील स्वभाव किसी को भी आपको अपना बना लेते हैं। आपने अनेकों दीक्षाएं दी हैं तथा समाधियां संपन्न कराई हैं। कचनेर चातुर्मास में पूज्य मुनि श्री 108 धर्मकीर्ति जी एवं पूज्य मुनि श्री 108 चारित्रसागर जी महाराज की सफलतापूर्वक सल्लेखना समाधि आपके ही आचार्यत्व में सम्पन्न हुई है।

जिनधर्म के प्रसार के साथ ही आप मानव उद्धार का कार्य भी कर रहे हैं। प्रस्तुत ग्रंथ वास्तुचिन्तामणि की रचना ऐसा ही कार्य है। इसका सदुपयोग करके पाठक अपनी चिन्ताओं को दूर कर शांति को प्राप्त करेगा।

यह मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे ऐसे महान गुणी गुरुवर का शिष्यत्व मिला। गुरुवर इसी भांति जिनधर्म की प्रभावना एवं स्वपर कल्याण करते हुए जगत में धर्म-ध्वजा फहराएं, यही कामना है।

आर्यिका कांतिश्री

श्री क्षेत्र कचनेर, दिनांक 20 जनवरी 96

कृति एवं कर्तृत्व

श्री परम गुरवे नमः

मानव जीवन के लिए तीन अनिवार्य आवश्यकताएं हैं : रोटी, कपड़ा एवं मकान। जिस प्रकार मोक्ष प्राप्ति के लिए रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र अनिवार्य हैं उसी प्राकर मानव के लिए रोटी कपड़ा और मकान संसारी अवस्था में अत्यंत आवश्यक है। अन्य प्राणी बिना वस्त्र एवं मकान के अपना जीवन यापन कर सकते हैं लेकिन मानव जाति को निवास के लिए गृह की आवश्यकता होती है। गृह में निवास करने के कारण ही उसे गृहस्थ कहा जाता है :

गृहे तिष्ठतीति गृहस्थः

जब गृह (अथवा मकान) का मानव जीवन में इतना महत्वपूर्ण स्थान है तो उसे स्वामी अथवा निवासी के लिए सुख समाधान दायक तो होना ही चाहिए। साथ ही निर्दोष भी रहना चाहिए। यदि वास्तु (गृह अथवा भवन) दोषयुक्त होगी तो उससे निवासी को विपरीत फल की प्राप्ति होती है। दोषयुक्त निर्मित वास्तु के प्रयोगकर्ता को अनेकों आपत्तियों का सामना करना पड़ता है तथा वह आकुल-व्याकुल हो जाता है।

जीवन के हर क्षेत्र में नियम पालन की आवश्यकता होती है। जब भी नियमों की मर्यादा लांघी जाती है तो उसके दुष्परिणाम अवश्य ही देखने को आते हैं। शासन के नियम भंग होने पर शासन दण्डित करता है। शारीरिक स्वास्थ्य नियमों के विरुद्ध आहार विहार करने पर शरीर रोगी हो जाता है, प्रकृति विरुद्ध कार्य करने पर प्रकृति दण्डित किए बिना नहीं रहती। इसी भांति वास्तु शास्त्र के नियमों के विपरीत यदि वास्तु निर्माण किया जाता है तो उससे भी अनेकानेक विपदाओं का सामना करना पड़ता है।

वर्तमान युग में मनुष्य वास्तुशास्त्र से सामान्यतया अनभिज्ञ है। शास्त्र के नियमों को ध्यान में रखे बिना जो भव्य विशाल इमारतें बनाई जाती हैं, उनके उपयोगकर्ता अनजाने में ही कष्ट पाकर खेद खिन्न होते हैं। जिस भांति किंपाक फल दृष्टि में आकर्षक तथा मधुर स्वादयुक्त होने पर भी विषाक्त

होने से त्याज्य हैं। उसी भांति दोषपूर्ण, नियम विरुद्ध निर्मित वास्तु विशाल एवं आकर्षक होने पर भी अंततः दुखदायक ही होती है। अतएव यह अत्यंत आवश्यक है कि निर्माण की जाने वाली वास्तु, वास्तु शास्त्र के नियमों को ध्यान में रखकर ही बनाई जाए।

प्रत्यक्ष ही हमें संसारी प्राणियों की दुखी अवस्था दृष्टिगोचर होती है। आर्थिक, मानसिक, शारीरिक दुखों से मनुष्य दुखी हो जाते हैं। पुत्रहीनता, कुपुत्र, कलहकारिणी पत्नी, धूर्त मित्र तथा स्वार्थी सम्बंधियों से सामान्यतः पीड़ा देखी जाती है। मनुष्य इनसे दुखी तो होता है किन्तु कारण नहीं खोज पाता। सुख की खोज में यत्र-तत्र भटकने पर भी सुख का कोई सूत्र उसके हस्तगत नहीं होता है। मनुष्य के इन दुखों का एक बहुत महत्वपूर्ण कारण है, दोषपूर्ण वास्तु में उसका निवास करना। दुकान, व्यापारिक भवन, उद्योग इत्यादि भवनों का विन्यास भी वास्तु शास्त्र के नियमों के अनुरुप होना अत्यंत आवश्यक है। ऐसा न करने से मनुष्य अनायास ही उलझनों में घिर जाता है।

परम दयालु, करुणा स्रोत, स्व पर हित साधन में तत्पर परम पूज्य गुरुवर्य आचार्यश्री 108 ज्ञानयोगी प्रज्ञाश्रमण देवनन्दि जी महाराज का लक्ष्य अनायास ही इस ओर गया। संसार के आकुलित, दुखी मनुष्यों की अवस्था पर आपने मनन किया। करुणा का स्रोत निःसृत हो उठा। मुनिवर का कोमल मन नवनीत की भांति संसार दुख की आंच से द्रवित हो उठा। आप का सारा जीवन परोपकार की उत्कृष्ट भावना से ओत-प्रोत है। सन्तों की शोभा परोपकार से ही है -

परोपकाराय सतां विभूतय

मानव का उपकार करने की उत्कट भावना को लेकर आपने वास्तु शास्त्र विषय पर गहन चिन्तवन किया। अनेकानेक शास्त्रों का अध्ययन किया। तदुपरांत आपके ज्ञान सागर से एक अमूल्य चिन्तामणि रत्न का उद्‌भव हुआ। अथक परिश्रम से प्राप्त यह चिन्तामणि रत्न समस्त मानवों की चिन्ताओं को हरण कर उन्हें अकल्पनीय सुख प्रदान करेगा इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है।

यहां यह उल्लेख करना प्रसंगोचित है कि पूज्य गुरुवर की लेखनी से पूर्व में भी अनेकों ग्रंथ निःसृत हुए हैं। णमोकार-विज्ञान, ज्ञान-विज्ञान, विवेक-विज्ञान, आहार विधि विज्ञान, मंत्रों की महिमा आदि लघु ग्रंथों के अतिरिक्त आपके द्वारा भक्तामर स्तोत्र पर पाँच खण्डों में अभूतपूर्व रचना हुई

है। ध्यान-जागरण ग्रंथ तो एक ऐतिहासिक कृति है जिसका उपयोग कर युगों-युगों तक श्रावक जन अपना आत्म कल्याण करने में समर्थ होंगे।

इस ग्रंथ में आपने वास्तु विषयक सभी सामग्री को प्रस्तुत किया है निर्दोष वास्तु को निर्माण कर मनुष्य कैसे अपना जीवन आनन्दमय बनाये तथा यदि उसके विद्यमान मकान में त्रुटियां हैं तो उनका निराकरण कैसे करें, इत्यादि सभी विषय इस ग्रंथ की उपयोगिता में वृद्धि करते हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पूज्य गुरुवर की यह कृति अपने आप में एक अद्वितीय बहुउपयोगी रचना सिद्ध होगी।

पूज्य गुरुवर का सारा जीवन परोपकार के लिए समर्पित है। किशोरावस्था में ही आप संसार, देह, भोगों से विरक्त हो गए। **परमपूज्य गणधराचार्य श्री 108 कुंथुसागर जी महाराज** की पारखी नजरों ने आपको परखा तथा आपके द्वारा जगत का कल्याण होगा। इस विचार से आपको बालक मुलायम चंद से मुनि देवनन्दि का स्वरूप दिया। कठिन तपस्या के साथ ही **परम् पूज्य आचार्य श्री 108 कनकनन्दि जी महाराज** के कुशल हस्तों ने इस रत्न को निखारा। परम पूज्य गुरुवर प्रज्ञाश्रमण आचार्य देवनन्दि जी महाराज ने अपने गुरुओं का यश वर्धन किया। निरंतर आपके द्वारा जिनवाणी माता की सेवा हो रही है। आप सदैव ज्ञान-ध्यान में लीन अपनी तप साधना तो करते ही हैं साथ ही स्व पर हित में सदैव तत्पर रहते हैं। वृद्ध आयु के साधुजनों की सेवा कर उनके सल्लेखना व्रत को सफलता पूर्वक सम्पादित कराते हैं।

ऐसे लोकोपकारी गुरू का आर्शीवाद जिसे भी मिल जाता है उसका जीवन धन्य हो जाता है। मेरा यह अहो भाग्य है कि जन्म-जन्मान्तरों के पुण्य फल स्वरुप मुझे परम पूज्य गुरुवर आचार्य 108 प्रज्ञाश्रमण देवनन्दि जी का सानिध्य प्राप्त हुआ तथा उन्होंने मुझ सदृश साधारण मनुष्य को भी अपने आर्शीवाद से धन्य किया मैं उनकी शिष्या बनकर कृतकृत्य हूं। मुझे सदैव उनका मार्गदर्शन मिलता रहे तथा बोधि, समाधि की प्राप्ति हो यही सतत् भावना है।

श्री क्षेत्र कचनेर
15.1.1996

आर्यिका सुमंगलाश्री

लेखकीय मनोगत

वास्तु चिन्तामणि ग्रंथ की रचना करते समय हमने श्रावकों अर्थात् सद्गृहस्थों की जीवन चर्या को लक्ष्य में रखा था। समस्त जैन वाङ्मय में धर्म को दो भागों में विभाजित किया जाता है-

1. अनगार अर्थात् निर्ग्रंथों या मुनियों के लिए धर्म
2. सागार अर्थात् गृहस्थों अथवा श्रावकों के लिए धर्म

जिनवाणी के अथाह सागर में श्रावकों की जीवन चर्या पर प्रकाश डालने वाले ग्रंथ श्रावकाचार ग्रंथ कहे जाते हैं। सागार धर्मामृत में पं. आशाधरजी लिखते हैं:

शृणोति गुर्वादिभ्यो धर्म मिति श्रावकः

सा.ध./स्वोपज्ञ टीका/1-15

जो श्रद्धापूर्वक गुरु आदि से धर्म श्रवण करता है, वह श्रावक है।

श्रावक वही है जो श्रद्धावान, विवेकवान एवं क्रियावान हो। ऐसा गृहस्थ ही परंपरा से मोक्ष मार्ग पर चलकर मुक्ति को प्राप्त करता है।

गृहस्थ अथवा सागार का अर्थ है गृहवासी या गृह सहित। ऐसा व्यक्ति निःसंदेह परिवार, आजीविका उपार्जन एवं अन्य लौकिक क्रियाओं में आबद्ध होता है। इनमें वह सुखी-दुखी भी होता है। ऐसे ही गृहस्थ अपना आचार विचार शुद्ध रखकर देव-पूजा आदि कर्तव्यों को करते हुए श्रावक (या सागार) धर्म का पालन करते हैं।

जो श्रावक आकुलता रहित होते हैं, वे अपने कर्तव्यों का यथाशक्ति सुचारु रूपेण पालन करते हैं किन्तु निरंतर कष्ट, चिन्ता कलह, रोग, दरिद्रता इत्यादि दुखों से आकुलित गृहस्थ अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर पाते।

प्राचीन ग्रंथ कषाय पाहुड़ में पृ. 82/100/2 में उल्लेख है -

दाणं पूजा सीलमुववासो चेदि सावयधम्मो

दान, पूजा, शील और उपवास ये चार श्रावक के धर्म हैं।

ऐसे गृहस्थों की आकुलता या दुखों के कारणों में दोषपूर्ण आवासगृह का भी प्रमुख स्थान है। इन दोषों से मुक्त वास्तु, उपयोगकर्ता को सुख-समाधान की प्राप्ति कराती है। पूर्व में श्रावक की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि श्रावक अपना मार्गदर्शन सद्गुरुओं से प्राप्त करता है। अतएव वास्तु विषय पर प्राचीन

जैनाचार्यों ने भी अनेकों ग्रंथों की रचना की है। श्रावकाचार के ग्रंथों में भी यथावसर महत्वपूर्ण दिशा-निर्देशन के द्वारा आचार्यों ने विषय स्पष्ट किया है। सभी आचार्यों की मूल भावना यही रही है कि श्रावक का जीवन निराकुल होवे।

वर्तमान में इस विषय पर सामान्यतः कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं होते हैं। परम गुरुभक्त युवारत्न श्री नीलमजी अजमेरा ने एक बार इसी प्रकार का प्रश्न उपस्थित किया कि जब जैन धर्मशास्त्रों में मन्त्र, तन्त्र, नक्षत्र विज्ञान, ज्योतिष इत्यादि विषयों पर ग्रंथ उपलब्ध हैं तो वास्तु सदृश महत्वपूर्ण विषय पर ग्रंथ क्यों नहीं हैं? उनका प्रश्न स्वाभाविक तो था ही, समयानुकूल भी था। वर्तमान काल में वास्तु शास्त्र पर अनेकों लेखकों के ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं। जैन आगम सम्मत ग्रंथ की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए मैंने इस विषय पर लेखनी प्रयोग करने का विचार किया।

सम्पूर्ण जैन वाङ्मय अथवा द्वादशांग वाणी का मूल सर्वज्ञ जिनेन्द्र प्रभु की दिव्य ध्वनि में है। भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण होने के पश्चात् छह शताब्दियों तक जिनवाणी का बृहद् ज्ञान श्रुति-स्मृति रुप में चलता रहा। भद्रबाहु अंतिम श्रुत केवली थे। उन्हें सम्पूर्ण द्वादशांग का ज्ञान था। काल के प्रभाव से ज्ञान क्षीण होने लगा। लगभग छह शताब्दियों के उपरांत शेष ज्ञान को महान आचार्य श्री धरषेण ने अपने सुशिष्यों को लिखवाना प्रारंभ किया। उसी परम्परा में आगे चलकर सभी विषयों पर ग्रंथों की रचना की गई। श्रावकाचार ग्रंथों का भी इनमें समावेश था। गृह वास्तु, मन्दिर वास्तु, पूजन, विधान इत्यादि ग्रंथों की भी रचना समय-समय पर की गई।

श्रावकाचार ग्रंथों में श्रावक या गृहस्थ को लक्ष्य में रखकर विविध ग्रंथों की रचना की गई हैं। श्रावक स्वयं तो धर्माचरण करता ही है साथ ही अपने द्वारा अर्जित धन से परिवार का पालन पोषण भी करता है। धर्म-कार्य जैसे पूजा, दान, वैयावृत्ति आदि कार्यों में भी उसका द्रव्य व्यय होता है। मुनि परम्परा को अबाधित रुप से चलाने के लिए सद्गृहस्थों का धर्मानुकूल आचरण अत्यंत आवश्यक है।

श्रावकाचार ग्रंथों में प्रमुख ग्रन्थ उमास्वामी श्रावकाचार में आचार्य श्री ने वास्तु संरचना में दिशाओं का उल्लेख किया है। गृह चैत्यालय एवं प्रतिमा के आकार आदि के विषय में भी विस्तृत विवरण दिया गया है। आचार्य सोमदेव के त्रिवर्णाचार में तथा कुन्दकुन्द श्रावकाचार एवं प्रतिष्ठा पाठ आदि ग्रंथों में वास्तु संरचनाओं का प्रकरणानुसार उल्लेख मिलता है। आचार्य वसुनन्दि कृत वस्तु विद्या एवं श्रावकाचार तथा सुखानन्द यति के ग्रंथ वास्तुशास्त्र में भी वास्तु

संरचनाओं का विवरण है। ठक्कर फेरु कृत वास्तुसार में भी वास्तु के विषय में पर्याप्त जानकारी मिलती है।

इस ग्रंथ रचना का मेरा मन्तव्य मात्र इतना ही है कि गृहस्थ निराकुल हों तथा शांतिपूर्वक दान, पूजा, शील एवं उपवास इन चार कर्तव्यों का अनुपालन कर सकें। जीवन यापन के लिए अति आवश्यक द्रव्य या धन का उपार्जन करने के लिए प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ स्वामी ने षट्कर्मों का उपदेश किया :

असि, मसि, कृषि, शिल्प, विद्या एवं वाणिज्य

वर्तमान युग के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव जी ने इसी भावना के अनुरुप उद्बोध दिया।

'ऋषि बनो या कृषि करो'

यद्यपि ये षट्कर्म सावद्य हैं किन्तु जीवन यापन के लिए अनिवार्य घटक हैं। अतएव श्रावक विवेक पूर्वक इन क्रियाओं को करें तथा अपना उपयोगी आत्मोन्नति रूप धर्म में लगाएं, यही मेरा लक्ष्य है। इन श्रावकों को वास्तु दोषों के निमित्त से निराकुलता हो तथा वे अपना उपयोग सत्कार्यों में लगा सकें, इसी भावना से इस ग्रंथ की रचना की गई है।

तमिल ग्रंथ कुरल काव्य में महान आचार्य श्री ऐलाचार्य (तिरुवल्लुवर) का कथन है कि -

यत्र धर्मस्य साम्राज्यं प्रेमाधिक्यञ्च दृश्यते।
तद्गृहे तोषपीयूषं सफलाश्च मनोरथाः।।

-कुरल 5/5

जिसके घर में स्नेह एवं प्रेम का निवास है, जिससे धर्म का साम्राज्य है, वह सम्पूर्णतया संतुष्ट रहता है, उसके सब उद्देश्य सफल होते हैं।

इसी भावना को ध्यान में रखकर निर्माण की गई वस्तु श्रेयस्कर है। वही घर अथवा आलय है, अन्य रचनाएं तो तृणवत् त्याज्य हैं।

किसी भी गृहस्थ का आवासगृह बनाने का लक्ष्य यह होना चाहिए कि उसके निवास कर्ता सुख, समाधान, संतोष के साथ जीवन यापन करें तथा धर्माचरण करते हुए मुनि-दान परंपरा का निर्वाह करें। श्रावकों का जीवन विवेक एवं श्रद्धा पर आधारित होना चाहिए।

प्रस्तुत रचना में रसोईघर, स्नानगृह, शौचालय, पुष्प वाटिका, वृक्षारोपण, कूपखनन, कृषि, उद्योग इत्यादि विषयों पर वास्तु संबंधी संकेत दिए गए हैं। इनके लेखन का मूल उद्देश्य सावद्य पोषण नहीं है। बल्कि श्रावकों के जीवन में निराकुलता तथा देवपूजा, गुरुभक्ति आदि का समावेश ही है। कुएं का

प्रकरण शुद्ध जल प्राप्ति के लिए है। पुष्प-वाटिका का उपयोग गृह सज्जा के साथ ही पूजनादि कार्यों हेतु पुष्प संचय भी है। शारीरिक शुद्धि के लिए स्नानागार एवं शौचालय की आवश्यकता होती है। गृहस्थों के लिए मानसिक शुद्धि के साथ शारीरिक शुद्धि भी परम आवश्यक है। इसके बिना देवपूजा, मुनि दान आदि कार्य नहीं किए जा सकते। सुस्वास्थ्य के लिए भी यह अनिवार्य है। जीवन यापन के लिए यद्यपि कृषि को प्राथमिकता दी गई है तथापि कीटनाशकों का निषेध भी किया है। अन्न प्राप्ति के लिए कृषि अनिवार्य कर्म है। विविध वस्तुओं के उत्पादन के लिए उद्योगों का संचालन भी अनिवार्य है। धनोपार्जन के लिए वाणिज्य अथवा सेवाकर्म अत्यंत आवश्यक है। सर्वत्र यही ध्यान रखना चाहिए कि हमारा क्रिया-कलाप विवेक पूर्वक हो तथा त्रस व स्थावर हिंसा का परहेज किया जाए।

गृह निर्माण के कार्यारम्भ करने से पूर्व यदि वास्तु शास्त्र के नियमों को भली प्रकार समझ लिया जाए तो यह स्वामी के लिए हितकारक होता है। एक अच्छी वास्तु का निर्माण स्वामी को सुख-समाधान तथा शांति प्रदान करता है।

उपयुक्त वास्तु का निर्माण करने के पूर्व निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए -

1. उपयुक्त दिशा का निर्धारण
2. उपयुक्त भूमि का चयन
3. उपयुक्त दिशाओं में रचना बिन्यास का क्रम
4. वास्तु का आकार एवं आयु (मजबूती)

वास्तु निर्माण का कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व भूमि का शोधन, परीक्षण इत्यादि कार्य कर लेना आवश्यक है। निर्माण सामग्री अपनी स्थिति के अनुरुप उत्कृष्ट किस्म की लेना लाभदायक सिद्ध होता है। भूमि का धरातल, क्षेत्र, परिकर इत्यादि का विचार करके ही निर्माण की जाने वाली वास्तु का उपयुक्त मानचित्र, अच्छे जानकार अथवा मानचित्रकार अथवा इंजीनियर से बनवाना चाहिए। कार्यारम्भ करने के पूर्व शिल्पकार के पास निर्माण से संबंधित सभी उपकरणों का होना आवश्यक है। प्राचीन काल में भी शिल्पकार इन उपकरणों का प्रयोग करते थे :-

1. दृष्टि सूत्र
2. गज
3. मूंज की डोरी
4. सूत का डोरा
5. अवलम्ब
6. गुनिया (काठ कोन)
7. साधणी (रेवल)
8. विलेख्य (प्रकार)

निर्माण कार्यारम्भ उचित मुहूर्त में किया जाना चाहिए। राशि, ग्रह, नक्षत्रों की अनुकूलता को ध्यान में रखकर किए गए निर्माण कार्यारम्भ से

सभी कार्य सहज ही सिद्ध होते जाते हैं। निर्मित वास्तु से अनायास ही सभी अनुकूलताएं प्राप्त होती जाती हैं। काष्ठ, घास से निर्मित वास्तु तथा तात्कालिक कार्य के अनुरुप निर्मित अस्थायी निर्माणों के लिए यह विचार आवश्यक नहीं है। वास्तु का निर्माण हो जाने के उपरांत श्री जिनेन्द्रदेव की आराधना-पूजा पूर्वक वास्तु-शान्ति विधान अवश्य ही कराना चाहिए, तदुपरांत ही गृहप्रवेश करना चाहिए।

वास्तु शास्त्र के इस ग्रंथ वास्तु चिन्तामणि में संदर्भित विषयों का पठन आपके लिए विशेष लाभदायक होगा फिर भी प्रसंगवश मैं कुछ संकेत यहां देना उपयुक्त समझता हूं :

1. गृह वास्तु के अग्रभाग की अपेक्षा पृष्ठभाग कुछ चौड़ा एवं ऊँचा होना श्रेयस्कर है।
2. दुकान वास्तु के अग्रभाग की अपेक्षा पृष्ठभाग सकरा होना आवश्यक है एवं आगे ऊँची व मध्य में समान होना अच्छा है।
3. वास्तु का मुख्य द्वार पूर्व में रखना सर्वश्रेष्ठ है।
4. रसोईघर आग्नेय दिशा में रखना सर्वोत्तम है।
5. भोजन कक्ष पश्चिम में रखें।
6. धनागार उत्तर दिशा में रखें।
7. चैत्यालय अथवा देवस्थान ईशान में बनाएं।
8. आंगन टेढ़ा-मेढ़ा अथवा षट्कोण, त्रिकोण न बनाएं।
9. धरातल समतल रखें।
10. वास्तु पुरुष चक्र सिद्धांत के अनुरुप वास्तु पुरुष के केश, मस्तक, हृदय तथा नाभि स्थान जहां आएं, वहां स्तम्भ न बनाएं।

इस प्रकार के नियमों का परिपालन यद्यपि प्रथम दृष्ट्या कठिन प्रतीत होता है, फिर भी अन्ततः श्रेयस्कर फल प्रदायक होने के कारण अनुकरणीय है। ऐसी वास्तु में निवास करने वाले गृहस्थ नैतिक जीवन के धारक होते हैं तथा धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थों को सिद्ध करने में समर्थ होते हुए अन्ततः मोक्ष पुरुषार्थ को निश्चय ही प्राप्त करते हैं। सद्गृहस्थों को उनके कर्तव्यों के पालन करने में उपयुक्त वास्तु सहायक बने, इसी भावना से ग्रंथ रचना का यह कार्य सम्पन्न किया है। सद्गृहस्थों के प्रमुख लक्षणों के विषय में आचार्य पद्मनन्दि कहते हैं -

आराध्यन्ते जिनेन्द्रा गुरुषु च विनति धार्मिकैः प्रीतिरूच्चैः।
पात्रेभ्योदानमापन्निहतजन कृते तच्च कारुण्य बुध्या।।

तत्वाभ्यासः स्वकीयरतिरमलं दर्शनं यत्र पूज्यं।
तद्गार्हस्थ्यं बुधानामितरदिह नितात्यागस्तदाद्य स्मृतः।।

– प.प. वि.अ. । गा. 23

जिस गृहस्थ अवस्था में जिनेन्द्र प्रभु की आराधना की जाती है, निर्ग्रंथ गुरुओं के प्रति विनय, धर्मात्माओं के प्रति प्रीति एवं वात्सल्य, पात्रों को दान, आपत्तिग्रस्त पुरुषों को दया बुद्धि से दान, तत्वों का परिशीलन, व्रतों व गृहस्थ धर्म से प्रेम तथा निर्मल सम्यग्दर्शन का धारण करना आदि सब कार्य किए जाते हैं, वही गृहस्थावस्था विद्वानों के द्वारा सराहनीय है।

इन लक्षणों को धारण करने वाले सद्गृहस्थ वास्तु दोषों के परिणामों से पीड़ित न हों, इस भावना को रखकर ही इस कृति की रचना की गई है।

इस ग्रन्थ के लेखन कार्य में सर्वाधिक समय, जगत के उद्धारकर्ता, तारनहार, प्रभु 1008 **चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्वामी** के श्री चरण सानिध्य में उनके सर्वमान्य अतिशय क्षेत्र श्री कचनेर जी (औरंगाबाद महा.) में व्यय किया। गणेशपुर एवं श्रीरामपुर (दोनों जि. अहमदनगर महा.) में भी पर्याप्त लेखन कार्य सम्पन्न हुआ। जनवरी से दिसंबर 1995 की कालावधि में इसका कार्य पूर्ण हुआ।

किसी भी कार्य को सफलता पूर्वक पूर्ण करने के लिए अनेक कारकों की आवश्यकता होती है। हमारी शिष्या विदुषी आर्यिका श्री 105 सुमंगलाश्री ने इस ग्रंथ के लेखन कार्य में निष्ठापूर्वक, समयानुकूल, पूर्ण सहकार्य किया है। तदर्थ उन्हें हमारा पूर्ण आशीर्वाद है। वे अपना उपयोग इसी तरह ज्ञानाराधना में लगाएं तथा संयम मार्ग पर दृढ़ता पूर्वक आचरण करते हुए आत्म सिद्धि की प्राप्ति करें।

लेखन कार्य करना जितना दुरुह होता है, ग्रन्थ की समायोजना एवं सम्पादन का कार्य उससे भी अधिक दुरुह होता है। इसके सम्पादन की प्रमुख भूमिका में देव-शास्त्र-गुरु के अनन्य आराधक, विद्वत्ता की भूमिका का निर्वाह करने वाले श्री नरेन्द्र कुमार जी जैन बड़जात्या ने इस कार्य के सम्पादन का भार संभालकर जटिल कार्य को सहजतम बना दिया है। अपनी परिवारिक व्यस्तताओं में रहने के बावजूद ग्रन्थ को प्रकाशित करवाने में अहम भूमिका निर्वाह की है मैं श्री 1008 चिन्तामणि पार्श्वनाथ भगवान से उनके सुख समृद्ध जीवन की मंगल कामना करता हुआ उन्हें शुभाशीर्वाद प्रदान करता हूं।

साथ ही गुरु भक्त श्री विनोद जोहरापुरकर जी आर्किटेक्ट को भी मेरा शुभाशीर्वाद है। इन्होंने इस वास्तु चिन्तामणि ग्रन्थ के लिए सभी चित्रों को

निस्वार्थ भावना से अल्पावधि में तैयार करके दिया है। इससे ग्रंथ की उपयोगिता में पर्याप्त वृद्धि हुई है। इस ग्रंथ की डिजाईनिंग एवं कम्पोजिंग का कार्य यथाशीघ्र श्री मनोहर लाल जैन एवं सुन्दर छपाई का कार्य श्री रवि जैन दीप प्रिंटर्स, नई दिल्ली ने शीघ्रता पूर्वक पूर्ण करके ग्रंथ प्रकाशन में सुन्दर योगदान दिया है। वे भी शुभाशीर्वाद के पात्र हैं।

ग्रंथ के प्रकाशन के लिए सक्रिय भूमिका श्री नीलमजी अजमेरा की है। उनके प्रयास एवं सहयोग सराहनीय हैं। उन्हें हमारा पूर्णाशीर्वाद है। वे आदर्श श्रावक बन, परम्परा से आत्म कल्याण को प्राप्त करें।

इस ग्रन्थ के लेखन, प्रकाशन इत्यादि कार्यों में जिन लोगों ने भी प्रत्यक्ष-परोक्ष सहयोग दिया है, उन भव्यजनों को हमारा आशीर्वाद है।

अन्ततः समस्त श्रावकों को हमारा आर्शीवाद है। यह ग्रंथ उनके लिए उपयोगी सिद्ध हो तथा वे सद्गृहस्थ बनकर धर्माचरण करें एवं उत्तरोत्तर उन्नति करें, यही मेरी भावना है।

आदि गुरु प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ स्वामी की अनुकम्पा
जगत में समस्त प्राणियों पर होवे।
जगत की चिन्ताओं को दूर करने वाले प्रभु चिन्तामणि पार्श्वनाथ
भगवान की कृपा समस्त जीवों पर बनी रहे।
गुरुदेव परम पूज्य गणधराचार्य श्री 108 कुंथुसागरजी महाराज
सदा जयवन्त होवें।
चिरकाल तक सदैव जिन शासन की प्रभावन होती रहे।
समस्त जीवों का कल्याण होवे, इसी शुभ भावना के साथ
मैं अपने मनोगत लेखन को विराम देता हूं।
अमृतदायिनी जिनवाणी मातेश्वरी की कृपादृष्टि हम
सब पर बनी रहे, यही भावना है,

प्रस्तुत ग्रंथ रचना में प्रमादवश कोई भूल रह गई हो तो विज्ञ पाठक उसे सुधारकर पढ़ें। ग्रंथकर्ता की भूलों पर ध्यान न देकर उसे संशोधन कर लेवें।

श्री क्षेत्र कचनेर
7 जनवरी 1996

प्रज्ञाश्रमण आचार्य देवनन्दि

सम्पादकीय निवेदन

परम पूज्य गुरुवर आचार्य श्री 108 प्रज्ञाश्रमण देवनन्दि जी महाराज की लेखनी से इस अमूल्य ग्रन्थ की रचना इस युग की अद्वितीय कृति है। इस ग्रन्थ में वास्तु शास्त्र से सम्बंधित लगभग सभी विषयों का उचित समावेश किया गया है। इस ग्रन्थ की उपयोगिता अत्यंत विशद है। आश्चर्य है कि वर्तमान में इस विषय पर अत्यल्प सामग्री उपलब्ध है। परम पूज्य गुरुवर के द्वारा रचित यह ग्रन्थ इस दिशा में महत्त्वपूर्ण तो है साथ ही उपयुक्त दिशा निर्देशक भी है।

स्वाभाविक रुप से पाठकों के मन में यह विचार उत्पन्न हो सकता है कि मुनि श्री को मात्र आत्मा से संबंधित ज्ञान का लक्ष्य रखकर ही ग्रन्थ-रचना करनी चाहिए। साधुओं को गृहस्थों के मकान आदि से रुचि रखने का क्या प्रयोजन है? वास्तव में साधुओं एवं श्रावकों (सद्गृहस्थों) का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। साधु जीवन गृहस्थ श्रावकों के बिना चलना असंभव है। आहार दान की क्रिया श्रावकों द्वारा ही सम्पन्न की जाती है। औषधिदान, शास्त्रदान आदि भी श्रावकों के द्वारा ही साधुओं को दिये जाते हैं। साधुओं को विहार की व्यवस्था भी सामान्यतया श्रावक ही करते हैं। श्रावक का यह कर्तव्य है कि वह धर्म मार्ग पर आरुढ़ मुनियों की उपासना एवं सेवा करे तथा आहारदानादि क्रियाओं के द्वारा संयममार्ग पर आरुढ़ महाव्रती साधुओं, आर्यिकाओं, क्षुल्लक, क्षुल्लिकाओं तथा गृहत्यागी व्रतियों को अपने व्रत पालन में सहायक बनें।

जब श्रावकों का साधुओं से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है तो साधुओं की भी श्रावकों पर असीम अनुकम्पा हो। वे अपने उपदेशों द्वारा श्रावकों को धर्म मार्ग पर चलने के लिए सत्प्रेरणा करें। कहा भी है -

'न धर्मो धार्मिकैर्विना'

धर्म, धार्मिकों के बगैर अस्तित्व में नहीं रह सकता। अतएव ऐसी परिस्थिति में धर्मप्राण श्रावकों के लिए मार्ग का उपदेश धर्मगुरु मुनि ही करते हैं। यदि श्रावक कलह, दरिद्रता, रोग, विकलांगता, मानसिक विक्षिप्तता इत्यादि दुखों से दुखी होंगे तो करुणामयी गुरुवर का ऐसा उपदेश देना आवश्यक है, जिसके अनुसरण से गृहस्थ निराकुल रुप से अपना गृहस्थ जीवन

पाल सकें तथा धर्मात्माओं एवं गुरुओं की सेवा कर अपना आत्म कल्याण कर सकें। गृहस्थों के सुख-दुख में यद्यपि मुनिजन आसक्त नहीं होते हैं किन्तु सामान्य दिशा निर्देश से गृहस्थों को निराकुल जीवन के लिए प्रेरणा अवश्य दे सकते हैं। यह उपयुक्त भी है तथा सम्प्रदायानुकूल। वांछनीय भी है।

पूज्यवर आचार्य श्री 108 प्रज्ञाश्रमण देवनन्दि जी महाराज तो करुणा के साक्षात् अवतार हैं। वात्सल्य मूर्ति आचार्य श्री ने श्रावकों के प्रति करुणा बुद्धि से ही इस विषय पर अपनी लेखनी का सदुपयोग किया है। वास्तु संरचना अर्थात् आवासगृह, भवन, मन्दिर, प्रसाद, दुकान इत्यादि का प्रयोग गृहस्थ सदैव करता है। वास्तुदोषों के रहने के कारण मनुष्य अनपेक्षित संकटों से घिरा रहता है। अनावश्यक परेशानियों से निरन्तर त्रस्त रहने के कारण गृहस्थ दुखी एवं तनावग्रस्त रहता है। आकुलित मन रहने से उसका ध्यान धार्मिक क्रियाओं में नहीं लगता है। फलत: वह उन्मार्गी होकर नाना प्रकार की मूढ़ताएं करता है। फिर भी वह शान्ति को प्राप्त नहीं करता है। शास्त्रों में वास्तु दोषों के कारण दुख एवं आकुलता का स्पष्ट उल्लेख है तथा गृहस्थों की आकुलता निवारण के लिए ही पूज्य आचार्य श्री ने इस ग्रंथ को लिखने का दुर्लभ उपक्रम किया है।

वास्तु चिन्तामणि नामक इस ग्रंथ के नाम से ही यह स्पष्ट है कि यह वास्तु के विवेचन का शास्त्र है। 'वास्तु' शब्द संस्कृत का शब्द है। इसका उल्लेख संस्कृत के हिन्दी कोष (रचयिता - वामन शिवराम आप्टे) में इस प्रकार किया है:

पुल्लिंग, नपुंसकलिंग के वस् धातु में तुण प्रत्यय लगकर वास्तु शब्द का निर्माण हुआ है। इसका अर्थ है- घर बनाने की जगह, भवन, भूखण्ड, जगह, घर, आवास, निवास, भूमि।

वास्तु शब्द का अर्थ जैन ज्ञान कोश (मराठी*) में इस प्रकार किया गया है- वास्तु का अर्थ घर, ग्राम या नगर है। घर तीन प्रकार के होते हैं -

1. खान - भूमि के नीचे बनाया गया तलघर
2. उच्छित - भूमि के ऊपर बनाया गया घर
3. खातोच्छित - तलघर सहित दुमंजिला घर

अतएव यह स्पष्ट है कि वास्तु शास्त्र में संदर्भित विषयों में गृह निर्माण एवं उसकी भूमि तथा आवास गृह से सम्बंधित विवेचन किया गया है। प्रस्तुत ग्रंथ में इन्हीं विषयों का सुन्दर विवेचन सरल सुबोध शैली में किया गया है।

* *जैन ज्ञान कोश खं. 4 पृ. 172 - घर, गांव, नगर यांना वास्तु म्हणतात। घर तीन प्रकार चे असतात 1. खान - भूमि खालील घर 2. उच्छित - भूमि वरील घर व 3. खातोच्छित - तळघरासह दुमजली घर।*

ग्रन्थकर्ता ने इसमें आवास भूमि तथा आवास आकार-प्रकार का वर्णन किया है। साथ ही सर्वाधिक उपकार की वार्ता यह है कि इस ग्रंथ में पूज्य आचार्य श्री ने भूमि तथा वास्तु संरचना के शुभ एवं अशुभ फलाफल का वर्णन किया है। ग्रंथकर्ता पूज्य आचार्य श्री ने आकस्मिक संकटों से बचने के लिए पूर्वाभास भी दिया है। यदि श्रावक (गृहस्थ) यथा शक्ति अपने वास्तु (आवासगृह, भूमि, व्यापारिक भवनादि) में उपयुक्त संशोधन करा लेवें तो उनकी प्रतिकूलताएं पुरुषार्थ से अनुकूलताओं में परिवर्तित हो सकती हैं।

ग्रन्थ परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ **वास्तुचिन्तामणि** में वास्तु से सम्बंधित सभी विषयों का परिचय देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। इस ग्रन्थ को ग्यारह खण्डों में विभाजित किया गया है। ग्रंथकर्ता ने प्रथम खण्ड में वास्तुशास्त्र की उपयोगिता एवं प्राचीनता का वर्णन किया है। **वास्तु परिचय** में तत्त्वार्थ सूत्र के संदर्भ से वास्तु शब्द का विवेचन परिग्रह के रूप में किया गया है। वास्तु अर्थात् भवनादिक संपदा, ये अचल संपति है तथा स्वामी एवं उपयोगकर्ता का ममत्व इनमें स्वभावत: रहता ही है। भवन, आवासगृह इत्यादि मनुष्य की मूल आवश्यकता है। अतएव उनके उपयोग से मनुष्य का सुख-दुख भी जुड़ा रहता है। आचार्य श्री ने इस प्रकरण में देवालयों एवं जिन प्रतिमाओं के संदर्भ में यह भी चर्चा की है कि अमुक प्रतिमा के कारण अतिशय होता है तथा अमुक प्रतिमा के समक्ष मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं। अथवा इसके विपरीत अमुक प्रतिमा या जिनालय के स्थापनकर्ता निर्वंश, दरिद्र, अकालमरणादि दुखों से दुखी हो गए, इन सब कारणों के मूल में वास्तुशास्त्र के सिद्धान्त ही हैं।

आगामी लेख में आपने **वास्तु का आधार** विषय पर चर्चा की है। इस प्रकरण में विज्ञान पक्ष का आश्रय लेकर पूज्यवर ने वास्तु संरचनाओं पर प्रभाव डालने वाली दो प्रमुख कारक शक्तियों की व्याख्या की है। दिशाओं का विभाजन भी इन्हीं के आधार पर किया गया है। प्रथम कारक सूर्य है जो कि पृथ्वी पर रहने वाले सभी प्राणियों के जीवन के लिए अनिवार्य कारण है। वायुमण्डलीय आक्सीजन जीवन के लिए अनिवार्य है। सूर्य प्रकाश की उपस्थिति में वनस्पतियाँ कार्बनडाईआक्साइड ग्रहण करती हैं। भोजन निर्माण क्रिया में वनस्पतियां आक्सीजन गैस छोड़ती हैं। सूर्य के अभाव में वनस्पतियों का अभाव हो जाएगा। फलस्वरूप आक्सीजन के अभाव में जीवन का ही अभाव हो जाएगा। सूर्य के उदय की दिशा पूर्व कहलाती है। सूर्यास्त की दिशा पश्चिम कहलाती है। सूर्योदय के समय की किरणों में सौम्यता होती है जबकि संध्या समय की प्रखर। इस कारण पूर्व एवं पश्चिम दिशा के प्रभाव से पृथक परिणाम देखे जाते हैं।

इसी प्रकरण में पृथ्वी की चुम्बकीय धाराओं एवं उत्तर दक्षिण ध्रुवों का उल्लेख किया गया है। ये चुम्बकीय धाराएं पृथ्वी के समस्त पदार्थों पर अपना असर डालती हैं। इस कारण उनकी अनुकूलता एवं प्रतिकूलता तथा उनका शुभाशुभ फल वास्तु शास्त्र का ही विषय है इस प्रकरण में वैज्ञानिक विचारधारा की चर्चा से यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि पूज्य गुरुदेव प्राचीन सिद्धान्तों के साथ ही आधुनिक विज्ञान में भी समान रुचि रखते हैं तथा उन्होंने निःसकोच अपनी लेखनी से इसका परिचय भी दिया है।

वास्तु विज्ञान एवं कर्म फल लेख में आचार्यश्री ने जैन सिद्धान्तों की कर्म व्यवस्था की चर्चा की है। आपने मनुष्य का भवितव्य कर्माधीन निरुपित किया है। साथ ही यह भी लिखा है कि अनुकूल या प्रतिकूल वास्तु की प्राप्ति शुभाशुभ कर्मों के उदय-विपाक में होती है। आपने इस संदर्भ में यह भी लिखा है कि उपयुक्त पुरुषार्थ करने से प्रतिकूल वास्तु को अपने अनुकूल बनाकर अपने कष्टों में न केवल कमी की जा सकती है वरन् उसे शुभफल प्राप्ति का निमित्त भी बनाया जा सकता है।

'वास्तु विज्ञान का प्रारम्भ' लेख वास्तु की प्राचीनता को प्रदर्शित करता है। वास्तु का निर्माण कर्मभूमि के आरम्भ में प्रथम तीर्थंकर देवाधिदेव आदिनाथ ऋषभदेव स्वामी के उपदेशों से प्रारम्भ हुआ। उन्होंने मनुष्यों को आजीविका के जिन षट्कर्मों का उपदेश दिया उनमें एक शिल्प कर्म भी है। भोगभूमि व्यवस्था में आलयांग जाति के कल्पवृक्षों से आवास गृहों की आपूर्ति का भी विवरण किया गया है। भरत चक्रवर्ती के 16 खण्ड के महल, नव निधि चौदह रत्नों का वर्णन भी इनमें नामोल्लेख के लिए किया गया है। तीर्थंकर की समवशरण सभा का विवरण भी पाठकों की जानकारी में वृद्धि करेगा। प्राचीन शिल्प कला वैभव की जानकारी भी इससे मिलेगी।

खण्ड द्वितीय में आचार्यश्री ने **भूमि से सम्बंधित विषयों का आख्यान** किया है। इनमें **भूमि का चयन** करने के लिए प्राचीन जैन सिद्धान्तों के अनुसार गज, कूर्म, दैत्य एवं नाग पृष्ठ भूमियों के भेद विभिन्न दिशाओं में चढ़ाव एवं उतार की अपेक्षा से किये गए हैं। आधुनिक वास्तुकारों का मत इनसे भिन्न नहीं है। इस खण्ड में **जैन ग्रन्थ वास्तुसार** की गाथाओं का प्रचुरता से उल्लेख किया गया है। **भूमि परीक्षण** के लिए सात प्राचीन विधियों का वर्णन दर्शनीय है। समरांगण सूत्र के अनुसार वर्णित भूमि के भेद स्पर्श की अपेक्षा से जानकर उपयुक्त भूमि का चयन करना इच्छित है। वृहत्संहिता में **भूमि की गंध** का भी वर्णन है तदनुसार **भूमि का परीक्षण** करना उपयुक्त

है। वास्तुसार प्र.1 गाथा 5 में वर्णानुसार पृथक-पृथक रंग की भूमि की उपयोगिता अपने आप में प्राचीन होते हुए भी अद्वितीय है।

प्रारम्भ से ही यह मान्यता रही है कि भूमि अशुद्ध होने से उस पर निर्मित भवन उपयोगकर्ता के लिए विशेष कष्टकर होते हैं। भूमि में अस्थि, कोयला आदि निकलना भी अशुभ माना जाता है। आवासगृह के अतिरिक्त देवालय निर्मित करते समय भी भूमि का चयन अत्यंत सावधानी से करना चाहिए। **दान में प्राप्त है, यह सोचकर यद्वा तद्वा अशुभ लक्षणों वाली भूमि पर कभी भी जिनालय निर्मित नहीं करना इष्ट है।** देवालय भूमि में अशुद्धि सारे ग्राम अथवा क्षेत्र को कष्टकारक होती देखी जाती है। अनेकों ऐसे स्थान हैं जहां भव्य जिनालय होने के उपरांत भी ग्राम वीरान हो गए। जो शेष बचे वे अवनति की ओर अग्रसर हुए। अतएवं भूमि शोधन अत्यावश्यक समझकर ही कार्यारम्भ करना चाहिए।

तृतीय खण्ड में **दिशा निर्धारण** प्रकरण के अन्तर्गत आचार्यश्री ने जहां प्राचीन विधि का वर्णन किया है, वहीं यह भी स्पष्ट लिखा है कि इस विधि की अपेक्षा वर्तमान चुम्बकीय सुई से दिशा ज्ञान करना सरल एवं व्यवहारिक है। दिशाओं का विचार, उनके स्वामी एवं उनका प्रभाव संक्षेप में वर्णित किया गया है। **भूखण्डों का उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य एवं अतिजघन्य वर्गों में विभाजन** सड़कों की अपेक्षा से किया गया है। नवीन भूखण्ड क्रय करने के पूर्व इनका ध्यान रखना क्रयकर्ता के लिए हितकर होगा, इसमें सन्देह नहीं है।

चतुर्थ खण्ड **वास्तु शास्त्र के प्राचीन सिद्धान्तों** पर विशेष प्रकाश डालता है। आपको आश्चर्य होगा कि स्तंभ, कक्ष, द्वार आदि में विविधता करके 16384 प्रकार के मकान बनाए जा सकते हैं। इस प्रकार के घर यद्यपि वर्तमान युग में बनाना कम ही संभव हो पाता है, फिर भी पाठकों की विशेष जानकारी के लिए ध्रुवादि सोलह तथा शांतवन आदि चौंसठ भेदों के नाम दिए गए हैं। ध्रुवादि घरों की स्थिति तथा उनके निवासकर्ता को मिलने वाले प्रभाव को अति संक्षेप में दर्शाया गया है।

प्राचीन शास्त्रों में अनेक स्थानों पर **गृह निर्माण** के संदर्भ में यह बतलाया गया है कि आवासगृह में कौन सा कक्ष किस जगह बनाया जाए। जैन दर्शन में श्रावकाचार ग्रंथों में प्रमुख उमास्वामी श्रावकाचार में श्लोक क्र. 112 तथा 113 दर्शनीय है। इनके अनुसार **पूर्व में श्रीगृह, आग्नेय में रसोईघर, दक्षिण में शयनकक्ष, नैऋत्य में शस्त्र गृह तथा प्रसूतिगृह,**

पश्चिम में भोजनगृह, वायव्य में धन एवं अन्न संग्रह तथा उत्तर में जलस्थान निर्मित करने की व्यवस्था वास्तु नियमों के अनुकूल है। इसका रेखाचित्र दृष्टव्य है।

ठक्कर फेरु कृत वास्तुसार में श्लोक क्र. 107 एवं 108 में भी भवन निर्माण की आयोजना प्रदर्शित है। इसका श्लोक एवं चित्र भी दृष्टव्य है। इसी तरह विश्वकर्मा प्रकाश, नादर संहिता, वाराहाचार्य कृत वृहत् संहिता, किरण तन्त्र आदि ग्रन्थों में वर्णित भवन आयोजनाओं का श्लोक तो दिया ही है साथ ही अर्थ स्पष्ट करने के लिए रेखाचित्र भी दिए हैं। वास्तु शास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों का आधार लेकर बने ये रेखाचित्र आधुनिक वास्तुकारों की विचारधारा के लगभग अनुकूल ही हैं।

वास्तु परिकर एवं वेध प्रकरण में वर्णित तथ्यों का अच्छी तरह अध्ययन कर तदनुसार भवन निर्माण करना स्वामी के लिए शुभ एवं कल्याणकारक सिद्ध होगा। भूखण्ड तक जाने का रास्ता तथा भूखण्ड के आसपास के परिकर का भी प्रभाव भवनस्वामी पर पड़ता है। यहां तक कि विशिष्ट दूरी पर देवालय भी विपरीत प्रभावकारी हो जाते हैं। वास्तु परिकर विचार में इसका वर्णन स्पष्ट है।

खण्ड पंचम **भूखण्ड प्रकरण** है। ये ऐसे भूखण्डों के लिए हैं जिनमें एक या दो पार्श्वों में सड़क है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में सड़क वाले भूखण्ड दिशाओं के नाम से उल्लेखित हैं। इनमें आधुनिक गृहों के निर्माण के लिए प्रसंगोचित सुझाव दिए गए हैं। प्रवेश की अपेक्षा तथा निर्माण कार्य की अपेक्षा क्या सावधानियां रखनी चाहिए, इनका स्पष्ट संकेत दिया गया है। मूल धारणा यह है कि पूर्वी पार्श्व की अपेक्षा पश्चिमी पार्श्व भारी होना चाहिए। भारी का आशय अधिक निर्माण से है। ईशान दिशा में कम से कम निर्माण हो जबकि नैऋत्य दिशा में भारी निर्माण हो। ईशान का तल नीचा हो जबकि नैऋत्य का ऊंचा। इसी भांति आग्नेय एवं वायव्य का भी तल ईशान से ऊंचा हो। कभी भी ईशान कोण काटा ना जाए। इसी भांति प्रत्येक प्रकार के भूखण्ड में प्रवेश निर्माणकार्य, सीढ़ी, चबूतरा, कम्पाउन्ड वाल, रिक्तभूमि, मार्गारम्भ, दरवाजे, फर्शतल, वाटिका, वृक्ष, कूप आदि की अपेक्षा से महत्वपूर्ण संकेत दिए गए हैं तथा इनके शुभाशुभ परिणाम भी वर्णित किए गए हैं।

सामान्यतया दक्षिण एवं नैऋत्य दिशा यम एवं दैत्य से सम्बन्धित समझी जाती हैं तथा लोग इन्हें सर्वथा अशुभ मानते हैं। किन्तु परिस्थिति वश ऐसे भूखण्ड, मकान या दुकान मिल जाते हैं जिन्हें त्याग करना असंभव होता है। यदि इन संकेतों को ध्यान में रखा जाए तो काफी हद तक दोष निवारण हो

जाता है। सही दिशाओं के संतुलित अनुपात में यदि निर्माण किया जाए तो निश्चय ही ये भूखण्ड जिनमें दक्षिण, पश्चिम या दोनों ओर सड़क हो, फायदेमंद साबित हो सकते हैं। एक पृथक प्रकरण सड़क की अपेक्षा प्रवेश द्वार निर्मित करने के संदर्भ में अत्यंत उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है।

षष्टम खण्ड **द्वार प्रकरण** में मुख्य द्वार बनाने की स्थितियों का विस्तार से वर्णन किया गया है। पूर्व द्वार विजय द्वार कहा जाता है। पश्चिमी द्वार मकर द्वार तथा दक्षिणी द्वार यम द्वार कहा जाता है, जबकि उत्तरी द्वार कुबेर द्वार। दरवाजों के विशद वर्णन से विषय एकदम स्पष्ट हो जाता है। राज वल्लभ ग्रंथ में वर्णित द्वार की **ऊंचाई एवं चौड़ाई** तथा उसके फलाफल का वर्णन भी आचार्यश्री ने अत्यंत सुगम शैली में किया है। **चौखट, देहरी तथा खिड़कियों का विचार** भी पृथक-पृथक प्रकरणों में कुशलतापूर्वक किया गया है।

रंगों का मनुष्यों के मन पर प्रभाव पड़ता है। आधुनिक विज्ञान भी इस सिद्धान्त को मान्यता देता है। किन रंगों का क्या प्रभाव होता है, यह **रंग योजना प्रकरण** में संकेलित है। यदि किसी कमरे में काला रंग किया जाए तो वह निवासी के लिए मन दूषित करने वाला तथा अशुभ होता है। यद्यपि प्राचीन ग्रंथों में थोड़े ही रंगों के नाम मिलते हैं, जबकि आजकल रासायनिक प्रक्रियाओं से निर्मित रंगों में अत्यधिक विवधता देखने को मिलती है। मूल रंगों के शुभाशुभ प्रभावों के अनुरुप ही मिश्रित रंगों का प्रभाव समझना चाहिए। अंतः **सज्जा आयोजना** में ऐसे चित्र लगाने का परामर्श है, जो मनोहारी हों। क्रोध, शोक, भय, ग्लानि, जुगुप्सा व्यक्त करने वाले चित्र नहीं लगाना चाहिए। वर्तमान में मॉडर्न आर्ट के नाम पर अजीब किस्म के चित्रों को लगाने का चलन हो गया है किन्तु लगातार मानसिक तनावों से इनका गहरा नाता देखा जाता है। मानसिक शांति एवं प्रसन्नता के लिए भयोत्पादक एवं चंचलता उत्पन्न करने वाले चित्र न लगायें। अति वैराग्य के चित्र भी घर में उदासी का वातावरण निर्मित करते हैं।

पुरानी सामग्री के प्रयोग का निषेध वास्तुसार एवं समरांगण सूत्रधार ग्रंथों में दिया गया है। कुछ विशिष्ट प्रकारों की लकड़ी का प्रयोग भी निषिद्ध किया गया है। आधुनिक युग में यथासंभव इनका पालन करना उपयुक्त है। वृक्षों का जीवन में बड़ा महत्व है। वास्तु विज्ञान के अनुसार पृथक-पृथक वृक्षों का गृह के समीप लगाने से शुभाशुभ परिणाम शास्त्रकारों ने वर्णित किया है। श्लोकार्थ के समझने के लिए इस प्रकरण में सारणी दी गई है। गृह अपशकुन का भी संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

अष्टम खण्ड में भवन की आवश्यकतानुसार पृथक-पृथक कक्ष एवं स्थान बनाने का व्यवहारिक निर्देशन किया गया है। विभिन्न कक्षों को अन्य स्थानों में बनाने के परिणाम भी दिए गए है। उदाहरण के लिए **रसोईघर** का सर्वोत्तम स्थान भवन का आग्नेय भाग है। **भारी सामान कक्ष** दक्षिण या नैऋत्य दिशा में रखना चाहिए। **पूजा कक्ष** ईशान में होना सर्वश्रेष्ठ है। इस प्रकार अलग-अलग प्रकरणों में **रसोईघर, शयन कक्ष, भारी सामान कक्ष, सीढ़ियां, शो केस, औषधि, अस्त्र, पालित पशु इत्यादि के पृथक-पृथक प्रकरण** हैं, जिनमें भूखण्ड की स्थिति के अनुसार इन कक्षों का निर्माण करना चाहिए। **गृहिणी प्रकरण** मे गृह-स्वामिनियों के लिए व्यवहारिक संकेत सुगम भाषा में वर्णित हैं। यद्यपि वर्तमान युग में पृथक से **प्रसूति कक्ष, शोक संवेदना कक्ष** अनावश्यक समझे जाते हैं किन्तु शास्त्र में प्राचीन काल की सामयिक आवश्यकताओं के अनुसार वर्णन किया गया है। राजभवन, प्रासाद, महल आदि विशाल संरचनाओं में कदाचित यह संभव भी हो सकता है।

स्नानगृह, शौचालय प्रत्येक घर में निर्मित किए जाते हैं किन्तु इनको अशुभ दिशाओं में निर्मित करना दुर्भाग्य को आमंत्रण से कम नहीं है। **कचरा एवं पत्थर-कोयले के ढेर** के लिए भी संकेत दिए हैं। **जल कूप प्रकरण** में न केवल जलकूप की स्थिति का परामर्श है वरन् जल शोधन विधि भी है जिनमें निर्देशित विधि से कुआं खोदने का स्थान निर्धारित करना आसान हो जाता है। **जल निकास विचार** भी दृष्टव्य है। **धरातल प्रकरण** विभिन्न दिशाओं में फर्श में ऊंचापन, नीचापन का शुभाशुभ फल निर्देशित करता है।

नवम खण्ड **गृह चैत्यालय** से संबंधित है। उत्तर भारत में गृह चैत्यालय की प्रथा कम हो गई है। गृहस्थ प्रतिमाएं घर के स्थान पर मन्दिर में ही रखना ठीक समझते हैं। किन्तु दक्षिण भारत में जैन धर्म की प्राचीन परम्पराएं आज भी जीवित हैं। सामान्यतः प्रत्येक जैन श्रावक के आवासगृह में एक कमरा जिन-प्रतिमा से युक्त होता है। जिसमें वह दैनिक पूजा-पाठ सामायिक इत्यादि क्रियाएं करता है। यह प्रकरण **जिन-प्रतिमाओं के आकार तथा उनके सदोष होने के फल** का वर्णन करता है। उमास्वामी श्रावकाचार में एक से ग्यारह अंगुल तक की प्रतिमाओं को ही घर में रखना उपयुक्त कहा है। दीवालपर चित्र आदि बना सकते हैं, किन्तु प्रतिमा स्थिर एवं दीवाल से चिपकी न हो। कलश चढ़ाने का भी स्पष्ट निषेध किया है, हां आमलसार चढ़ा सकते हैं। यह प्रकरण अत्यंत महत्वपूर्ण है। श्रावक किंचित् असावधानी से अनावश्यक दुख भोगता है। अतएव यह प्रकरण सबके लिए विशेष रुप से

पठनीय एवं अनुकरणीय है। इस प्रकरण में पूजा करते समय मुख किस ओर हो तथा दिशानुसार उसका फल क्या है, यह भी वर्णित किया गया है।

दशम प्रकरण में विविध उपयोगी विषयों पर विचार किया गया है। वास्तु विस्तार किस ओर करना, तैयार वास्तु खरीदना अथवा नहीं, वास्तु किराए पर देना या नहीं इत्यादि। इन प्रकरणों पर अन्य प्रकरणों में भी यथावसर संकेत दिए गए हैं

गृहस्थों की आजीविका या तो सेवा (सर्विस) से चलती है अथवा व्यापार, उद्योग या कृषि से। वास्तु शास्त्र का सिद्धान्त सर्वत्र लागू होता है चाहे वह कोई भी भवन या भूमि हो। **दुकान एवं व्यापारिक भवन के प्रकरण** में ऐसे संकेत दिए गए हैं जिनका अनुकरण करके दुकान में पर्याप्त लाभ अर्जित किया जा सकता है। दुकान का प्रकरण संक्षिप्त किन्तु दिशाबोधक है। **कारखाने के वास्तु विचार** में भी उपयुक्त संकेत दिए गए हैं। जैसे मशीनें दक्षिण से पश्चिम की ओर हों, विद्युत आपूर्ति आग्नेय से हो, ऊंचे पेड़ दक्षिण या पश्चिम में लगाएं वाटिका उत्तर या पूर्व में लगाएं इत्यादि। **कृषि सम्बंधी प्रकरण** से स्पष्टतः आचार्यश्री ने बहुस्थावर फसलों एवं कीटनाशकों के प्रयोग का निषेध किया है। अहिंसा एवं वात्सल्य के साक्षात् अवतार कीटनाशक आदि का समर्थन करें यह असंभव ही है।

एकादशम् प्रकरण में **ज्योतिष गणित** का वर्णन किया गया है। भारतीय शास्त्रों में सर्वत्र ज्योतिष का बड़ा महत्त्व माना जाता है। किसी भी धार्मिक कार्य अथवा वास्तु निर्माणादि कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व उपयुक्त मुहूर्त आदि निकाले जाते हैं। वास्तु निर्माणकर्ता की राशि के अनुरूप नक्षत्र आदि विचारकर वास्तु का शुभाशुभ ज्ञात किया जाता है। इस ग्रंथ में प्राचीन विधियों से वास्तु की आयु की गणना भी वर्णित की गई है। **शेषनाग चक्र, वत्स बल चक्र, वृषभ चक्र** आदि का भी ज्ञान गृहारम्भ के पूर्व किया जाता है। **गृह प्रवेश मुहूर्त** का भी विस्तृत उल्लेख पूज्य गुरुवर ने किया है। **वास्तुपुरुष चक्र** भी दर्शनीय है। वास्तुसार ग्रंथ में इस संबंध में भी प्रचुर गाथाएं मिलती हैं।

वास्तु निर्माण के उपरांत वास्तु पूजन का उल्लेख आवश्यक है। इस हेतु विविध प्रकार के वास्तु चक्रों का निर्माण किया जाता है। आचार्यों ने वास्तु पूजन विधान करके ही नवीन वास्तु में प्रवेश करने का उपदेश दिया है। वास्तु विधान का संकलन श्रीमद् आशाधरादि विरचित **श्री मज्जिनेन्द्र पूजापाठः** (सम्पादक स्वस्तिश्री आर्यव्रती कुलभूषण महाराज) से किया गया एवं पाठकों

के लिए अत्यंत उपयोगी समझकर इसे प.पू. श्री 108 कुन्थुसागर जी महाराज ने हिन्दी पद्यानुवाद करके जनोपयोगी बना दिया है। मैं पूज्य गुरुवर का अत्यन्त ऋणी हूँ जो उन्होंने इसे प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की। **वास्तु पूजन** के लिए वास्तु चक्रों के चित्र दिए गए हैं। आचार्य वसुनन्दि कृत प्रतिष्ठासार में इक्यासी पद का वास्तु चक्र बनाकर पूजा करने का उपदेश दिया है। यह अनुकरणीय भी है। उनचास पद का वास्तु चक्र बनाकर भी मंडल विधान किया जाता है। सही रीति से वास्तु पूजन कर **गृह/वास्तु शान्ति** कराकर ही शुभमुहूर्त में गृह प्रवेश करना उपयोगकर्ता के लिए शुभ है।

अतएव यह स्पष्ट है कि वास्तु शास्त्र के सभी पहलुओं पर पूज्य आचार्य श्री ने समुचित प्रकाश डाला है। आपने अपनी करुणा बुद्धि से श्रावकजनों के हितार्थ यह उद्यम किया है। आचार्य श्री के इस कर्तृत्व की जितनी भी स्तुति की जाए, कम है। प्राचीन काल में यद्यपि श्रावकाचार विषयों पर अनेकानेक महान आचार्यों ने अनेकों महान एवं लघु ग्रंथ लिखे। किन्तु श्रावक के निवास, गृह चैत्यालय एवं आजीविका स्थान पर अलग से शास्त्र कदाचित् अत्यंत दुर्लभ है। पूज्य आचार्यश्री ने अपनी गंभीर लेखनी से इस कमी को पूरा किया है। उल्लेखनीय है कि गत सात सौ वर्षों में इस विषय पर मात्र एक ग्रन्थ ठक्कर फेरु कृत **वास्तुसार** ही पृथक रुप से वास्तु पर लिखा हुआ वर्तमान युग में उपलब्ध है। वह भी काफी पहले प्रकाशित हुआ था। वर्तमान युग की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए पूज्य आचार्य श्री ने इस कृति की रचना की है। वास्तु शास्त्र के सभी अंगों का निरुपण करके **पूज्य गुरुवर आचार्य श्री 108 प्रज्ञाश्रमण देवनन्दि जी महाराज** ने न केवल एक अद्वितीय कृति प्रस्तुत की है बल्कि साथ ही साथ **प्रज्ञाश्रमण** उपाधि, जो उन्हें **परमपूज्य गणधराचार्य श्री 108 कुंथुसागर जी महाराज** ने वात्सल्य पूर्वक दी थी, उस उपाधि को भी सार्थक किया है।

प्रस्तुत ग्रंथ के लिए सामग्री तैयार करना भी अत्यंत जटिल कार्य था। प्राचीन ग्रंथों से सामग्री का संचयन करने में संघस्थ पूज्य आर्यिका श्री 105 सुमंगलाश्री माताजी ने भी पर्याप्त सहकार्य किया। संस्कृत एवं प्राकृत गाथाओं का संकलन एवं संशोधन करने में आपका मार्गदर्शन अत्यंत सराहनीय है। आप परम विदुषी हैं तथा जिनवाणी के मर्म को समझने में समर्थ हैं। चारों अनुयोगों के कठिन से कठिन विषयों को आप सहजता से ही समझा देती हैं। मेरी कामना है कि आपके द्वारा भविष्य में भी जिनवाणी माता की सेवा हो तथा आप शीघ्र ही भवबंधन से मुक्त होकर मुक्तिलक्ष्मी को प्राप्त करें।

इस ग्रंथ को उपयोगी बनाने के लिए रेखाचित्रों तथा भवनों के मानचित्रों की आवश्यकता थी। इस जटिल श्रम साध्य तथा तकनीकी दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य को करने में सक्षम आर्किटेक्ट का कार्य पूज्य गुरुवर के अनन्य भक्त श्री विनोद जोहरापुरकर जी, नागपुर ने सम्पन्न किया। आप एक जाने माने आर्किटेक्ट हैं तथा अपने अतिव्यस्त समय में से भी समय निकालकर यह हिमालय सरीखा महान कार्य अल्प समय में सम्पन्न किया है। जो कार्य कई महीनों में भी सम्पन्न नहीं हो पाता, उसे कुछ ही सप्ताहों में पर्याप्त कुशलता के साथ पूरा कर दिया। उनके इस कार्य की जितनी भी सराहना की जाए, वह कम ही है। श्री 1008 चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्वामी की निरन्तर कृपा उन पर बनी रहे, यही भावना है।

मैं इस ग्रंथ के प्रकाशन के प्रमुख आधार स्तम्भ सफल युवा उद्योगपति परमगुरुभक्त श्रावकरत्न श्री नीलम कुमार जी अजमेरा, उस्मानाबाद के प्रति भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करना कर्तव्य समझता हूं। आपने इस ग्रंथ के अति जटिल एवं व्ययसाध्य कार्य को प्रकाशन की समस्त राशि देकर अति सुगम कर दिया। श्री नीलमजी परमपूज्य गुरुदेव आचार्य श्री 108 प्रज्ञाश्रमण देवनन्दि जी महाराज के अनन्य भक्त हैं। आपने सदैव ही गुरु चरणों में अपना सब कुछ अर्पण करने की उत्कृष्ट भावना की है। आपकी गुरु भक्ति नवयुवकों के लिए प्रेरणा स्तम्भ सदृश है। आपकी माताश्री कंचनबाई की प्रेरणा आपको सदैव जैनधर्म के प्रति भक्ति बनाए रखने में कारण रही। साथ ही माताश्री की प्रेरणा से आपने अनेकों समाज हितकारी कार्यों को सहज भावना से सम्पादित किया है।

श्री नीलमजी भारतवर्षीय दि. जैन महासभा के प्रमुख आधार स्तम्भों में से हैं। आपके द्वारा अनेक विद्यार्थियों को शिक्षण हेतु पूर्ण सहायता दी जाती है। अनेक छात्र उच्च शिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। तीर्थ क्षेत्रों की सहायता में आप सदा अग्रणी रहे हैं। सामाजिक सेवा की प्रेरणा से ओतप्रोत नीलमजी ने लातूर व उमरगा के भूकम्प पीड़ितों की जो सहायता की है, वह अनेक संस्थाएं मिलकर भी नहीं कर पाईं। आपने अनेक साधर्मी भाईयों को रोजगार की व्यवस्था कर उन्हें आर्थिक संकट से उबारा है। ऐसे युवा रत्न नीलमजी परमपूज्य गुरुदेव के प्रति सदैव अर्पित रहें तथा पूज्य गुरुदेव की उन पर असीम कृपा बनी रहे, यही आत्मीय भावना है।

श्री प्रज्ञाश्रमण दिगम्बर जैन संस्कृति न्यास के प्रमुख आधार श्री नीलमजी उत्तरोत्तर प्रगति करें, जिनेन्द्र प्रभु की अनन्त कृपा उन पर बनी रहे, यही भावना मैं सदैव व्यक्त करता हूं।

मेरा परमगुरुवर्य आचार्य श्री 108 प्रज्ञाश्रमण देवनन्दि जी महाराज के पावन चरण कमलों में बारम्बार नमोस्तु है। मैं उनकी इस कृपा से कृतज्ञ हूं कि उन्होंने मुझ सदृश पामर को अपने चरणों में स्थान दिया तथा इस ग्रंथ के सम्पादन का दुरूह कार्य सौंपा। मैंने अपनी ओर से यथाशक्ति प्रयत्न किया है कि कृति अपने उद्देश्य में पूर्ण हो। फिर भी ज्ञान का सागर अथाह है तथा मुझ सदृश अल्पमति से कोई भूल हुई हो तो पाठक उसे सुधारकर पढ़ें। यदि पाठकों को इस कृति से कुछ भी लाभ हुआ तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूंगा।

नरेन्द्र कुमार बड़जात्या

छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
दिनांक 24 जनवरी 1996

प्रकाशकीय

परम पूज्य गुरुवर मुनि श्री आचार्य 108 प्रज्ञाश्रमण देवनन्दि जी महाराज के कर कमलों से रचित यह अद्वितीय कृति आपके हाथों में प्रस्तुत कर मुझे हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। परमपूज्य गुरुदेव आचार्य श्री ने प्रस्तुत ग्रंथ वास्तु चिन्तामणि की रचना कर समाज का अत्यधिक उपकार किया है। मैं उनके चरण कमलों में सदैव नतमस्तक हूं। मेरा उन्हें बारम्बार नमोस्तु।

वास्तुशास्त्र संबंधित दोषों के कारण प्रगति रुक जाती है। हानि, अपघात, कलह, रोग इत्यादि कष्टों में वास्तु दोष भी प्रमुख कारण माने जाते हैं। जैनेतर ग्रंथों का अवलोकन करने पर मुझे लगा कि जैन धर्म में भी वास्तु शास्त्र विषय पर कोई ग्रंथ अवश्य होना चाहिए। विज्ञजनों से चर्चा करने पर ज्ञात हुआ कि वर्तमान में इस विषय पर जैन शास्त्रों में कोई भी ग्रंथ पृथक से उपलब्ध नहीं हैं। मुझे गुरुवर पर पूर्ण आस्था थी। मुझे लगा कि यदि पूज्य गुरुवर की लेखनी से इस विषय पर कोई ग्रंथ रचा जाये तो बड़े सौभाग्य की बात होगी तथा सभी श्रावकों को, जैन-जैनेतर पाठकों को एक मार्ग दर्शक ग्रंथ की प्राप्ति होगी। इस ग्रंथ से पाठक अपने वास्तु दोषों को समझकर उसका निवारण करेंगे तथा अपनी परेशानियों से मुक्त होंगे।

यह मेरा असीम सौभाग्य है कि पूज्यवर ने मेरी विनती सुनी तथा उनके अद्भुत ज्ञान एवं श्रम साध्य पुरुषार्थ के परिणाम स्वरुप इस 'वास्तु चिन्तामणि' ग्रंथ की रचना हुई। पूज्यवर के इस कार्य का जितना भी गुणगान किया जाये, वह अल्प ही है। इस कार्य से विशेष कर उन पाठकों को लाभ होगा जो हिन्दी भाषी हैं। वास्तु शास्त्र के गहन ज्ञान से अनभिज्ञ पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

मेरी हार्दिक भावना थी कि गुरुदेव की यह कृति जन-जन तक पहुंचे तथा जैन-जैनेतर सभी पाठक इसके ज्ञान से लाभ लें। सर्वजन-सुलभता की दृष्टि से मैंने यथा-शक्ति अपने द्रव्य का सदुपयोग गुरु-चरण प्रसाद समझकर किया है। मैं इस अवसर पर पूज्य गुरुदेव के प्रति कृतज्ञता प्रगट करते हुए यह भावना करता हूं कि उनका मंगल सानिध्य हम सबको निरन्तर प्राप्त हो तथा उनके आशीषों की छाया तले हम निराकुल आनंदमय जीवन की प्राप्ति कर आत्म कल्याण करें।

उस्मानाबाद
नीलम कुमार अजमेरा

दिनांक 16 जनवरी 1996

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
आशीर्वचन	*viii*
गुरुगरिमा	*xv*
कृति एवं कर्तृत्व	*xvi*
लेखकीय मनोगत	*xix*
सम्पादकीय निवेदन	*xxvi*
प्रकाशकीय	*xxxviii*
खण्ड प्रथम	
1. मंगलाचरण	1
2. वास्तु परिचय	3
3. वास्तु विज्ञान का आधार	7
4. वास्तु विज्ञान एवं कर्मफल	10
5. वास्तु विज्ञान का प्रारम्भ	12
खण्ड द्वितीय	
1. भूमि का चयन	17
2. भूमि परीक्षण विचार	20
3. भूमि की गंध	24
4. भूमि का वर्ण	25
5. भूमि का स्पर्श	26
6. भूमि शोधन विचार	27
7. भूमि का आकार	30
खण्ड तृतीय	
1. दिशा निर्धारण	32
2. वास्तु का दिशा विचार	35
3. दिशाओं का शुभाशुभ विचार	37
4. भूखण्डों का वर्गीकरण	38
खण्ड चतुर्थ	
1. वास्तु के प्रकार: प्राचीन सिद्धांत	47
2. वास्तु निर्माण आयोजना	60
3. वास्तु निर्माण का आकार	68

4. समभाग प्रकरण 70
5. वेध प्रकरण 71
6. वास्तु परिकर विचार 76
7. वास्तु का परकोटा 78
8. जमीन या वास्तु का रास्ता 80
9. भित्ति प्रकरण 81

खण्ड पंचम

1. वास्तुशास्त्र : आधुनिक परिप्रेक्ष्य में 82
2. ईशान भूखण्ड 85
3. पूर्व भूखण्ड 89
4. आग्नेय भूखण्ड 92
5. दक्षिण भूखण्ड 98
6. नैऋत्य भूखण्ड 101
7. पश्चिम भूखण्ड 107
8. वायव्य भूखण्ड 110
9. उत्तरी भूखण्ड 117

खण्ड षष्ठम

1. शिल्पकार के सहायक उपकरण 120
2. द्वार प्रकरण 123
3. द्वार की ऊंचाई एवं चौड़ाई का विचार 128
4. पथ एवं प्रवेश विचार 131
5. चौखट एवं देहरी विचार 132

खण्ड सप्तम

1. खिड़कियां 133
2. वास्तु की रंग योजना 134
3. अंत: सज्जा आयोजना 135
4. पुरानी सामग्री प्रयोग का निषेध 136
5. विभिन्न लकड़ी काम में लेने का निषेध 137
6. वृक्ष प्रकरण 138
7. गृह अपशकुन विचार 141

खण्ड अष्टम

1. रसोईघर 142
2. शयन कक्ष 145
3. भारी सामान कक्ष 148

4. सोपान 149
5. आलमारी तथा शोकेस रखने का स्थान 152
6. औषधि कक्ष 152
7. गृहिणी प्रकरण 153
8. दही मथने का स्थान 154
9. प्रसूत कक्ष 154
10. पाले गए पशु रखने का स्थान 155
11. धन संपत्ति कक्ष 155
12. शोक संवेदना कक्ष 156
13. स्नान गृह 156
14. शौचालय एवं शौचकूप 158
15. चौक 161
16. भोजन कक्ष 161
17. धनधान्य भंडार कक्ष 161
18. बैठक कक्ष 162
19. वास्तु में रिक्त स्थान का महत्व 163
20. तलघर 163
21. पिछवाड़ा एवं सेवक गृह 164
22. कचरा घर 167
23. जल एवं जलकूप विचार 169
24. भूमि जल शोधन विधि 172
25. जल निकास विचार 173
26. धरातल प्रकरण 175

खण्ड नवम

1. गृह चैत्यालय 178
2. गृह चैत्यालय प्रतिमा प्रकरण 181
3. गृह चैत्यालय एवं जिनालय में सदोष प्रतिमा का फल 183
4. पूजा करने की दिशा का फल 185
5. देवस्थान विचार 186

खण्ड दशम

1. वास्तु विस्तार प्रकरण 187
2. तैयार वास्तु का क्रय विचार 188

3. वास्तु किराये पर देना 189
4. दुकान एवं व्यापारिक भवन प्रकरण 190
5. उद्योग वास्तु विचार 195
6. कृषि भूमि का वास्तु विचार 199

खण्ड एकादशम्

1. वास्तु ज्योतिष गणित 201
2. वास्तु का आयु विचार 207
3. वास्तु की आय 209
4. गृहारम्भ मुहूर्त मास प्रकरण 213
5. राशि शुभाशुभ प्रकरण 214
6. गृहारम्भ कार्य में नक्षत्र विचार 215
7. खात लग्न नक्षत्र विचार 217
8. शेषनाग (राहू) चक्र विचार 219
9. शेषनाग चक्र बनने की विधि 220
10. वत्सबल प्रकरण 222
11. गृहारम्भ में वृषभ वास्तु चक्र 224
12. गृह प्रवेश समय विचार 225
13. वास्तु पुरुष चक्र प्रकरण 228

उपसंहार 231

खण्ड द्वादशम्

1. वास्तु पूजन 233
2. चौसठ पद के वास्तु चक्र का स्वरूप 235
3. इक्यासी पद का वास्तु चक्र 235
4. सौ पद का वास्तु चक्र 236
5. उनचास पद का वास्तु चक्र 236
6. वास्तु विधान करने की विधि 238
7. विधान हेतु पूजन सामग्री 238
8. पंचामृत अभिषेक की सामग्री 238
9. वास्तु देवता के नैवेद्य पदार्थ 239
10. सकलीकरण 249
11. मंगल कलश स्थापना 251
12. अखंड दीप स्थापना 251
13. अरहंत पूजा 255
14. वास्तु देव पूजा 258
15. शान्ति हवन विधि 276

卐 ॐ जिनाय नमः 卐

धर्म तीर्थ के कर्ता जिनवर, सुरासुरेन्द्र से वन्दित हैं।
घाति कर्म जो रहित हुए हैं, वर्धमान सिंह अंकित हैं।।
आदि वीर को नमस्कार कर, वास्तु सार को लिखता हूं।
करो अगार की रचना इससे, उभय लोक सुख मिलता है।।

वास्तु परिचय

संसार में मनुष्य जाति सभ्यता के शिखर पर मानी जाती है। तिर्यंच अर्थात् मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणी स्वयं का आवास स्थान बनाने में सामान्यतः असमर्थ होते हैं तथा प्रकृति प्रदत्त स्थानों पर निवास करते हैं। पक्षी घोंसले बनाकर, मूषक आदि बिल बनाकर तथा मधुमक्खियां छत्ता बनाकर अपना आवास करती हैं मनुष्य चूंकि इन सब प्राणियों से काफी अधिक ज्ञानवान तथा क्रियावान होता है अतएव उसकी आवास आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे मकान, भवन प्रासाद, महल, कुटीर आदि की आवश्यकता होती है। आवास सभी प्राणियों की मूल आवश्यकता है। वायु, जल, अन्न, वस्त्र आदि भी इसी भांति मनुष्य के जीवन के मूलाधार हैं।

मनुष्य अपने आवास गृहों का निर्माण धरातल पर मिट्टी, सीमेंट, लकड़ी, लोहा, पत्थर, ईंट इत्यादि सामग्री से करता है। व्यापार, उद्योग, विद्यालय, मंदिर, स्थानक इत्यादि का निर्माण भी इसी भांति किया जाता है। मनुष्य विविधता पसन्द प्राणी है तथा नवीनता में उसकी विशिष्ट अभिरूचि होती है अतएव भवन निर्माण में मनुष्य अपनी रुचि के अनुरूप पृथक संरचनाओं का निर्माण करता है। जिस प्रकार मनुष्य के जीवन पर वातावरण का प्रभाव होता है उसी प्रकार उसकी आवास संरचना का प्रभाव भी मनुष्य के जीवन पर अनुकूल या प्रतिकूल अथवा शुभ-अशुभ पड़ता है। इसके अध्ययन करने वाले शास्त्र को ही वास्तु विज्ञान कहा जाता है।

तत्वार्थ सूत्र ग्रंथराज में आचार्य उमास्वामी ने सप्तम अध्याय के 29वें सूत्र में परिग्रह परिमाण व्रत के अतिचार के संदर्भ में दस प्रकार के परिग्रहों का नामोल्लेख किया है -

'क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमः'

इस सूत्र में स्पष्टतः वास्तु को परिग्रह बताया गया है।

वास्तु का उल्लेख प्राचीनतम काल से काल के प्रारंभ से ही होता आया है। इसका विवरण आगे पृथक रूप से उल्लेखित किया गया है। परिग्रह की संज्ञा तत्वार्थ सूत्र में ही मूर्च्छा से अर्थात् ममत्व बुद्धि से दी गई है -

'मूर्छा परिग्रह :'

भवनादिक सम्पदा में प्रत्यक्ष ही प्राणियों की ममत्व बुद्धि देखी जाती है। यह मेरा कमरा है, यह हमारा मन्दिर है, यह हमारी वेदी है, यह महल मेरा है इत्यादि वार्ता साधारणतया सर्वत्र गृहस्थों में देखी जाती है। कभी-कभी तो महाव्रतियों में भी संयमोपकरण अथवा शास्त्रादि में ममत्व बुद्धि दृष्टि गोचर होती है। भवनादिक सम्पदा में ममत्व बुद्धि होने के कारण इनके निर्माण में मनुष्य अपनी सामर्थ्य के अनुरूप आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निवासगृह आदि का नियोजन करता है। यथासम्भव विविधता एवं आधुनिकता की भी सोच निर्माण कार्य को प्रभावित करती है। समयानुसार भवनों की निर्माण शैलियों में परिवर्तन स्पष्ट ही देखे जा सकते हैं। मनुष्य अपनी आवश्यकता एवं अभिरुचि के अनुसार स्नानागार, पाकशाला, पूजाकक्ष, बैठककक्ष, शयनागार, शौचालय, भोजनकक्ष, सामग्री कक्ष, वाटिका कूप इत्यादि का निर्माण भवन में करता है। दीवालों से भवन निर्माण के उपरांत रंगरोगन, चित्रकारी, फुलवारी, आधुनिक फर्नीचर, सोफा, कालीन, यांत्रिक एवं विद्युत आधारित सुख-सुविधाओं के द्वारा भवन को सुसज्जित करता है। चूंकि स्वामी की यह भावना होती है कि यह भवन मेरा है अतएव उसका ममत्व उसे यह सब करने को प्रेरित करता है। भवन निर्माण के उपरान्त हमें उस भवन के निमित्त से अनुकूल प्रतिकूल फल भी मिलते हैं। इसका व्यवहारिक विवेचन ही प्रस्तुत ग्रंथ का उद्देश्य है।

भवन मनुष्य के आवास की मूल आवश्यकता की पूर्ति करता है। इसे अचल सम्पत्ति के रूप में माना गया है। अन्य सम्पत्तियों की भांति इस सम्पदा का भी क्रय-विक्रय, दान एवं नामान्तरण हो सकता है, इस सम्पदा को मनुष्य अपने जीवन की एक अतुलनीय प्राप्ति मानता है, उसका अरमान या सपना होता है स्वयं स्वामित्व का एक मकान। अतएव इस लक्ष्य की प्राप्ति होने के उपरान्त भी मनुष्य उसमें निरन्तर लगाव तो रखता ही है, साथ ही उसके रख-रखाव तथा आधुनिक साज-सज्जा में भी समय, श्रम, एवं अर्थ को व्यय करता रहता है। इस संरचना को लोग मकान, घर, भवन, आलय, निलय,

गरीबखाना आदि कितने ही नामों से सम्बोधित करते हैं। इनमें से प्रत्येक का शुभाशुभ प्रभाव उसके स्वामी एवं उपयोगकर्ता पर निश्चित रूप से पड़ता ही है।

हम प्रत्यक्ष ही अनुभव करते हैं कि किसी मकान में प्रवेश करते ही मन प्रसन्नता से खिल उठता है। जबकि किसी अन्य मकान में प्रवेश करने पर एक अजीब सा भारीपन लगता है। किसी कमरे में जाने पर ताजगी महसूस करते हैं तो कहीं घुटन। किसी मकान का निवासकर्ता, चाहे वह मालिक हो अथवा किरायेदार, मकान के उपयोग करते समय विपुल धनसम्पत्ति की प्राप्ति करता है तो किसी मकान में निरन्तर कलह का वातावरण बना रहता है। किसी मकान में प्रवेश करने के उपरान्त अकाल मृत्यु एवं दुर्घटनाओं का सिलसिला चल निकलता है। किसी मकान में प्रमुख पुरुष अथवा प्रमुखमहिला निरन्तर रोगी बने रहते हैं। किसी भवन की संरचना अत्यंत विशाल होने पर भी उसके निवासी वंशहीन हो जाते हैं तथा उसका कोई उपयोगकर्ता न होने से महल खंडहरों में परिवर्तित हो जाते हैं। किसी विशिष्ट भूखण्ड पर निर्मित उद्योग अनवरत लाभ देता है तो कई उद्योग कई-कई बार बंद होते हैं तथा निरन्तर हानि देते हैं, यहां तक कि स्वामी दिवालिया हो जाता है। वास्तु के मनुष्य जीवन से सम्बन्ध को दर्शाने वाले असंख्य उदाहरण मिलते हैं जो उसकी अनुकूलता एवं प्रतिकूलता दिखलाते हैं।

देवालयों के प्रकरण में स्थिति इनसे भिन्न नहीं है। आपने स्वतः अनुभव किया होगा कि कुछ विशेष स्थानों पर मन्दिरों में विपुल धनागम तो होता ही है, दर्शनार्थियों का आवागमन भी निरन्तर बना रहता है तथा भक्तों की मनोकामनाएं भी पूरी होती हैं। इसी कारण कुछ विशेष स्थानों को अतिशय क्षेत्र कहा जाता है। अतिशय क्षेत्र से तात्पर्य ऐसे ही स्थानों से है जहां देवालयों में किसी विशेष जिनेन्द्र देव की प्रतिमा अथवा उनके यक्ष-यक्षिणी या क्षेत्रपालादि देवों की विशिष्ट प्रतिमा के कारण भक्तों की मनौतियां पूरी होते देखी जाती हैं। कहीं-कहीं पर भूत-प्रेत की बाधा स्वयमेव समाप्त हो जाती है। ऐसे क्षेत्रों में कई बार प्रत्यक्ष अनुभव देखने में आता है कि किसी विशेष प्रतिमा के स्थानान्तरण करने से अतिशय में कमी आ जाती है। ऐसा क्यों होता है? जब सभी प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हैं, तो किसी विशेष प्रतिमा में अतिशय क्यों? क्यों किसी विशेष मंदिर को ही अतिशय क्षेत्र कहा जाता है? क्यों किसी प्रतिमा विशेष के कारण जंगल में मंगल हो जाता है? इसके विपरीत अनेकों ऐसे उदाहरण आपको अपने पास ही मिल जायेंगे जिनमें जिनालय निर्माणकर्ता निर्वंश होकर नाम हीन हो गए। कितने ही एक या दो पीढ़ी में

ही दाने दाने को मोहताज हो गए। कितने ही दुर्घटनाग्रस्त होकर अकालमृत्यु को प्राप्त हुए अथवा विकलांग हो गए। तात्पर्य यह है कि भवन, जिन प्रतिमा, चैत्यालय, जिन मंदिर आदि जड़ एवं प्रभावहीन नहीं है वरन् उनका प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पड़ता है। भक्त, स्वामी, निर्माणकर्ता तथा उसके परिवार पर इन वास्तु संरचनाओं का निश्चित ही अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार के प्रभावों के मूल कारणों का अन्वेषण एवं अध्ययन वास्तु विज्ञान के इस ग्रंथ में करने का लघु प्रयास किया गया है। यह तो सुधी पाठक ही बताएंगे कि लेखक अपने श्रम में कहां तक सफल हुआ।

प्रज्ञाश्रमण देवनन्दि मुनि

वास्तु शास्त्र का आधार

'वास्तु' शब्द का सीधा सरल अर्थ स्थापत्य है अर्थात् भवन, देवालय, प्रासाद आदि संरचनाओं का निर्माण। इस प्रकार के निर्माण की कला एवं विज्ञान, वास्तु शास्त्र में समाहित होते हैं। कला पक्ष में आकर्षक सूक्ष्म एवं स्थूल शिल्पकला का समावेश होता है जबकि विज्ञान पक्ष में धरातल, वायु मंडल, दिशाओं, सूर्य की गति एवं ऊष्मा आदि का तथा आसपास के परिकर का विचार कर, वास्तु के अनुकूल एवं प्रतिकूल (शुभाशुभ) फलों को ध्यान में रखते हुए संरचना का निर्माण किया जाता है। दिशाओं की स्थिति समझकर उसके अनुरुप निर्मित संरचनाओं में सुपरिणाम निश्चय ही देखने को मिलते हैं। धरातल का ऊंचा-नीचापन, ढलान, चढ़ाव, आसपास वृक्ष, कुआं, पहाड़ी, ऊंची इमारत आदि का प्रभाव भी इस विषय में सम्मिलित किया जाता है।

यदि गंभीरता से विचार किया जाये तो ज्ञात होता है कि निम्नलिखित दो प्रमुख कारक वास्तु के शुभाशुभ परिणामों को निर्धारित करते हैं -

1. **पृथ्वी पर होने वाले दिवस रात्रि चक्र का मूल केन्द्र सूर्य**
2. **पृथ्वी पर रहने वाली चुम्बकीय प्रभाव की धाराएं**

सूर्य पृथ्वी पर रहने वाले सभी प्राणियों के जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक ऊर्जा स्रोत है। पृथ्वी पर सूर्य से आने वाली किरणें प्रकाश तो लाती ही हैं, साथ ही ऊष्मा भी लाती हैं। यह प्रकाश एवं ऊष्मा ही पृथ्वी पर रहने वाली सभी वनस्पतियों में जीवन का संचार करती है। भोजन का निर्माण वनस्पतियों में सूर्य के प्रकाश के बिना संभव नहीं है। इस क्रिया में वनस्पतियां

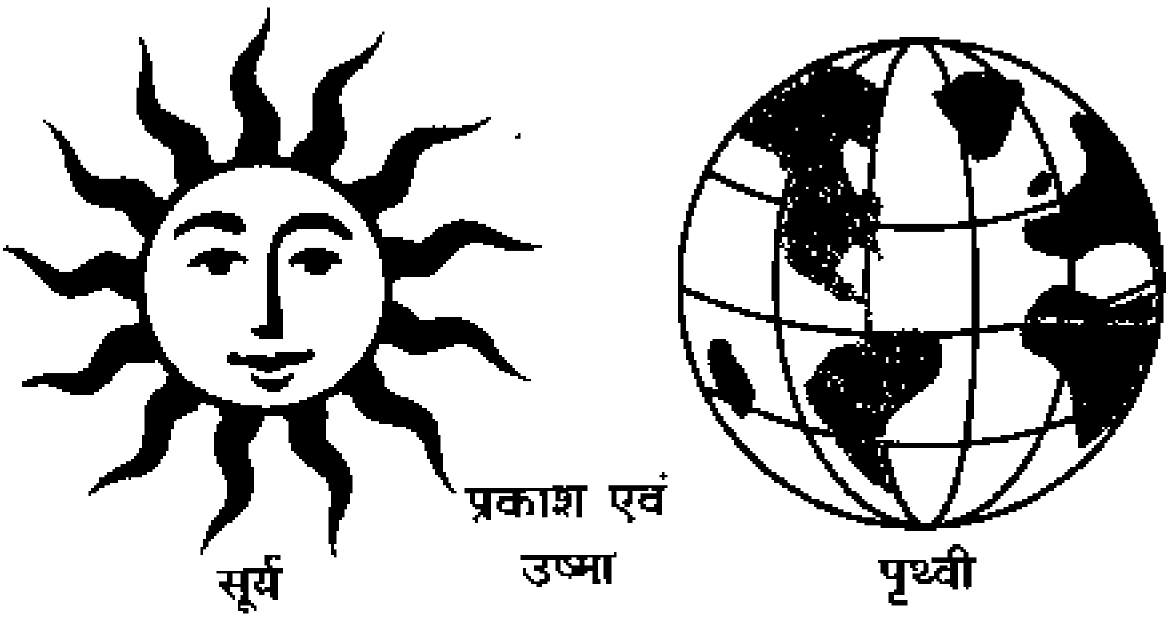

कार्बनडाईआक्साइड (CO_2) गैस को ग्रहण करती हैं तथा आक्सीजन (O_2) गैस निःसृत करती हैं। यह ऑक्सीजन ही सभी प्राणियों की प्राण वायु है। यदि आक्सीजन वायुमंडल में से कम हो जाए तो जीवन जीना संभव नहीं है। वायुमंडल की हवा में 20% ऑक्सीजन निरन्तर रहती है तथा वनस्पतियां सूर्य प्रकाश के माध्यम से वायुमंडल में यह संतुलन बनाये रखती हैं। इसी कारण एक अपेक्षा से सूर्य को पृथ्वी का जीवन प्रदाता भी कहा जाये तो कोई मिथ्या बात न होगी।

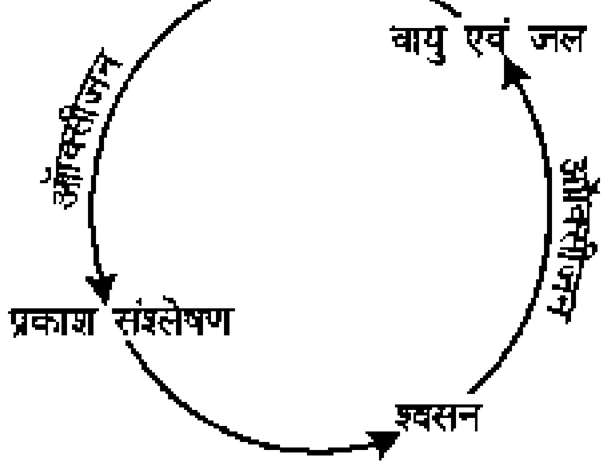

पृथ्वी पर दूसरा प्रमुख कारक है चुम्बकीय धाराएं। पृथ्वी स्वतः एक अतिविशाल चुम्बक है तथा इसकी चुम्बकीय शक्ति की धाराएं उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव को चलती हैं उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव की इन धाराओं का प्रभाव पृथ्वी पर रहने वाले सभी चराचर जीवों पर पुद्गल (अजीव) द्रव्यों पर अवश्य ही पड़ता है। धरती में यदि लौह खण्ड धाराओं के समानान्तर गाडकर रख दिया जाए तो कुछ ही साल में वह लोह खण्ड चुम्बक बन जाता है। पृथ्वी पर रहने वाले जीवों के देह में लौह तत्व विद्यमान रहता है तथा पृथ्वी की चुम्बकीय धाराओं से अप्रत्यक्ष रुप से प्रभावित होता है। चुम्बक द्वारा चिकित्सा इसी तथ्य पर आधारित है।

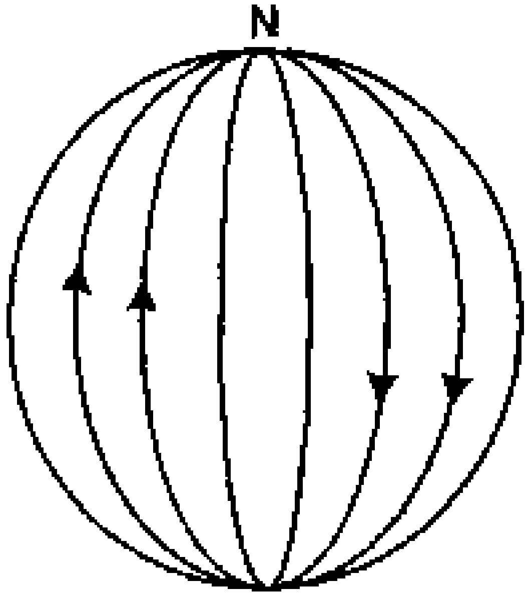

पृथ्वी पर होने वाले दिन-रात का चक्र, सूर्य की वार्षिक गति, पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति, चुम्बकीय धारा, उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव आदि का प्रभाव मनुष्य एवं अन्य सभी चराचर जीव एवं अजीवों पर स्पष्टतया देखा जा सकता है। पृथ्वी पर दिशाओं का विभाजन भी इसी आधार पर किया गया है। दिशाएं चार हैं -

1. पूर्व East - यह सूर्योदय की दिशा है।
2. पश्चिम West - यह सूर्यास्त की दिशा है।
3. उत्तर North - यह उत्तरी ध्रुव की दिशा है।
4. दक्षिण South - यह दक्षिणी ध्रुव की दिशा है।

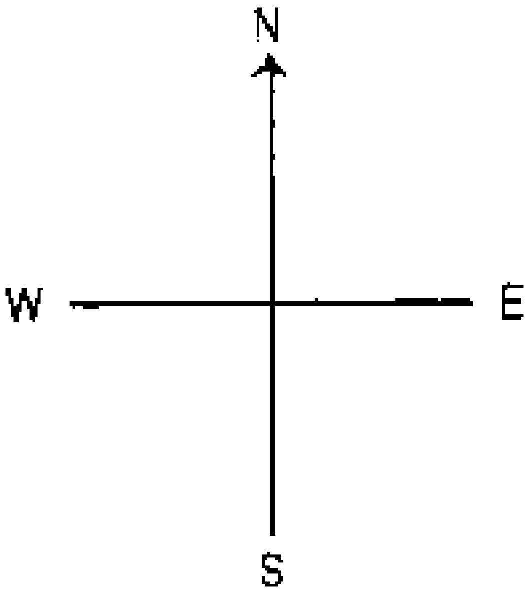

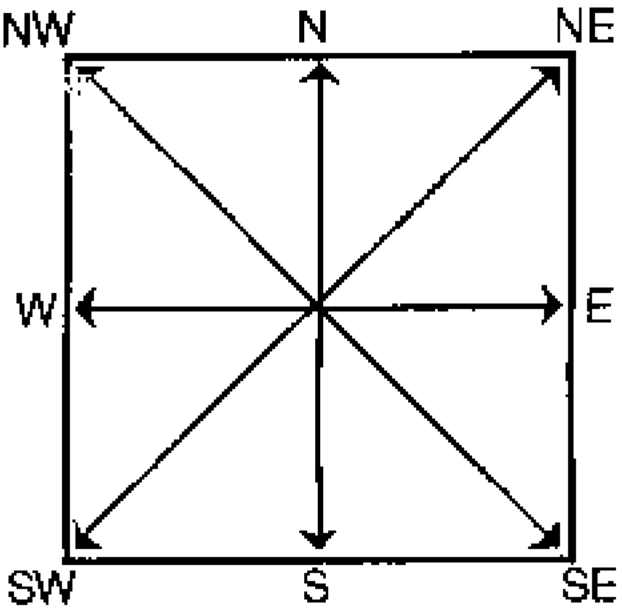

प्राथमिक तौर पर चार दिशाओं के मध्य में निम्न चार विदिशाएं मानी जाती हैं -

1. ईशान North East - पूर्व एवं उत्तर के मध्य की दिशा
2. आग्नेय South East - पूर्व एवं दक्षिण के मध्य की दिशा
3. नैऋत्य South West - पश्चिम एवं दक्षिण के मध्य की दिशा
4. वायव्य North West - पश्चिम एवं उत्तर के मध्य की दिशा

दिशासूचक यंत्र में इन दिशाओं को सुविधा के लिए 360 में विभाजित किया जाता है। इन दिशाओं का विस्तृत विवेचन आगामी पृष्ठों में पठनीय है।

वास्तु विज्ञान एवं कर्मफल

वर्तमान युग वैज्ञानिक युग कहा जाता है। विज्ञान पर विश्वास करने वाला समुदाय प्राचीन मान्यताओं को तर्क एवं प्रमाण की कसौटी पर परखता है। यदि कोई भी मान्यता व्यवहारिक प्रयोग में तथ्य परक परिणाम प्रगट नहीं करती है तो विज्ञान उसे कल्पना मानता है। वास्तु विज्ञान में उल्लेखित सैद्धांतिक मान्याओं को प्रमाण एवं तर्क की कसौटी पर रखने से उनमें यथार्थता परिलक्षित होती है। दिशाओं का ज्ञान, धरातल का ज्ञान, सूर्य प्रकाश एवं चुम्बकत्व धारा का ज्ञान आदि सभी विज्ञान सम्मत हैं। निश्चय ही इनका प्रभाव प्राणी मात्र के जीवन पर पड़ता है।

जैन दर्शन के अनुसार प्राणी मात्र का शुभाशुभ उनके कर्मों के उदय-विपाक पर आधारित है। उसके कर्म फल के अनुरूप ही उसे जहां एक ओर सांसारिक सुख, वैभव, सम्पदाएं आदि प्राप्त होती हैं। वहीं दूसरी ओर सांसारिक दुख, रोग, कलह, धनक्षय, संततिनाश, वंशनाश, वैधव्य इत्यादि दुःख भी प्राप्त होते हैं। किसी को पतिव्रता स्त्री की प्राप्ति होती है तो कोई कलहकारिणी, स्वैराचारिणी स्त्री से जीवन पर्यन्त नरक तुल्य दुख भोगता है। किसी को अनुकूल स्वास्थ्य मिलता है तो कोई जन्म से ही पोलियो इत्यादि बीमारियों से विकलांग हो जाता है। किसी को एक-एक पैसे के लिए तरसते देखा जाता है तो कोई लाखों रुपये भोग-विलास में व्यय करता है। एक ओर विवाहादि आयोजनों में धन एवं भोजन की बरबादी देखी जाती है तो वहीं दूसरी ओर उनके द्वारा फेंकी गई जूठन के लिए भी लोगों को तरसते देखा जाता है। कोई महलों में रहता है जिनका रखरखाव, साफ सफाई तक नहीं होती तो कोई लाखों रुपए व्यय करके भी दो कमरों का फ्लैट नहीं ले पाता। तात्पर्य यह है कि संसार में सुख-दुख की दृष्टि से बड़ी विचित्रता देखी जाती है। जैन शास्त्रों का स्पष्ट कथन है कि सभी प्राणी अपने अर्जित कर्मानुसार ही फल भोगते हैं। अनुकूल अथवा प्रतिकूल आवासगृहों की प्राप्ति भी अपने-अपने कर्मानुसार ही होती है। हमारे द्वारा पूर्वकृत कर्म ही वे पुरुषार्थ हैं, जो हमें पुण्य या पाप का उपार्जन कर तदनुरूप सामग्री प्राप्त कराते हैं।

यहां यह विचारणीय प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि सारा जगत कर्म फल आधारित व्यवस्था पर चल रहा है तो क्या पुरुषार्थ निष्फल है? क्या इस

विराट् विश्व में प्राणियों के लिए करने योग्य कुछ भी नहीं है? स्याद्वादमयी जिनवाणी का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि प्राणियों के द्वारा पूर्वकृत कर्म ही वर्तमान में तदनुरूप सामग्री प्राप्त कराता है। सभी प्राणी अपने-अपने कर्मों का फल आगामी काल में पाते ही हैं। कोई कर्म निष्फल नहीं जाता। ऐसी परिस्थिति में मनुष्य को अनुकूल या प्रतिकूल वास्तु या आवास गृह आदि संरचनाओं का मिलना भी पूर्वोपार्जित कर्म फल के अनुरूप होता है। वर्तमान में प्राप्त सामग्री को मनुष्य अपने पुरुषार्थ के द्वारा प्रतिकूल से अनुकूल करता है, जबकि विपरीत पुरुषार्थ से अनुकूलता भी प्रतिकूलता में परिवर्तित हो जाती है।

वास्तु विज्ञान में ऐसी ही पुरुषार्थ क्रियाओं का विस्तृत विवेचन किया गया है जिनसे यह ज्ञात होता है कि उपलब्ध वास्तु संरचना हमारे लिए हितकर है अथवा नहीं। साथ ही यह भी उपाय जानना आवयक है कि वास्तु में प्रतिकूल निर्मित संरचना को कैसे अनुकूल किया जाए। इस विज्ञान में वास्तु के निर्माण के पूर्व भूमि परीक्षण करके भूमि चयन करना भी निर्देशित किया जाता है, ताकि उस पर निर्मित वास्तु संरचना अनुकूल सिद्ध हो। इस शास्त्र में विवेचित सिद्धान्तों एवं निर्देशों को अपनाकर क्षेत्र, भवन, प्रसाद, महल, जिनालय, धर्मशाला, उद्योग, व्यापारिक भवन इत्यादि को प्रतिकूल से अनुकूल में परिवर्तित किया जा सकता है। वास्तु संरचनाओं को अजीब समझकर निष्क्रिय समझना ठीक वैसा ही है जैसा कि प्रतिष्ठित जिन प्रतिमा को साधारण पाषाण खण्ड के समकक्ष समझना। निष्कर्ष यह है कि इस शास्त्र की उपयोगिता तभी है, जब आप कर्मफलानुसार प्राप्त वास्तु संरचनाओं को विज्ञान सम्मत इस शास्त्र से उद्यम करके अपने अनुकूल बनाने का सुकर्म करें तथा अपना जीवन सुखमय बनाएं। यह निश्चय जानिए कि सुखमय जीवन होने पर ही निराकुल होकर धर्माराधना आदि शुभकर्म किये जा सकते हैं। गृह कलह, धनहानि, विकलांगता, भीषण दीर्घरोगादि से ग्रस्त व्यक्तियों का मन धर्माराधना में लगना हथेली में राई जमाने सदृश अत्यंत दुरुह कार्य है। अतएव यह उपयुक्त है कि वास्तु निर्माण इस प्रकार किया जाए कि वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों को करने में सहायक हो।

वास्तु विज्ञान का प्रारम्भ

वास्तु विज्ञान का प्रारम्भ मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही माना जाता है। जैनागम में युग परिवर्तन की व्यवस्था काल भेद से स्पष्ट की गई है। प्रत्येक युग में छह काल होते हैं जिनके नाम उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी काल में उतरते या चढ़ते चक्र से दर्शाए जाते हैं –

काल	उत्सर्पिणी काल	अवसर्पिणी काल
प्रथम	दुखमा दुखमा	सुखमा सुखमा
द्वितीय	दुखमा	सुखमा
तृतीय	दुखमा सुखमा	सुखमा दुखमा
चतुर्थ	सुखमा दुखमा	दुखमा सुखमा
पंचम	सुखमा	दुखमा
षष्ठम	सुखमा सुखमा	दुखमा दुखमा

वर्तमान काल अवसर्पिणी काल श्रेणी में पंचम अर्थात् दुखमा काल है। प्रथम काल अर्थात् सुखमा सुखमा, द्वितीय काल अर्थात् सुखमा तथा तृतीय काल सुखमा दुखमा में भोगभूमि की व्यवस्था होती है। मनुष्य पुण्यशाली तथा शांत परिणामी होते हैं। उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कल्पवृक्षों से होती है। ये कल्पवृक्ष वनस्पतिकाय के न होकर पृथ्वीकाय के होते हैं। इनके दस भेद हैं –

1. **पानांग** (अन्य नाम मद्यांग) 2. **तूर्यांग** 3. **भूषणांग**
4. **वस्त्रांग** 5. **भोजनांग** 6. **आलयांग**
7. **दीपांग** 8. **भाजनांग** 9. **मालांग**
10. **तेजांग**

महापुराण के नवम् अध्याय के 37 से 39 वें श्लोक में वर्णित है कि आलयांग जाति के कल्पवृक्ष स्वस्तिक एवं नन्द्यावर्त आदि सोलह प्रकार के रमणीक दिव्य भवन भोग भूमि के मनुष्यों को प्रदान करते हैं।

सभी कल्पवृक्ष अपने नाम के अनुरूप वस्तुएं मनुष्यों को कामना मात्र से उपलब्ध करा देते हैं। भोगभूमि में पुण्य की प्रबलता होने से पुरुषार्थ की

आवश्यकता नहीं होती तथा उत्कृष्ट जाति के भवनादि मनुष्यों को सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं।

तृतीय काल के अन्तिम चरण में कल्पवृक्षों की शक्ति में ह्रास प्रारम्भ हुआ। शनैः शनैः वे कल्पवृक्ष लुप्त होने लगे। अतएव मनुष्यों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए श्रम एवं कर्म करना प्रारम्भ करना पड़ा। वे पुरुष अनभिज्ञ थे क्योंकि उन्होंने पूर्व में पुरुषार्थ किया ही नहीं था। ऐसे समय एक के बाद एक चौदह कुलकर हुए जिन्होंने समयानुसार निर्देशन करके मनुष्यों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना सिखाया। इन कुलकरों के नाम अग्रलिखित हैं -

1.	प्रतिश्रुति	2.	सन्मति	3.	क्षेमंकर	4.	क्षेमंधर
5.	सीमंकर	6.	सीमंधर	7.	विमलवाहन	8.	चक्षुष्मान्
9.	यशस्वी	10.	अभिचन्द्र	11.	चन्द्राभ	12.	मरुदेव
13.	प्रसेनजित	14.	नाभिराय				

नाभिराय अन्तिम कुलकर थे जिनके पुत्र इस युग के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हुए। नाभिराय अयोध्या के नरेश थे। ऋषभदेव ने सभी नागरिकों को सभ्यता के आरम्भिक पाठ पढ़ाए। आजीविका की समस्या आने पर उन्होंने निम्न लिखित षट्कर्मों को अपना कर, अपनी आजीविका अर्जन करने की शिक्षा दी।

षट्कर्मों के नाम

1. कृषि - खेती कार्य
2. असि - अस्त्र शस्त्र संचालन का कार्य
3. मसि - लेखन कार्य
4. विद्या - ज्ञानार्जन तथा पाठन अध्यापन का कार्य
5. शिल्प - धोबी, नाई, लुहार, भवननिर्माता, मिस्त्री आदि का कार्य
6. वाणिज्य - व्यापार, क्रय-विक्रय कार्य

शिल्प कर्म में ऐसी विद्याओं एवं कर्मों का समावेश था जिनका उद्देश्य चैत्य, मन्दिर, भवन, महल, प्रासाद, मकान, उद्योग आदि संरचनाओं का विधि वत् निर्माण करना था। इनमें कला तथा विज्ञान दोनों पक्षों का ध्यान रखा गया। संरचना न केवल सुन्दर, कलापूर्ण, आकर्षक एवं मनोहारी हो वरन् उपयोगी तथा उपयोगकर्त्ता के लिए अनुकूल, शुभफल प्रदाता भी हो। बस यही वह बिन्दु है जहां से आधुनिक वास्तु विज्ञान का प्रारम्भ हुआ।

समयानुसार वास्तु शास्त्र के कला एवं विज्ञान दोनों पक्षों में विशेष प्रगति होती गई। सामान्य नागरिकों तथा राज परिवारों के लिए अनुकूल

प्रासादों, भवनों, आवासगृहों का निर्माण किया जाता था। नदियों पर पुलों का निर्माण होने लगा। धार्मिक स्थानों, जिनालयों, धर्मशालाओं, नाट्यशालाओं आदि का निर्माण होने लगा। प्रथमानुयोग के शास्त्रों का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि प्राचीन काल की वास्तु संरचनाएं अद्वितीय कला एवं स्थापत्य का अनूठा संगम थी। इन शास्त्रों में भवनों की कलाकारी का वर्णन तो है ही साथ ही दिशा, धरातल, द्वार, कक्ष, ऊंचाई, अनुपात आदि का विस्तृत विवरण भी उपलब्ध होता है।

युग के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ ऋषभदेव स्वामी को तपस्या के उपरान्त केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। केवलज्ञान का अर्थ है ऐसा ज्ञान जिसमें सारे विश्व की अर्थात् तीनों लोकों के सभी चराचर पदार्थों की भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल की समस्त पर्यायों को एक साथ हथेली में रखे आंवले की भांति स्पष्ट जाना जाता हो। तीर्थंकर भगवन्त को केवलज्ञान प्राप्त होने के

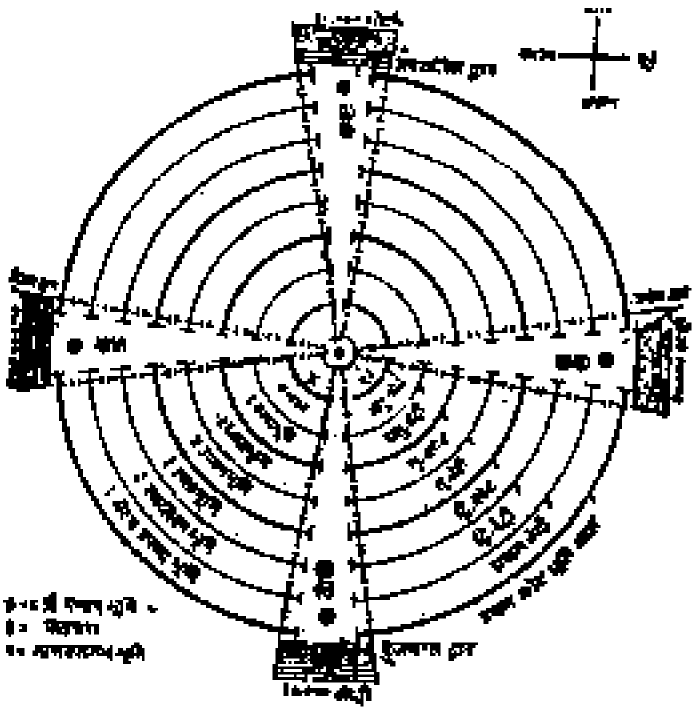

उपरान्त उनकी धर्मसभा की रचना होती है। यह धर्मसभा विश्व की एकमात्र अतुलनीय अद्वितीय संचरना होती है। सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र की आज्ञा से कुबेर इस सभा की रचना करता है। अशोकवृक्ष, तीन छत्र सिंहासन, भामंडल, दिव्यध्वनि, पुष्प-वृष्टि चौंसठ चंवर, देव दुंदुभि इन अष्ट प्रातिहार्यों से संयुक्त जिनेन्द्र प्रभु की दिव्य वाणी का प्रसार प्रति दिन चार समय होता है। भगवान की इस दिव्य वाणी का प्रसार इस भांति होता है कि बारह सभाओं में बैठे हुए सभी जाति के प्राणियों को यह वाणी स्पष्ट सुनाई पड़ती है तथा इसका विस्तार से विवेचन गणधर देव आचार्य करते हैं। इस समवशरण सभा में तीर्थंकर प्रभु का आसन मध्य में होता है तथा गोलाकृति में चारों ओर बारह सभाओं में देव, देवियां, मनुष्य, स्त्रियां, मुनि, आर्यिका एवं तिर्यंच बैठकर दिव्य वाणी का श्रवण करते हैं। तीर्थंकर प्रभु का मुख चारों ओर से श्रवणकर्ता को अपनी ओर दिखता है। बारह कक्षों के बाहर नाटयरंग, नृत्यशाला, सरोवर, वाटिका आदि का निर्माण मनोरंजन के लिए होता है। बीस सहस्त्र सीढ़ियों से युक्त यह

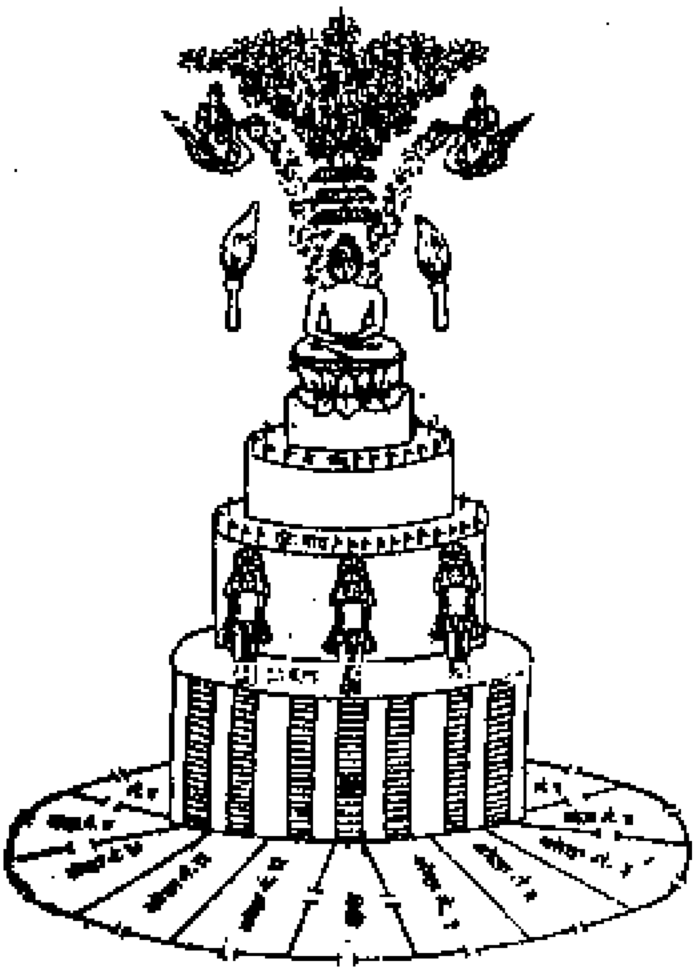

समवशरण देवकृत अतिशय से जमीन से पाँच सहस्त्र धनुष ऊपर रहता है। चारों दिशाओं में उत्तुंग चार मानस्तम्भ, मानी पुरुषों का मान गलित करते हैं चौबीसवें तीर्थंकर वर्धमान स्वामी के प्रथम गणधर गौतम स्वामी का मान गलन मानस्तंभ देखकर ही हुआ था।

तीर्थंकर भगवान के सर्वांग से नैसर्गिक निःसृत वाणी को ही जिनवाणी कहा जाता है। इसे स्याद्वाद वाणी का भी नाम दिया गया है। इसका विस्तार द्वादशांगों में होने से इसे द्वादशांग वाणी भी कहा गया है। बारहवें अंग को चौदह पूर्वों में विभक्त किया गया है। जिनके नाम इस प्रकार हैं –

1.	उत्पाद पूर्व	2.	अग्रायणी पूर्व	3.	वीर्य प्रवाद
4.	अस्ति नास्ति प्रवाद	5.	ज्ञान प्रवाद	6.	सत्य प्रवाद
7.	आत्म प्रवाद	8.	कर्म प्रवाद	9.	प्रत्याख्यान प्रवाद
10.	विद्यानुवाद पूर्व	11.	कल्याणावाद	12.	प्राणावाय पूर्व
13.	क्रिया विशाल पूर्व	14.	लोक बिन्दुसार		

हरिवंश पुराण, धवला एवं गोम्मटसार जीवकांड में वर्णित तथ्यों के अनुसार तेरहवें क्रिया विशाल पूर्व में लेखन कला आदि बहत्तर कलाओं का, स्त्री सम्बंधी चौंसठ गुणों का, शिल्प कला का, काव्य संबंधी गुणदोष विधि का और छन्द निर्माण कला का विवेचन है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि शिल्प कला का ज्ञान भी तीर्थंकर प्रणीत जिनवाणी का ही अंग है तथा हमे यह उनसे ही प्राप्त हुआ है। जिनवाणी पूर्वापर अविरोध, अकाट्य होने के कारण प्रामाणिक होने से उसके अंग भी तदनुरूप प्रामाणिक एवं उपयोगी हैं, यह निर्विवाद है।

प्रथम तीर्थंकर के ज्येष्ठ पुत्र भरत हुए जो इस युग के प्रथम चक्रवर्ती थे। शास्त्रों में चक्रवर्ती की विराट् सम्पदा का विस्तृत वर्णन आता है। चक्रवर्ती

का भवन छियानवें (96) खण्ड का उत्तुंग राजप्रासाद था। निश्चय ही यह संरचना वास्तुकला एवं विज्ञान का अकल्पनीय प्रादर्श थी। चक्रवर्ती के पास नव निधि तथा चौदह रत्न होते हैं। चक्रवर्ती के चौदह रत्नों में सात अजीव तथा शेष सात जीव रत्न होते हैं। महापुराण के तीसरे अध्याय के श्लोक 177 के अनुसार चक्रवर्ती के चौदह रत्न इस प्रकार हैं –

1. चक्र	2. छत्र	3. खड्ग	4. दण्ड
5. काकिणी	6. मणि	7. चर्म	8. सेनापति
9. गृहपति	10. गज	11. अश्व	12. पुरोहित
13. स्थपति	14. युवती		

इनमें स्थपति नामक जीवन रत्न नदी पर पुल बनाना तथा सेना के लिए ठहरने के स्थान एवं चक्रवर्ती के आवास योग्य विविध वास्तु शिल्प कला युक्त सुन्दरतम भवनों आदि का निर्माण अपनी विद्या से करता था।

चक्रवर्ती की नव निधियां इस प्रकार हैं –

1. काल	2. महाकाल	3. पाण्डु	4. माणव	5. शंख
6. पद्म	7. नैसर्प	8. पिंगल	9. नानारत्न	

इनमें नैसर्प निधि भवन (हर्म्य) प्रदान करती है।

उपरोक्त विवरण शिल्पकला का प्राचीन वैभव प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त है। प्रथमानुयोग ग्रंथों यथा महापुराण, हरिवंशपुराण आदि ग्रंथों के अध्ययन से प्राचीन वैभव की विशेष जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इनके अतिरिक्त **वास्तु शास्त्र** नामक एक ग्रंथ सनत्कुमार मुनि के द्वारा रचित संस्कृत श्लोकबद्ध ग्रंथ है।*

इसी प्रकार **शिल्प–शास्त्र** नामक ग्रंथ भट्टारक एकसंघी द्वारा विरचित है। **

शिल्पीसंहिता नामक ग्रंथ आचार्य वीरनंदि के द्वारा रचा गया है। ***

वास्तु कषाय व्रत कथा नामक एक कथा ग्रंथ भी पूर्व में लिखा गया जिसकी श्लोक संख्या एक हजार है।****

वास्तु शांति के लिए वास्तु विधान का किया जाना आवश्यक है। इसके लिए **वास्तु विधान** नामक ग्रंथ लिखा गया था। जिसमें अंकुरारोपण विधान, नांदि विधान, सकलीकरण का संक्षिप्त कथन करके ब्रह्म, इन्द्र, वरुण, पवन आदि दस वास्तु देवताओं की पृथक पूजा दी गई है। *****

---

* जैन ज्ञान कोश खण्ड 4 पृष्ठ 182 ** जैन ज्ञान कोश खण्ड 4 पृष्ठ 256

*** जैन ज्ञान कोश खण्ड 4 पृष्ठ 256 **** जैन ज्ञान कोश खण्ड 4 पृष्ठ 182

***** जैन ज्ञान कोश खण्ड 4 पृष्ठ 182

भूमि का चयन
Selection of Land

वास्तु शास्त्र के अनुसार वास्तु का निर्माण करने हेतु भूमि के लक्षण एवं जलप्रवाह दिशा की ओर दृष्टि डालना आवश्यक होता है। लक्षणों के अनुसार भूमि के निम्न प्रकार हैं।

1. गज पृष्ठ भूमि : जो भूमि दक्षिण, पश्चिम, नैऋत्य तथा वायव्य दिशा में ऊंची हो तथा ईशान में नीची हो तो उसे गजपृष्ठ भूमि कहते हैं। यह भूमि गृह स्वामी को धन, आयु तथा लाभ देती है।

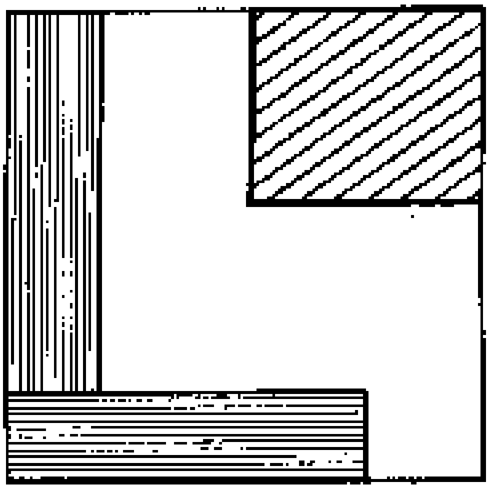

2. कूर्म पृष्ठ भूमि :- यह भूमि मध्य में ऊंची तथा चारों ओर नीची होती है। ऐसी भूमि पर वास्तु निर्माण करने से प्रतिदिन घर में उत्साह, सुख तथा धन धान्य की विपुलता होती है।

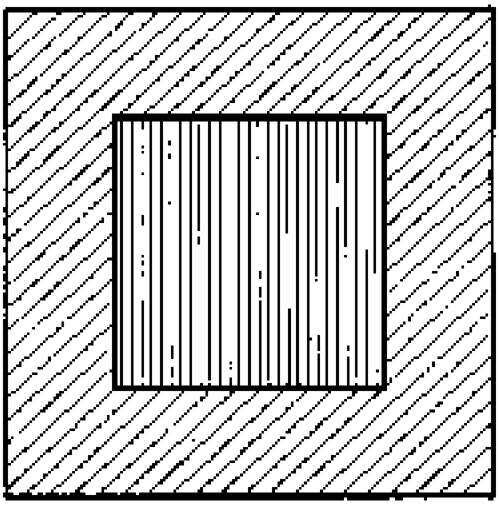

3. दैत्य पृष्ठ भूमि :- पूर्व, आग्नेय तथा ईशान दिशा में ऊंची तथा पश्चिम दिशा में नीची होती है, वह भूमि दैत्य पृष्ठ भूमि कही जाती है। ऐसी भूमि पर वास्तु निर्माण से धन,जल तथा परिवार की सुख शांति की हानि होती है।

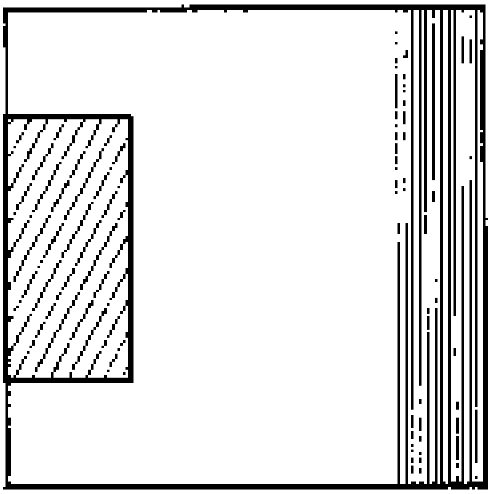

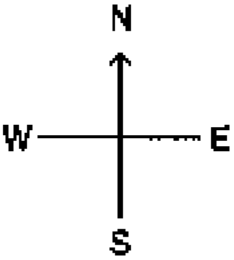

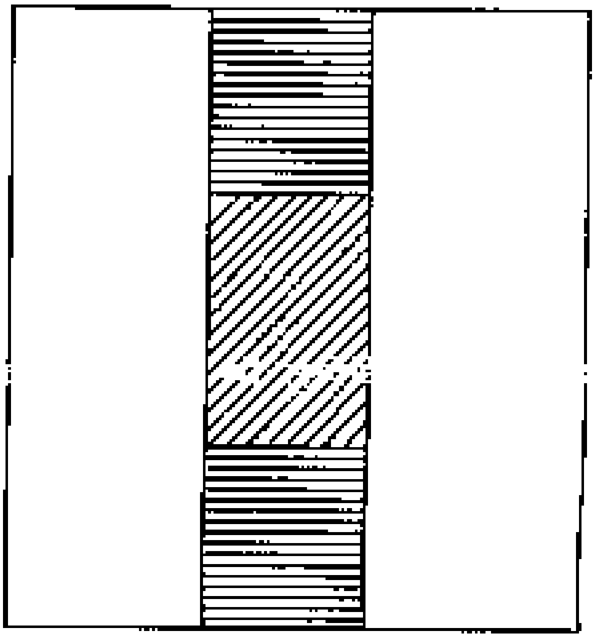

4. नाग पृष्ठभूमि :- पूर्व और पश्चिम दिशा में लंबी, उत्तर दक्षिण दिशा में ऊंची तथा बीचों-बीच जो भूमि नीची होती है उस भूमि को नाग पृष्ठ भूमि कहते हैं। ऐसी भूमि पर वास्तु निर्माण करने से उद्वेग, मृत्यु भय, स्त्री-पुत्रादि को मरण तुल्य कष्ट तथा शत्रु वृद्धि होती है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भूमि का नैसर्गिक उतार अत्यंत महत्वपूर्ण है। इससे वास्तु निर्माण में निवास करने वालों के भाग्य का अनुमान लगाया जाता है। वास्तु शास्त्र के अनुसार उत्तर दिशा में उतार रहना उत्तम है। साथ ही पूर्व में नैसर्गिक उतार भाग्योदय का स्थान है। पूर्व की ओर उतार रहने से उदीयमान सूर्य की किरणें उस जमीन पर तथा उस पर निर्मित वास्तु पर पड़ती हैं तथा भूमि को सुपक्व बनाती हैं एवं वास्तु को तथा उसमें निवासी परिवार को बलदायक होती हैं।

पूर्व की ओर से सूर्य का उदय सबको प्रकाशमान करता है तथा सर्व अभ्युदय का कारण है। इसी कारण पूर्व दिशा शुभ मानी जाती है। वर्षा का पानी पूर्व की ओर उतार होने से सीधा जमीन में जाता है। उस पर पतित प्रातः कालीन सूर्य किरणें सभी को समृद्धिदायी होती है। इससे परिवार आर्थिक दृष्टि से सबल होता है। धन धान्य में वृद्धि होती है। परिजन स्वस्थ, बल एवं तेज से पूर्ण होते हैं।

उत्तर दिशा का स्वामी कुबेर माना जाता है। कुबेर की दृष्टि जमीन एवं मकान पर होती है। इस कारण उत्तर की ओर नैसर्गिक उतार उत्तम फलदायी है। इससे परिवार में धन, बल, बुद्धि की प्राप्ति होती है। उत्तर दिशा की ओर विद्यमान विदेह क्षेत्र से बीस तीर्थंकरों का सहज स्मरण पुण्य प्राप्ति में सहायक होता है। पुण्य से नाना प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है। उत्तर की ओर मुख करके शुभ क्रियाओं को करने की परम्परा भी पुरातन है। यही कारण है कि उत्तर दिशा शुभ मानी गई है। उत्तर दिशा में

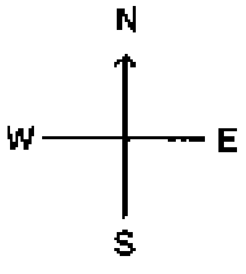

ध्रुव तारा स्थित होता है, जो कि स्थिरता प्रदायक होता है। उत्तर दिशा की ओर उतार होने से घर में धन स्थिर होता है।

वास्तुसार प्र. 1 गाथा 9 में कहा हैं-

'पुव्वेसाणुत्तरंबुवहा'

अर्थात् पूर्व, ईशान एवं उत्तर की ओर जल प्रवाह हो तो वह भूमि परिवार के लिए अत्यंत सुख-शांति एवं समृद्धिदायक होती है।

पश्चिम, वायव्य और नैऋत्य दिशा की ओर जमीन का उतार होने पर वह भूमि परिवार के लिए निष्प्रयोजन व्ययकारी होने से अर्थ संकट को प्रदान करती है।

दक्षिण, आग्नेय दिशा में उतार होने से अचानक धन नाश, वंश नाश, विनाश, मृत्यु की प्राप्ति होती है।

नैऋत्य एवं वायव्य में उतार होने पर परिवार के लिए अनेकों रोगों की उत्पत्ति होती है।

भूमि के मध्य में गड्ढा होने पर सर्वनाश होता है।

भूमि परीक्षण विचार

Selection of Land for Construction

वास्तु शास्त्र सिद्धान्तों के अनुरूप हमें सर्वप्रथम उस भूमि का चयन करना आवश्यक है, जहां पर निर्माण कार्य किया जाना है। सर्वप्रथम भूमि के लक्षणों का विचार कर यह निश्चित किया जाता है कि यह भूमि वास्तु निर्माण के लिए उपयुक्त है अथवा अनुपयुक्त। इस कार्य के लिए भूमि के रूप, रंग, गंध तथा धरातल के उतार–चढ़ाव की दिशा का विचार करना आवश्यक होता है। तदुपरांत ही निर्माण कार्य किया जाना चाहिए।

भूमि परीक्षा विधि क्रं. 1

चउवीसंगुलभूमी खणेवि पूरिज्ज पुण वि सा गत्ता।
तेणेव मट्टियाए हीणाहियसमफला णेया।

वास्तुसार प्र. 1 गाथा 3

जिस भूमि पर भवन निर्माण करना है, उस भूमि के मध्य में 24 अंगुल प्रमाण लंबा तथा इतना ही चौड़ा एवं गहरा गड्ढा खोदें तथा उससे निकली हुई मिट्टी पुनः उसी गड्ढे में भरें। यदि पूरा गड्ढा भरने के उपरांत भी मिट्टी शेष रह जाये, तब वह भूमि स्वामी के लिए उत्तम फल प्रदाता जाननी चाहिए। ऐसी भूमि पर वास्तु निर्माण कर्ता को धन धान्य एवं सुख समृद्धि की प्राप्ति होती है।

यदि वह मिट्टी सम रहे अर्थात् न बढ़े न घटे, तब भवन निर्माण कर्ता को मध्यम फल प्रदाता जाननी चाहिए। अर्थात् भवन स्वामी की परिस्थिति में कोई बदलाव नहीं आयेगा।

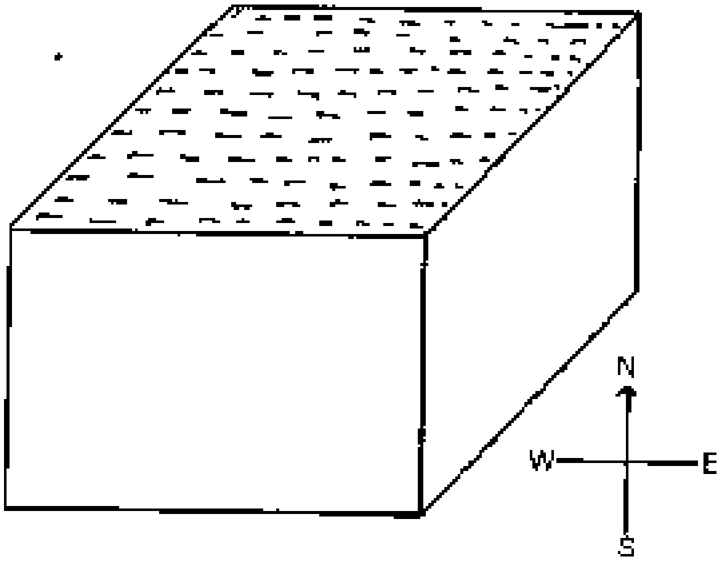

यदि वह उसी गड्ढे में भरने पर कम पड़ जाये तब भूमि का फल अधम समझना चाहिए। अर्थात् भवन स्वामी को दुःख दारिद्रय का सामना करना पड़ेगा।

भूमि परीक्षण विधि क्रं. 2

अह सा भरिय जलेण य चरणसयं गच्छमाण जा सुसइ।
वि-दु-इग अंगुल भूमि अहम मज्झम उत्तमा जाण।।

वास्तुसार प्र. 1 गाथा 4

उपरोक्त 24 अंगुल लम्बे, चौड़े एवं गहरे गड्ढे में लबालब जल भर दें तथा तुरंत 100 कदम जाकर वापस लौटकर देखें। यदि गड्ढे में जल तीन अंगुल कम हो जाय तो वह भूमि स्वामी के लिए अधम फलदायी होगी अर्थात् परिवार को दुखदायक होगी।

यदि दो अंगुल पानी सूख जाये तो वह भूमि स्वामी के लिए मध्यम फलदायी होगी। यदि एक अंगुल पानी सूखे तब वह भूमि स्वामी के लिए उत्तम फलदायी होगी अर्थात् सुखसमाधान कारक होगी।

भूमि परीक्षा विधि क्रं. 3

भूमि में एक फुट नाप का गहारा गड्ढा खोदकर उसे जल से पूरा भर देवें। अगले दिन प्रातः (अर्थात् 24 घंटे बाद) उसका निरीक्षण करें। यदि उसमें कुछ पानी शेष रहे तो भूमि को उत्तम फलदाता समझें अर्थात् गृहस्वामी को वहां उत्तम फल और धन धान्य की विपुलता से प्राप्ति होगी।

यदि गड्ढे में जल शेष न रहे तो इसे मध्यम फलदाता समझे। यदि जल सूखकर उसमें दरार सी पड़ जाए तो यह अधम फल दाता भूमि है। यह परिवार के लिए अशुभ है तथा दुख-दरिद्रता देने वाली है। अथक श्रम के उपरांत भी परिवार की आजीविका अत्यंत दुष्कर हो जाएगी।

भूमि परीक्षा विधि क्रं. 4

उपरोक्त गड्ढे में संध्या समय कुछ फूल डालें तथा ऊपर से उसमें एक घड़ा जल भर दें। यदि जल डालने पर फूल तैरने लगें तो भूमि उत्तम, शुभफल दायक, सुखसमृद्धि दायी समझना चाहिए। यदि जल डालने से फूल तैरे नहीं तथा पानी में ही डूबे रहें तब इसे अधम, अशुभफलदायक दुखदायी समझना चाहिए। ऐसी भूमि पर किसी भी प्रकार की वास्तु का निर्माण न करना ही श्रेयस्कर है।

भूमि परीक्षा विधि क्रं. 5

हलाकृष्टे तथोदेशे सर्व बीजानि वापयेत्।
त्रि-पंच-सप्त रात्रेण न प्ररोहन्ति तान्यपि।।
उप्त बीजा त्रि रात्रेण सांकुराशोभना मही।
मध्यमा पंच रात्रेण, सप्त रात्रेण निन्दिता।।
तिलान्वा वापयेत्तत्र, यवांश्चापि सर्षपान्।
अथवा सर्वधान्यापि, वापयेच्च समन्ततः।।
यत्र नैव प्ररोहन्ति, तां प्रयत्नेन वर्जयेत्।

(विश्वकर्मा प्रकाश पृ. 10-11)

जिस भूमि पर वास्तु निर्माण करना हो उस भूमि को हल जोतकर उसमें सभी प्रकार के अनाज बो देवें। यदि बोए हुए बीज में तीन रात्रि में अंकुर आ जाए तो वह भूमि श्रेष्ठ मानना चाहिए। इस भूमि पर वास्तु निर्माणकर्ता सुख प्राप्त करेगा। यदि पांच दिन में अंकुर निकलें तो इसे मध्यम फलदायी समझना चाहिए। यदि सात दिन में अंकुर निकलें तो यह भूमि भवन निर्माता के लिए अधम फलदायी तथा दुखदायी होगी। यदि उस भूमि पर चारों ओर बीज बोएं तो जितनी भूमि पर बीज न उगें, उस भूमि को संकोच रहित होकर छोड़ देना चाहिए।

भूमि परीक्षा विधि क्रं. 6

प्रदोषे कंट संद्धतामिस्त्रियां च तद्भुवि।
ऊँ हूँ फडित्यस्त्रमन्त्र लातायामाम भाजने।।
रक्तां पीतासितां न्यस्य वर्ति सर्वाः प्रबोध्यताः।
अनादि सिद्ध मन्त्रेण मन्त्रयेदा घृतक्षयात्।।
शुद्धं ज्वलंतीषु शुभं विध्यातीष्वशुभंवदेत्।

प्रतिष्ठा विधि दर्पण पृ.4

संध्या समय जब कुछ अंधेरा होने लगे तब थोड़ी जमीन के चारो ओर परकोटे की भांति चटाई बांध दें ताकि उसमें हवा का प्रवेश न हो सके। तदुपरांत उस जमीन पर 'ऊँ हूं फट्' इस अस्त्र मंत्र को लिखें। उस लिखे हुए मंत्र वाक्य पर मिट्टी का कच्चा घड़ा रखकर उस पर एक कच्ची मिट्टी का दीपक रखें एवं उसे घी से पूरा भर देवें। उसमें चार बाती, पूर्व में सफेद, दक्षिण में लाल, पश्चिम में पीला तथा उत्तर में काली बाती बनाकर दीपक रख देवें। उन बातियों को निम्न महामंत्र से मंत्रित करें।

ॐ णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।
चत्तारि मंगलं अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं,
केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि। अरिहंत सरणं पव्वज्जामि,
सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलि पण्णत्तो धम्मं सरणं पव्वज्जामि।
ह्रौं शांति कुरु कुरु स्वाहा।।

उपरोक्त मंत्र से मन्त्रित करके बातियों को जला दीजिए। यदि बातियां घी समाप्त होने तक जलती रहें तो भूमि शुभ समझना चाहिए यदि वे बातियां घी समाप्त होने से पूर्व ही बुझती सरीखी लगें तो भूमि भवननिर्माता के लिए अशुभ एवं पीड़ा का कारण होगी।

भूमि परीक्षा विधि क्र. 7

पांशवो रेणुतां नीत्वा, निरीक्षेदन्तरिक्षगाः।
अधो मध्योर्ध्वगाः नृणां गति तुल्य फलप्रदाः।।

विश्वकर्मा प्रकाश पृ. 11

जिस भूमि पर वास्तु निर्माण करना है, उस भूमि की धूलि को जोर से आकाश में फेंककर परीक्षण करें। यदि भूमि की धूलि नीचे की ओर जाती है तो भूस्वामी की अवनति होगी। यदि धूलि मध्य में रुक जाती है तो भूस्वामी यथास्थिति ही रहता है, प्रगति नहीं करता। यदि ऊपर की ओर जाती है तो भूस्वामी की उन्नति होगी।

इस प्रकार वास्तु निर्माण के पूर्व ही भूमि की परीक्षा कर लेना अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि उपयुक्त भूमि पर जिनालय अथवा भवन निर्माण कराया जावे तो वे उसमें वास करने वालों को दीर्घ काल तक सुख दायक होंगे।

भूमि की गंध
Smell of Land

वृहत्संहिता में उल्लेख है -

शस्तौषधि द्रुमलता मधुरा सुगन्धा
स्निग्धा समान सुषिरा च मही नराणाम्।
अप्यध्वनि श्रम विनोद मुपागतानां
धत्ते श्रियं किमुत शाश्वत मन्दिरेषु।।

जो भूमि अनेक प्रकार से प्रशंसनीय औषधि वृक्ष और लताओं से सुशोभित हो, मधुर स्वाद वाली हो, उत्तम सुगंध वाली हो, चिकनी हो, गड्ढों एवं छिद्रों से रहित हो, मार्ग श्रम को शांत करमन को आनंदित करने वाली हो, ऐसी भूमि पर ही वास्तु का निर्माण करना चाहिए।

भूमि परीक्षा विधि

जमीन में छोटा सा गड्ढा करके मिट्टी निकालकर उसे सूंघना चाहिए। यदि सूंघने पर तली हुई चीजों के समान बास आती है तो वह जमीन उत्तम है। ऐसी जमीन पर वास्तु का निर्माण कर निवास करने वाले परिवार सुखी, समृद्धिशाली होते हैं तथा स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

यदि मिट्टी से अनाज सरीखी गंध आती है तो यह व्यापारी वर्ग को धनार्जन करने के लिए उपयुक्त रहती है।

यदि मिट्टी से मदिरा या सड़ी-गली चीजों की बास आती है तो यह उत्तम नहीं है। ऐसी जमीन पर निर्माण दरिद्रता को लाता है।

यदि जमीन में खून की गंध आती है तो इससे क्रूर भावना उत्पन्न होती है। ऐसी भूमि पर निर्माण कर निवास करने वाले लोग उग्र, जोशीले स्वभाव को धारण करते हैं।

भूमि का वर्ण
Colour of Land

वास्तु निर्माण में भूमि की सर्वोपति भूमिका होती है। कहा गया है -

'बहुरत्ना हि वसुन्धरा'

पृथ्वी अनेकों रत्नों को धारण करने से बहूमूल्यवान है।

मनसश्चक्षुषोर्यत्र सन्तोषो जायते भुवि।
तस्यां कार्यं गृहं सर्वैरिति गर्गादि सम्मतम्।।

- गर्ग ऋषि

जिस भूमि को देखने मात्र से मन, नेत्र को संतोष होता है उस भूमि पर गृह बनाने से गृहस्थ का जीवन सुसंस्कारित एवं सुखमय बीतता है।

वास्तु शास्त्र में जमीन का और घर के अंदर बाहर रंग का महत्व है। पृथक-पृथक रंगों की भूमि वर्णानुसार मनुष्यों के लिए उपयोगी है। भारतीय संस्कृति में वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत चार वर्ण हैं -

1. ब्राह्मण 2. क्षत्रिय 3. वैश्य 4. शूद्र

चतुर्थ काल के प्रारंभ में तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव तथा उनके पुत्र भरत चक्रवर्ती ने यह व्यवस्था आरम्भ की थी।

सियविप्पि अरूणखत्तिणि पीयवइसी अ कसिणसुद्दी अ।
महियवण्णपमाणा भूमि णिय णिय वण्णसुक्खयरी।।

- वास्तु प्र. 1 गाथ 5

सफेद रंग की भूमि ब्राह्मणों के लिए लाभदायक है। लाल रंग की भूमि क्षत्रियों को उत्तम फल प्रदान करती है। पीले रंग की भूमि वैश्य (वणिक्) जनों के लिए फलदायी है तथा काले रंग की भूमि शूद्रो के लिए फलदायी होती है। अतएव चारों वर्णों के लोगों को अपने अनुकूल जमीन ही क्रय करना उचित है।

सफेद वर्ण की भूमि पर वास्तु निर्माण करने से परिवार को ज्ञान, विवेक, बुद्धि की प्राप्ति होती है। तत्वज्ञान, आध्यात्मिक शांति तथा ध्यान साधना के लिए यह उपयुक्त भूमि है।

लाल रंग की भूमि शूरवीरता के लिए, शारीरिक बल हेतु तथा रूप सौंदर्य हेतु, विशेषत: क्षत्रिय राजपूतों के लिए तथा राजप्रासाद एवं शासकीय भवन निर्माण के लिए उपयोगी है।

पीले रंग की भूमि व्यापार वृत्ति के व्यापारी, उद्योगपति, वैश्यों के लिए आर्थिक उन्नति धन धान्य सम्पन्न कराने वाली होने से उनके लिए अनुकूल फलदायक होती है। ऐसी भूमि पर मकान बनाने से परिवार सुखी, समृद्ध एवं धन सम्पन्न बनता है।

काले रंग की भूमि शूद्र वृत्ति के लोगों के लिए उपयुक्त है किन्तु अन्य तीन वर्ण वाले यदि वहां वास्तु निर्माण करते हैं, तो उन्हें परेशानियां आती हैं, व्यय अधिक होता है तथा दिन प्रतिदिन व्यय में वृद्धि होती है।

भूमि का स्पर्श
Touch of Land

कांकरीली, पथरीली या उबड़ खाबड़ जमीन पर चलने मात्र से मनुष्य दुखी होता है। ऐसी जमीन वास्तु निर्माण के उपरांत भी सुखदायी न होगी। जमीन के स्पर्श मात्र से प्रसन्नता का अनुभव होना चाहिए। जमीन पर चलने से मन में वहां रूककर बैठने की सुखद अनुभूति होना चाहिए।

घर्मागमे हिमस्पर्शा या स्यादुष्णा हिमागमे।
प्रावृष्युष्णा हिमस्पर्शा सा प्रशस्ता वसुन्धरा।।

– *समरांगण सूत्र*

जो भूमि ग्रीष्म ऋतु में ठंडी, शीत ऋतु में गर्म, वर्षा ऋतु में शीतोष्ण (गरम–ठंडी) रहती है वह भूमि प्रशंसनीय है। ऐसी भूमि पर निर्माण की गई वास्तु सुखदायक होती है।

भूमि शोधन विचार

जो भूमि नदी के तट में होने से कटाव में हो जिसमें बड़े-बड़े पत्थर हो, जिसमें पर्वतों का अग्र भाग मिला हो, सछिद्र हो, टेढ़ी-मेढ़ी हो, सूपाकार अर्थात् आगे चौड़ी, पीछे संकरी हो, जिसमें दिशाओं का निर्णय न हो, निस्तेज हो, मध्य में विकट रूप हो, जिसमें सांपों की बामियां हो, कंटीले वृक्ष युक्त हो, बड़े-बड़े वृक्षों वाली हो, बहुत रेतीली हो, भूतपिशाचादि का वास हो, ऐसी भूमि को वास्तु निर्माण के लिए अनुपयुक्त समझकर त्याग देना चाहिए।

यदि भूमि पर श्मशान हो अथवा श्मशान का मार्ग हो, दलदल (कीचड़) उत्पन्न करने वाली हो, कटी फटी या दरार युक्त हो, जमीन के मध्य से कोई नाला या नदी जाती हो, जमीन पर अस्थि, कोयला, बाल आदि अशुभ द्रव्य पड़े हो अथवा जमीन तक जाने का मार्ग न हो तो ऐसी भूमि भी वास्तु निर्माण के लिए निरुपयोगी समझकर त्याग देना चाहिए।

यदि भूमि में नेवला, खरगोश रहते हों तो वह भूमि उत्तम है। वहां पर वास्तु निर्माण कर्ता को पराक्रमी पुत्रों की प्राप्ती होती है।

यदि भूमि पर लोमड़ी, सियार आदि प्राणी रहते हों तो यह भी अशुभ हैं यहां निर्माण करने से दरिद्रता का आगमन होता है।

यदि भूमि पर शेर, बाघ आदि वन्य प्राणी रहते हो तो आसुरीवृत्ति की भूमि होने से यह भी त्याज्य है।

वम्मइणी वाहिकरी ऊसर भूमीइ हवइ रोरकरी।
अइफुट्टा मिच्चुकरी दुक्खकरी तह य ससल्ला।।

- वास्तुसार प्र. 1 गा. 10.

दीमक वाली भूमि पर भवन निर्माण करने से व्याधियां आती हैं। खारी भूमि निर्धनता उत्पन्न करती है। फटी हुई जमीन पर निर्माण की गई वास्तु मृत्युकारक है। जमीन में हड्डी आदि शल्य दुख उत्पन्न करती हैं।

यदि भूमि में अस्थि आदि शल्य हों तो उसका शोधन करना आवश्यक है क्योंकि ये अति दुखदायक होती हैं।

बकचतएहसपज्जा इअ नव वण्णा कमेण लिहियव्वा।
पुव्वाइदिसासु तहा भूमिं काऊण नव भाए।।11।।
अहिमंतिऊण खडियं विहिपुव्वं कन्नाया करेदाओ।
आणाविज्जइ पण्हं पण्हा इह अक्खरे सल्लं ।।12।।

- वास्तुसार प्र. 1

जिस भूमि पर भवन निर्माण इष्ट हो, उस भूमि में समान नवभाग करें। इन नव भागों में पूर्वार्द्ध अष्ट दिशा तथा एक मध्य ब,क,च,त,ए,ह,स,प और ज ऐसे नव अक्षर क्रमवार लिखें। अग्रलिखित रीति से यंत्र बनाकर

'ऊं ह्रीं श्रीं ऐं नमो वाग्वादिनि मम प्रश्ने अवतर अवतर

ईशान प	पूर्व ब	अग्नि क
उत्तर स	मध्य ज	दक्षिण च
वायव्य ह	पश्चिम ए	नैऋत्य त

शल्य शोधन यंत्र

इस मंत्र से खड़िया (सफेद मिट्टी या चाक) को 108 बार मंत्रित करके कुमारी कन्या के हाथ में देकर उससे प्रश्नाक्षर बुलवाना या लिखवाना। यदि उपरोक्त नव अक्षरों में से कोई अक्षर लिखे या बोले उसी अक्षर वाले भाग में शल्य जानना चाहिए। यदि उपरोक्त नव अक्षरों में से कोई अक्षर प्रश्न में न आए तो भूमि शल्य रहित समझना चाहिए।

प्रश्नाक्षर	शल्य	फल
ब	पूर्व में डेढ़ हाथ नीचे मनुष्य की हड्डी	मरणकारक
क	आग्नेय में दो हाथ नीचे गधे की हड्डी	राजभय
च	दक्षिण में कमर जितना नीचे मनुष्य की हड्डी	मरणभय
त	नैऋत्य में डेढ़ हाथ नीचे कुत्ते की हड्डी	संतान हानि
ए	पश्चिम में दो हाथ नीचे बच्चे की हड्डी	गृहपति का परदेश गमन
ह	वायव्य में चार हाथ नीचे कोयला	मित्रों का अभाव
स	उत्तर में दो हाथ नीचे ब्राह्मण की हड्डी	दरिद्रता
प	ईशान में डेढ़ हाथ नीचे गाय की हड्डी	धननाश
ज	मध्य भूमि में तीन हाथ नीचे अतिक्षार, कपाल, केश	मृत्युकारक

प्रतिष्ठासार ग्रंथ में कथन है कि गृह निर्माण की भूमि में यदि एक पुरुष प्रमाण नीचे कोई शल्य हो तो कोई दोष नहीं है किंतु देवमंदिर की निर्माण भूमि को जहां तक जल आवे वहां तक खोदकर शल्य का शोधन करना उपयुक्त है।

विश्वकर्माप्रकाश के पृष्ठ 192 में उल्लेख है कि

जलान्तं प्रस्तरान्तं व पुरुषान्तमथापि वा।
क्षेत्रं संशोध्यचोद्धृत्य सदनमारभेत्।।

जमीन की शल्य का निराकरण करने हेतु जमीन को जल आने तक या पत्थर की चट्टान लगने तक अथवा एक पुरुष प्रमाण तक खोदकर शुद्ध कर लेना चाहिए। पश्चात उस जमीन पर देवालय, भवन या दुकान, कारखाना आदि निर्मित करना चाहिए।

विशेषत: देवालय की भूमि में वेदी के नीचे, गृह भूमि में, आंगन में, देहरी और दरवाजे के नीचे अथवा समीप में कोई शल्य या अपवित्र पदार्थ हों तो उन्हें शीघ्र ही दूर कर लेना चाहिए।

देवालय या गृह भूमि में शल्य होने से ग्राम उजड़ना, समाज में कलह, धर्मभावना हीन होना, रोगोत्पत्ति होना, अग्नि भय, मित्र नाश, परदेश गमन, संतान हानि, क्लेश, पशु एवं धन हानि अकालमरण, बुरे स्वप्न, पागलपन आदि संकटों का बार-बार आगमन होता है।

अतएव हितेच्छुक को सर्वप्रथम शुभदिवस नक्षत्र, जिस दिन चन्द्र एवं तारा स्वानुकूल हो उस दिन शुभ लग्न, शुभ समय में भूमि खोदकर शल्य निवारण कर लेना चाहिए। शल्य निवारण के पूर्व एक दिवस विधिवत् भूमि पूजन अवश्य करें।

भूमि का आकार
Shape of Land

वास्तु शास्त्र में उल्लेख है कि प्राकृतिक रूप से यदि भूमि की आठ दिशाओं का परिमाण सम और चौरस हो तो वह भूमि उत्तम है। भूमि का कोई भी कोना यदि कम-ज्यादा हो तो पारिवारिक परेशानियों में वृद्धि होती है। अतः जमीन के आकार का निर्णय तथा तदनुसार शुभाशुभ फल अवश्य ही विचार लेना चाहिए।

1. यदि भूमि चौरस तथा समकोण (90°) कोण के आकार वाली अर्थात् वर्गाकार या आयताकार है, तो वह भूमि उत्तम, सर्वसुख आनंद दायी होती है तथा धन वैभव आयु एवं आरोग्य में वृद्धि करने वाली है।

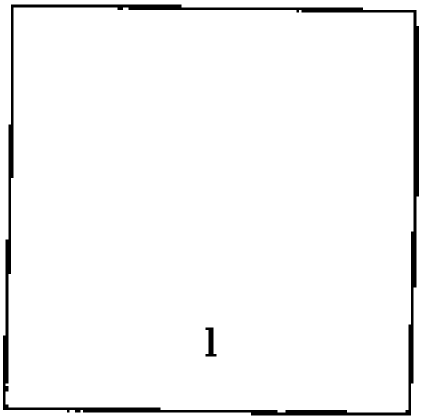

2. यदि भूमि त्रिकोण आकृति की है तो यह परिवार के लिए अशुभ है। इसमें स्वामी को मानसिक संताप, अदालत की परेशानियां तथा कार्यों में अपयश प्राप्त होता है।

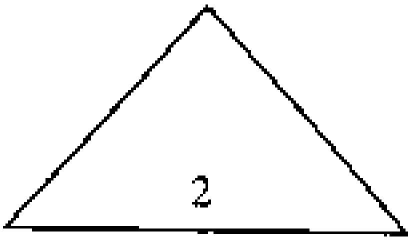

3. ईशान दिशा का कोण 90° से कुछ अधिक होने पर सुख समृद्धि दायक व शुभ है।

4. वायव्य दिशा को कोण 90° से कुछ अधिक होने पर अशुभ तथा हिंसात्मक कार्यों का कराने वाला है।

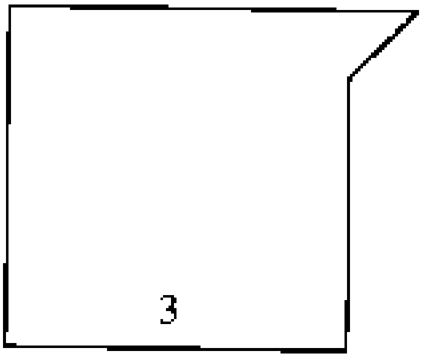

अधिक ईशान कोण

5. नैऋत्य दिशा का कोण 90° से कुछ अधिक होने पर अशुभ है। स्वामी की राक्षसी, आसुरी प्रवृत्तियों में वृद्धि होती है।

6. आग्नेय दिशा का कोण 90° से कुछ अधिक रहने पर चिंताओं में वृद्धि होती है।

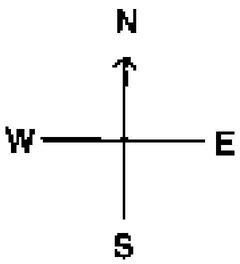

7. भूमि वर्तुलाकृति अर्थात् गोलाकर होने पर स्वामी का स्वभाव अस्थिर प्रवृत्ति का होता है तथा सफलता नहीं मिलती।

8. पांच कोने वाली जमीन दुख उत्पन्न करती है।

9. यदि भूखण्ड प्रवेश करते समय कम चौड़ा तथा पीछे की ओर का भाग अधिक चौड़ा हो तो उसे गोमुखी भूखण्ड कहते हैं।

अधिक वायव्य कोण

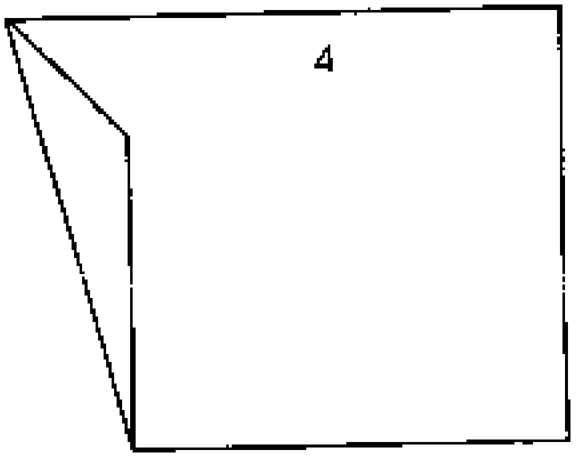

अधिक नैत्रत्य कोण

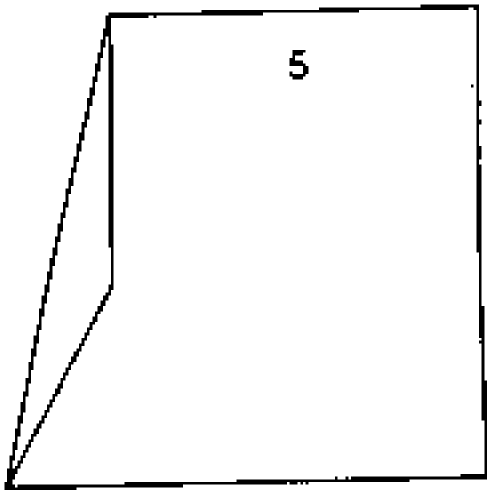

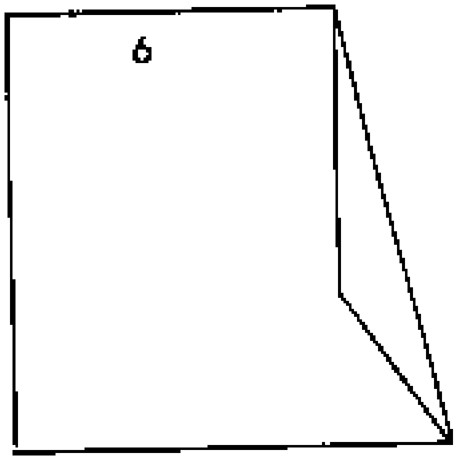

अधिक आग्नेय कोण

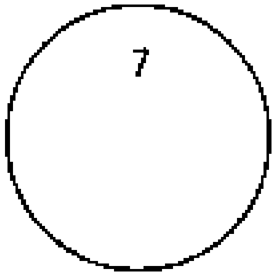

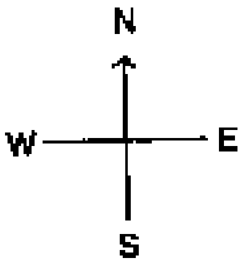

दिशा निर्धारण

Determination of Directions

वास्तु का निर्माण करने से पूर्व दिशाओं का निर्धारण करना आवश्यक होता है। दिशाओं का विचार किए बिना निर्मित किए गए वास्तु निर्माण अनपेक्षित परेशानियों को जन्म देते हैं। मंदिर, मकान, धर्मशाला, दुकान, कारखाना, औषधालय, अनाथालय छात्रावास, वाचनालय, पाठशाला, महाविद्यालय, आश्रम, कार्यालय आदि कोई भी निर्माण कार्य करने से पूर्व दिशाओं का निर्धारण अवश्य कर लेना चाहिए तथा दिशाओं के अनुकूल-प्रतिकूल फलों का विचार करके ही निर्माण कार्य की योजना बनाना उपयुक्त है। दिशाओं की अनुकूलता जहां स्वामी को धन, धान्य, आयु, बल, आरोग्य लाभकारक होती है वहीं इनकी प्रतिकूलता अर्थ हानि, पारिवारिक एवं शारीरिक विपत्तियों परेशानियों, कलह, विवाद, विसंवाद को आमंत्रण देती है।

प्रकृति में दश दिशाएं मानी गई हैं -

चार प्रमुख दिशाएं - **पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण**

चार विदिशाएं - **ईशान, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य**

तथा ऊर्ध्व यानी ऊपर एवं अधो यानी नीचे (पाताल की ओर)।

दिशा निर्धारण की आधुनिक विधि

Modern Method of Determination of Directions

वर्तमान युग में चुम्बकीय सुई (Magnetic Compass) के द्वारा दिशा निर्धारण किया जाता है। चुम्बकीय सुई एक ऐसी सुई है जो चिन्हांकित

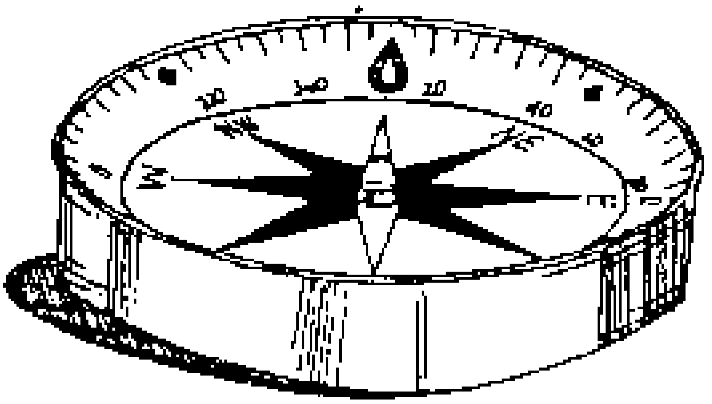

चुम्बकीय सुई

वृत्ताकार डायल पर स्वतंत्रता पूर्वक घूमती है। यह सुई सदैव उत्तर दिशा की ओर संकेत करती है। यह डायल सीधे ही या पारे पर लगाया जाता है। उत्तर दिशा की ओर संकेत करने से वहां पर बने डायल में 360° डिग्री के चिन्हों द्वारा सभी दिशाओं का निर्धारण कर लिया जाता है। चुम्बकीय सुई पृथ्वी की चुम्बकीय धारा के अनुरूप उसके समानांतर हो जाती है अतः सदैव वह उत्तर-दक्षिण दिशा में ही स्थिर होती है तथा चिन्ह के द्वारा उत्तर दिशा को सदैव दर्शाती रहती है। दिशा निर्धारण की यह विधि सरल तथा व्यवहारिक है।

दिशा निर्धारण की प्राचीन विधि

Old Method of Determination of Directions

रात्रौ दिक्साधनं कुर्याद् दीप सूत्र ध्रुवैक्यतः।
समे भूमि प्रदेशे तु, शंकुना दिवसेऽथवा।।22।।

– प्रासाद मंडन

मकान और मंदिर को सही दिशा में निर्माण करने के लिए रात्रि में दिशा साधन दीपक, सूत एवं ध्रुव से किया जाता है। दिवस में दिशा साधन समतल भूमि पर शंकु रखकर किया जाता है।

समभूमि दुकरवित्थरि दुरेह चक्करस मज्झि रविसंकं।
पढ़मंतछायागब्भो जमुत्तरा अद्धि उदयत्थं।।

– वास्तुसार प्र. 1 गा. 6

समतल भूमि पर दो हाथ के विस्तार वाला एक गोल चक्र बनाएं। इसके केन्द्र बिन्दु में बारह अंगुल का एक शंकु स्थापित करें। पुनः सूर्य के उदयार्द्ध के समय शंकु की छाया का अंतिम भाग गोलाकृति की परिधि में जहां पर लगे, उसे चिन्हित कर दें तथा इसे पश्चिम दिशा समझें। इसी तरह सूर्य के अस्त समय में करें तथा दूसरा चिन्ह करें। यह पूर्व दिशा है इन दोनों बिन्दुओं को मिलाकर एक सीधी रेखा खीचें। अब इस रेखा के तुल्य त्रिज्या (अर्धव्यास) मानकर पूर्व बिन्दु तथा पश्चिम बिंदु से दो वृत्त खींचे। इससे दोनों वृत्तों को काटने से मत्स्याकृति बनेगी। दोनों काटे गये बिंदुओं को जोड़ दें। ऊपर की ओर उत्तर तथा नीचे की ओर दक्षिण दिशा होगी।

उदाहरणार्थ 'अ' केन्द्र बिन्दु पर बारह अंगुल का शंकु स्थापन करें तथा इसी बिंदु से दो हाथ त्रिज्या का एक वृत्त खींचें। सूर्योदय के समय शंकु की छाया वृत्त में क बिन्दु पर स्पर्श करती है। तथा मध्यान्ह के समय च बिन्दु से निकलती है संध्या समय सूर्यास्त पर च बिन्दु से होकर रेखा खींचने पर

प्राप्त रेखा पश्चिम से पूर्व दिशा है। अब इसी रेखा क अ च पर क केन्द्र बिन्दु से एक वृत्त तथा च केन्द्र से दूसरा वृत्त दो हाथ का बनाने पर मध्य में मत्स्याकार बन जाता है। इसके दोनों काटने वाले बिन्दुओं को मिलाने से उत्तर दक्षिण रेखा उ द प्राप्त होती है। यह रेखा पूर्व पश्चिम रेखा को समकोण 90 अंश पर काटती है। पूर्व की ओर मुख करके खड़े होने पर बायीं ओर उत्तर तथा दाहिनी ओर दक्षिणी दिशा समझना चाहिए।

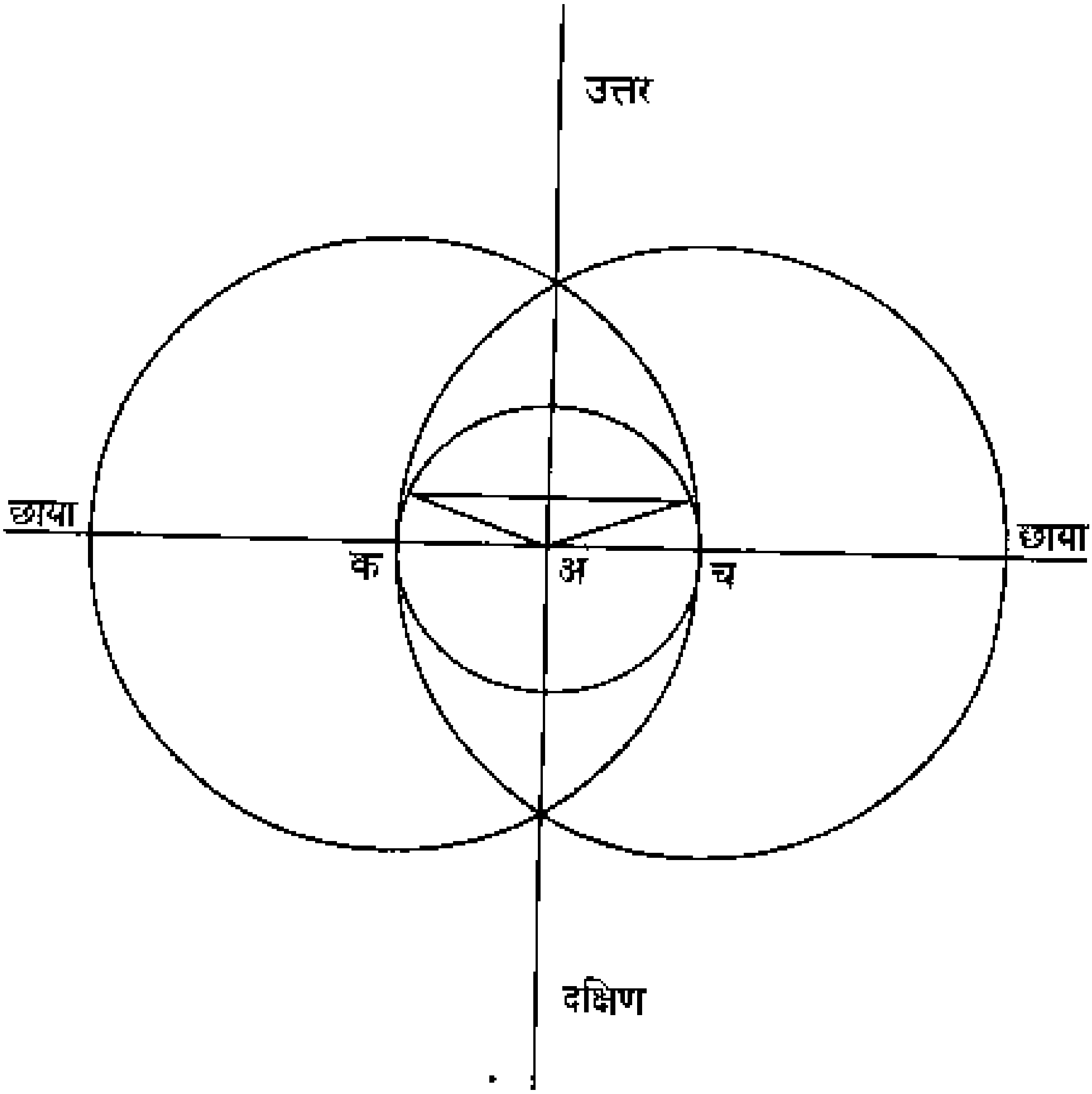

उपरोक्त विधि की अपेक्षा वर्तमान चुम्बकीय सुई से दिशा ज्ञान करना सरल एवं व्यवहारिक है।

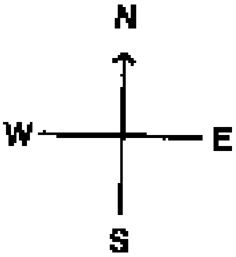

वास्तु का दिशा विचार
Direction of Vaastu

जैसा कि पूर्व में वर्णित है, प्राकृतिक रूप से चार प्रमुख दिशाएं, चार विदिशाएं तथा ऊर्ध्व एवं अधो, इस प्रकार दश दिशाएं मानी जाती हैं। प्रत्येक दिशा का अपना-अपना महत्व एवं गुणधर्म निम्नानुसार है :-

पूर्व दिशा East : सूर्योदय की दिशा पूर्व कहलाती है। यह अभ्युदय कारक है। प्रातः काल प्राप्त होने वाली सूर्य रश्मियां मानवीय चेतना में जागृति एवं स्फूर्ति का संचार करती हैं। उत्साह का संवर्धन करती है। मस्तिष्क को तरोताजा बनाती हैं। आयु, आरोग्य में वृद्धि करती हैं। यदि घर के दरवाजे एवं खिड़कियां पूर्वाभिमुखी हों तो निश्चय ही वे सूर्य की समग्र चेतना का घर में संचय करती हैं।

उत्तर दिशा North : उत्तर दिशा का भी वास्तुशास्त्र की अपेक्षा से बड़ा महत्व माना जाता है। उत्तर दिशा कुबेर की मानी जाती है। इस दिशा में मुख करके विचार करने से शंका का समाधान शीघ्रता से हो जाता है अतएव चिंतन के लिए सामान्यतः उत्तर दिशा की ओर ही मुख रखा जाता है। इसके अतिरिक्त नक्षत्रमंडल में विशिष्ट स्थान रखने वाला ध्रुव तारा सदैव उत्तर दिशा में ही स्थिर रहता है जबकि अन्य तारे दिशा परिवर्तित कर लेते हैं। इस तरह यह दिशा स्थिरता की द्योतक है।

उत्तर दिशा में स्थित विदेह क्षेत्र में सदैव बीस तीर्थंकर विद्यमान रहते हैं। इनके स्मरण मात्र से मन को आनंद होता है। शुभ-विचार उत्पन्न होने से अनायास ही पुण्यास्रव होता है। कुबेर का वास्तव्य उत्तर में माना जाने से इसे धन संपत्ति दायक माना जाता है। घर के दरवाजे एवं खिड़कियां उत्तर की ओर रहने के कारण घर पर कुबेर की सीधी दृष्टि पड़ने से विपुल धन-धन्य, वैभव तथा आर्थिक सम्पन्नता की प्राप्ति होती है।

पूर्व और उत्तर ये दोनों दिशाएं लौकिक तथा पारमार्थिक दृष्टि से ध्यान मनन, चिंतन तथा शुभकार्य एवं वाणिज्य के लिए शुभ एवं लाभदायक होती हैं।

दक्षिण दिशा South : इस दिशा का स्वामी यम माना जाता है। यम का अर्थ संहारक या नाशक है। दक्षिण का अर्थ विलासिता भी है, इस कारण व्यक्ति मौजमस्ती में उलझकर व्यसनों में पड़ जाता है। तथा अंततः पतित

होता है। आर्थिक, शारीरिक एवं पारिवारिक दृष्टि से वह दुखी रहता है। अतएव इसे अशुभ माना जाता है। इसी कारण मकान में दक्षिण में दरवाजे, खिड़की नहीं रखे जाना चाहिए। कदाचित् दक्षिण दिशा में ज्यादा भार तथा उत्तर एवं पूर्व में कम भार रखने पर संतोष, समृद्धि प्रदाता भी होता है।

पश्चिम दिशा West : पश्चिम दिशा अर्थात् पाश्चात्य या पीछे की दिशा। इसका स्वामी वरूण माना जाता है। इसका प्रभाव चंचल होने से घर, दुकान आदि पश्चिमाभिमुखी होने पर लक्ष्मी चंचल या अस्थिर होती है। इस कारण यह दिशा अपेक्षाकृत कम उपयोगी मानी जाती है।

पूर्व और दक्षिण के मध्य आग्नेय दिशा है। इसमें अग्नि तत्व का स्थान माना जाता है। दक्षिण और पश्चिम में नैऋत्य दिशा है जिसे नैऋत्य का स्थान माना गया है। पश्चिम और उत्तर के मध्य वायव्य दिशा वायु का स्थान मानी गई है। पूर्व एवं उत्तर के मध्य ईशान दिशा है। दोनों शुभ दिशाओं के मध्य होने से इसे ईश्वर तुल्य स्थान माना जाता है।

मनुष्य के रहने का निवास, मंदिर, प्रासाद, दुकान, कारखाना, कार्यालय, आदि वास्तु निर्माण करते समय यदि वास्तुशास्त्र के अनुकूल निर्माण कराये जाये तो वे वास्तुएं सुख, समृद्धि, शांति तथा आनंद को प्रदान करने वाली होती हैं।

दिशाओं का शुभाशुभ विचार

दिशाओं का निर्धारण सूर्योदय की दिशा के आधार से किया जाता है। सूर्योदय की दिशा पूर्व कहलाती है। सूर्यास्त की दिशा पश्चिम दिशा कही जाती है। इनके अतिरिक्त सूर्योदय की दिशा से बायें ओर समकोण पर उत्तर दिशा तथा दायीं ओर समकोण पर दक्षिण दिशा होती है। इनके मध्य में चार विदिशाएं होती हैं। उत्तर एवं पूर्व के मध्य ईशान विदिशा होती है। पूर्व एवं दक्षिण के मध्य आग्नेय विदिशा होती है। दक्षिण एवं पश्चिम के मध्य नैऋत्य विदिशा होती है। पश्चिम एवं उत्तर के मध्य वायव्य विदिशा होती है।

इन अष्ट दिशाओं का मानव जीवन पर प्रभाव इस प्रकार पड़ता है–

1. **पूर्व** – पितृ दिशा है। मकान का पूर्वी खुला भाग पूरी तरह ढँक देने पर मकान स्वामी रहित हो जाता है अर्थात् परिवार के पुरुष प्रधान सदस्य का अवसान हो जाता है।
2. **आग्नेय** – स्वास्थ्य प्रदाता है।
3. **दक्षिण** – समृद्धि, सुख तथा संतोषदायक है। (यदि अन्य दिशाओं के साथ संतुलन कर इसे भारी बनाया जाता है)
4. **नैऋत्य** – व्यवहार, मनोभावना तथा अकालमृत्यु के लिए उत्तरदायी है।
5. **पश्चिम** – प्रगति, उत्कर्ष तथा प्रतिष्ठा प्रदाता है।
6. **वायव्य** – अन्य लोगों से सम्बन्धों का नियमन करता है जो हार्दिकता एवं आतिथ्य मे निमित्त है।
7. **उत्तर** – मातृ दिशा है। यह स्थान रिक्त न रखे जाने पर मकान निर्जन हो जाता है क्योंकि परिवार की महिला सदस्यों की मृत्यु हो जाने से परिवार बगैर स्त्रियों का हो जाता है।
8. **ईशान** – पुरुष वंश की निरंतरता को सुनिश्चित करता है। मकान में इस दिशा को काट देने से पुत्र नहीं होते।

भूखण्डों का वर्गीकरण
Classification of Plots

निर्माण करने के उद्देश्य से चयन किये हुये भूखण्डों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जाता है-

1. उत्तम 2. मध्यम 3. जघन्य 4. अतिजघन्य

उत्तम श्रेणी के भूखण्ड

इन भूखण्डों में निम्नलिखित विशेषताएं पाई जाती हैं-

भूखण्ड के चारों ओर सड़क हो एवं पूर्वी, उत्तरी सड़कें; दक्षिण एवं पश्चिम की सड़कों से नीची हों एवं ईशान कोण विस्तारीकृत होवे।

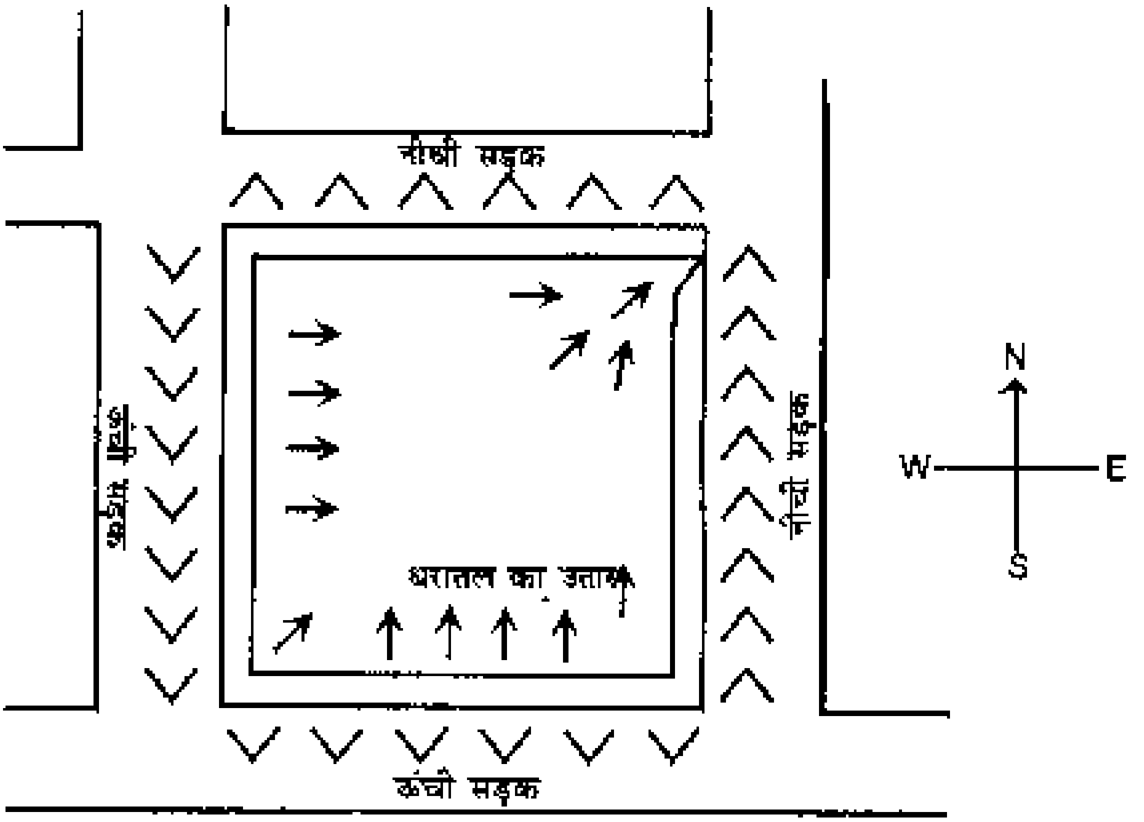

सर्वोत्कृष्ट भूखण्ड

अथवा ये भी उत्तम भूखण्ड हैं-
पूर्व, पश्चिम, उत्तर में सड़क हो एवं पश्चिम की सड़क पूर्व एवं उत्तर की सड़क से अधिक ऊंची हो एवं पश्चिम में बहुमंजिली इमारत हो।

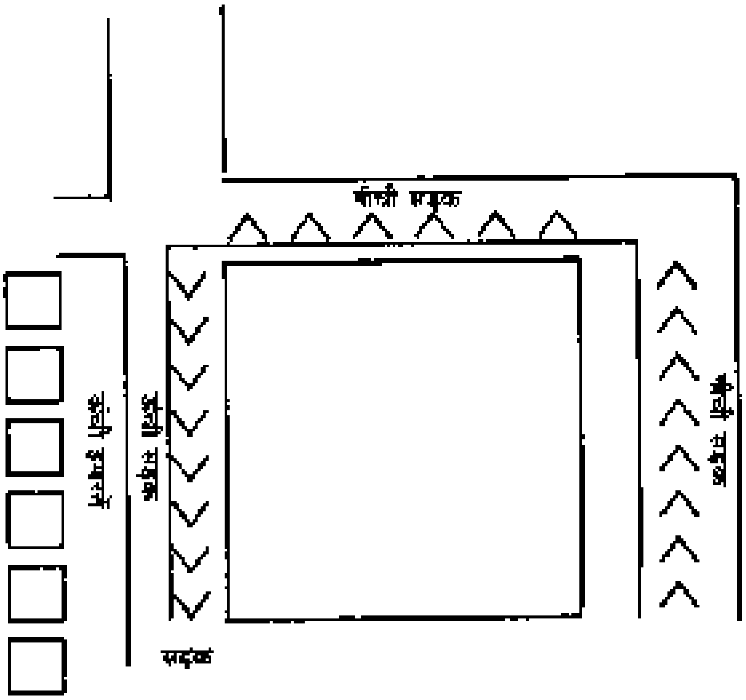

इनके अतिरिक्त ये भी उत्तम भूखण्ड हैं-
पश्चिम एवं उत्तर में सड़क हो एवं पश्चिमी वायव्य में मार्गारम्भ हो।

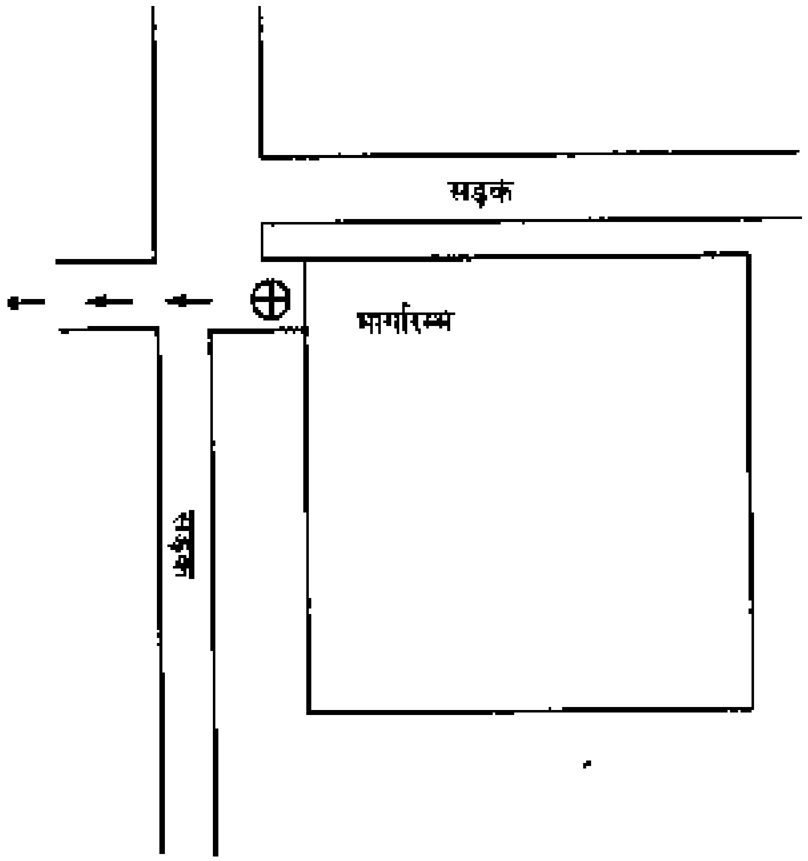

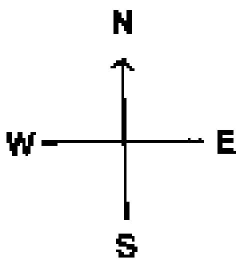

इनके अतिरिक्त ये भी उत्तम भूखण्ड हैं-
पूर्व एवं उत्तर में सड़क हो एवं ईशान दिशा में मार्गारम्भ हो एवं पूर्व व उत्तर की सड़कें भूखण्ड से ऊंची न हों।

महत्त्वपूर्ण संकेत–

इन भूखण्डों पर वास्तु निर्माण प्रारंभ करने से पूर्व ध्यान रखें कि यदि भूखण्ड सतह से पूर्वी सड़क ऊंची हो तथा उत्तरी सड़क नीची हो तो प्रवेश उत्तर से रखें।

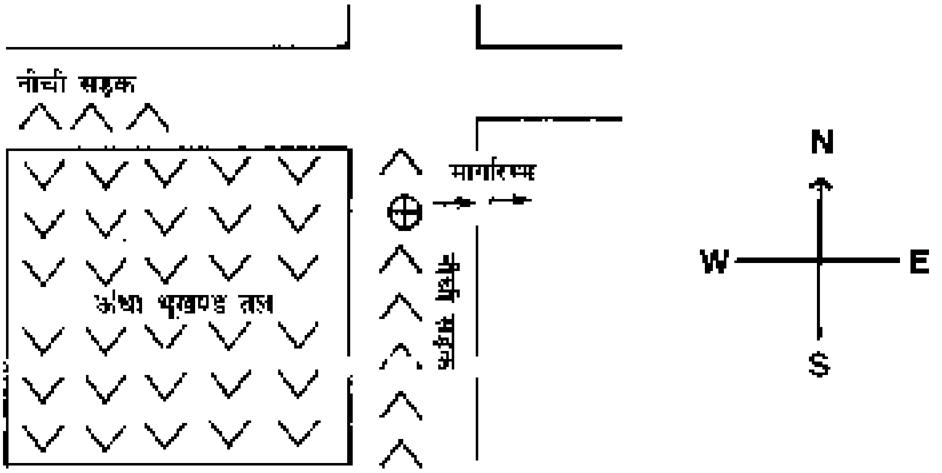

इसी प्रकार उत्तरी सड़क ऊंची हो तथा पूर्वी सड़क नीची हो तो प्रवेश पूर्व से रखें। यदि किसी कारण यह संभव न हो तथा ऊंची सड़क की तरफ ही प्रवेश रखना हो तो पूरे भूखण्ड का तल पुराव से भरकर ऊंचा कराना उचित है।

मध्यम श्रेणी के भूखण्ड

1. पश्चिम तथा पूर्व में सड़क हो तथा पूर्वी सड़क, पश्चिमी सड़क से नीची हो। (चित्र म-1)

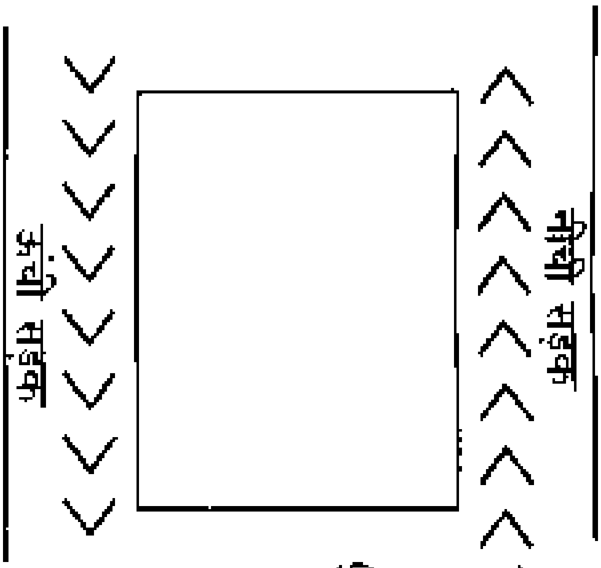

मध्यम भूखण्ड (चित्र म-1)

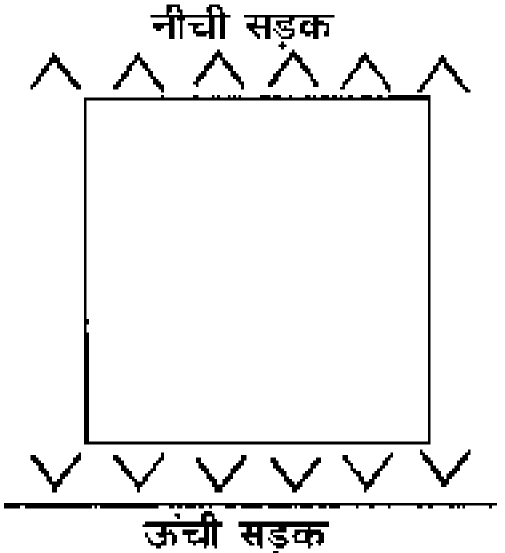

मध्यम भूखण्ड (चित्र म.-2)

2. उत्तर तथा दक्षिण में सड़क हो तथा उत्तरी सड़क दक्षिणी सड़क से नीची हो। (चित्र म-2)

3. पूर्व में सड़क हो जो भूखण्ड से नीची हो तथा पश्चिम और दक्षिण में बहुमंजिली इमारत हो। (चित्र म-3)

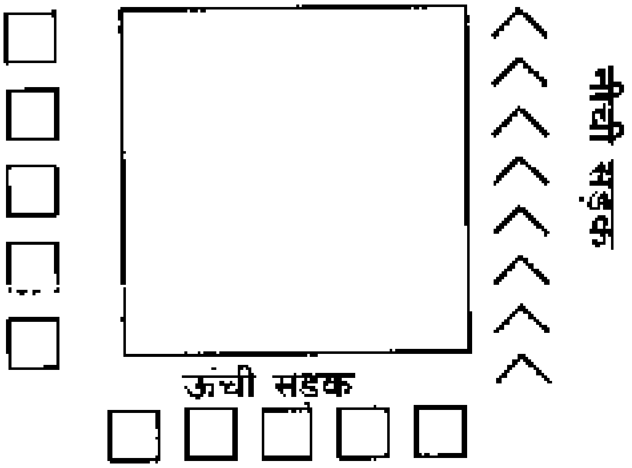

मध्यम भूखण्ड (चित्र म.-3)

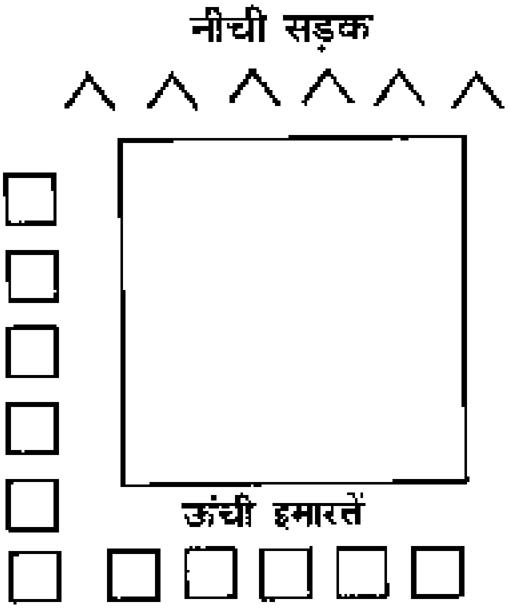

मध्यम भूखण्ड (चित्र म.-4)

4. उत्तर में सड़क हो जो भूखण्ड से नीची हो तथा पश्चिम और दक्षिण में बहुमंजिली इमारत हो। (चित्र म-4)

5. उत्तर, दक्षिण, पूर्व में सड़क हो तथा पूर्वी या उत्तरी सड़क भूखण्ड से ऊंची हो। (चित्र म-5)

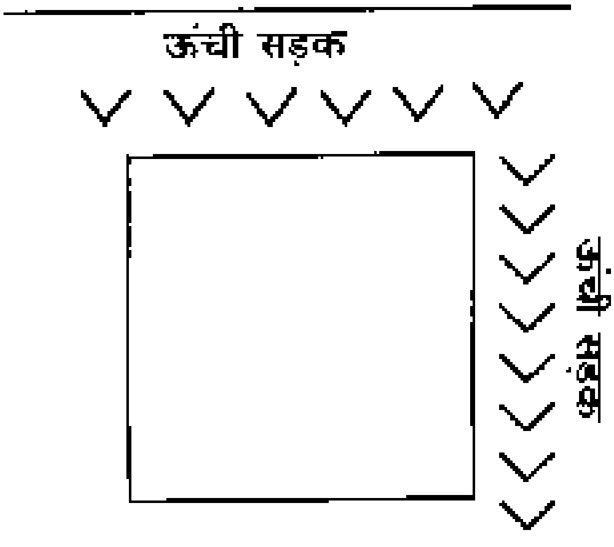

मध्यम भूखण्ड (चित्र म.-5)

6. उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम में सड़क हो तथा पश्चिमी सड़क, उत्तरी एवं पूर्वी सड़क से ऊंची हो। (चित्र म-6)

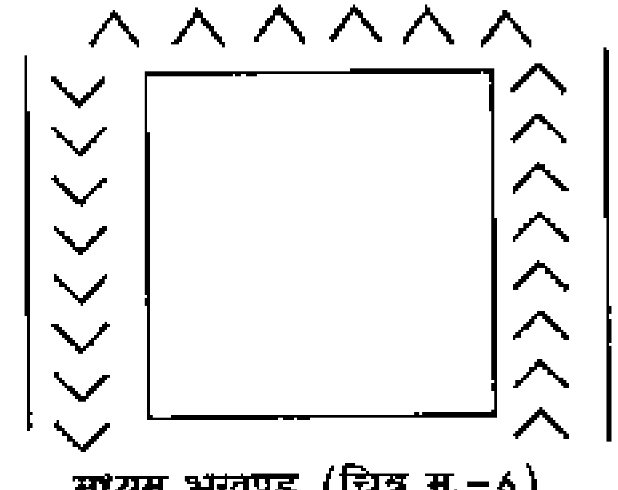
मध्यम भूखण्ड (चित्र म.-6)

7. तीन तरफ सड़क हो तथा पूर्व और उत्तर की सड़क भूखण्ड से ऊंची हो। (चित्र म–7)

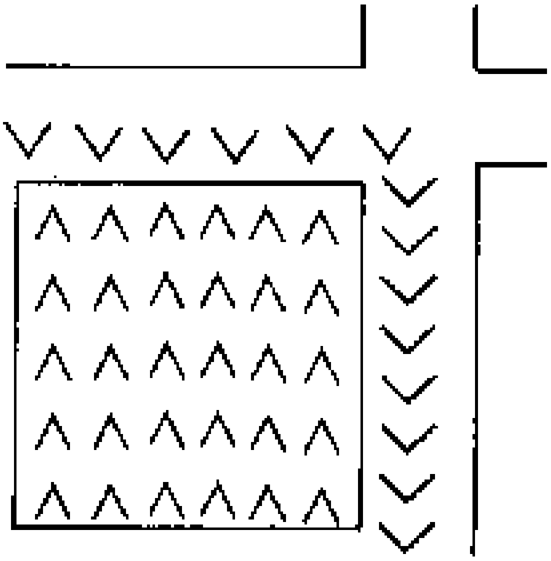

मध्यम भूखण्ड (चित्र म.–7)

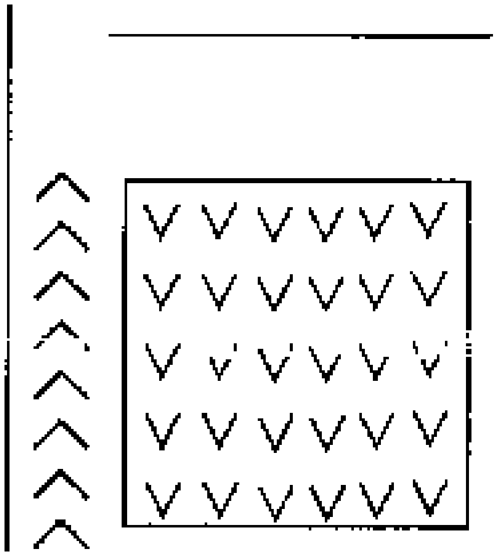

मध्यम भूखण्ड (चित्र म.–8)

8. उत्तर, पूर्व, पश्चिम में सड़क हो तथा पश्चिमी सड़क भूखण्ड से नीची हो।
(चित्र म–8)

9. उत्तर, पूर्व, दक्षिण में सड़क हो तथा दक्षिणी सड़क भूखण्ड से नीची हो।
(चित्र म–9)

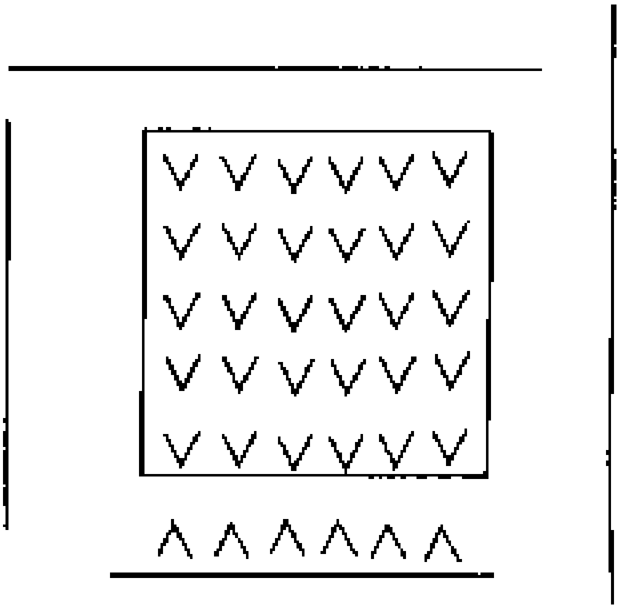

मध्यम भूखण्ड (चित्र म.–9)

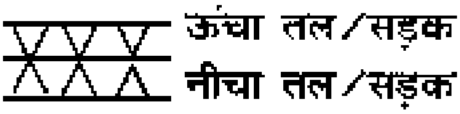

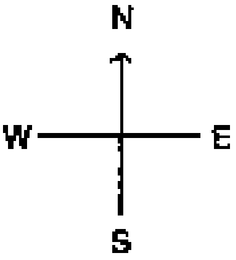

जघन्य श्रेणी के भूखण्ड

1. पूर्व में नीची सड़क हो तथा पश्चिम, दक्षिण, उत्तर में बहुमंजिली इमारत या पहाड़ियां हों (चित्र ज-1)

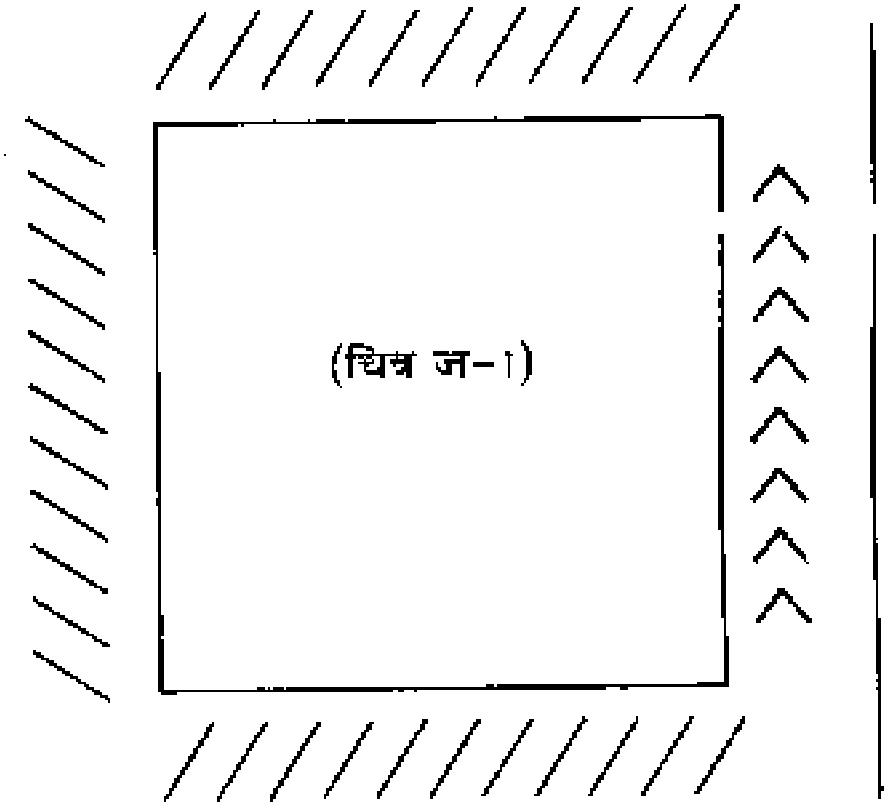

संकेत ///// पहाड़ियां या उंची इमारत

∧∧∧ नीची सड़क

2. पूर्व एवं दक्षिण में सड़क हो तथा पूर्वी एवं दक्षिणी सड़कें जुड़ी हों एवं पूर्वी सड़क नीची हो। (चित्र ज-2)

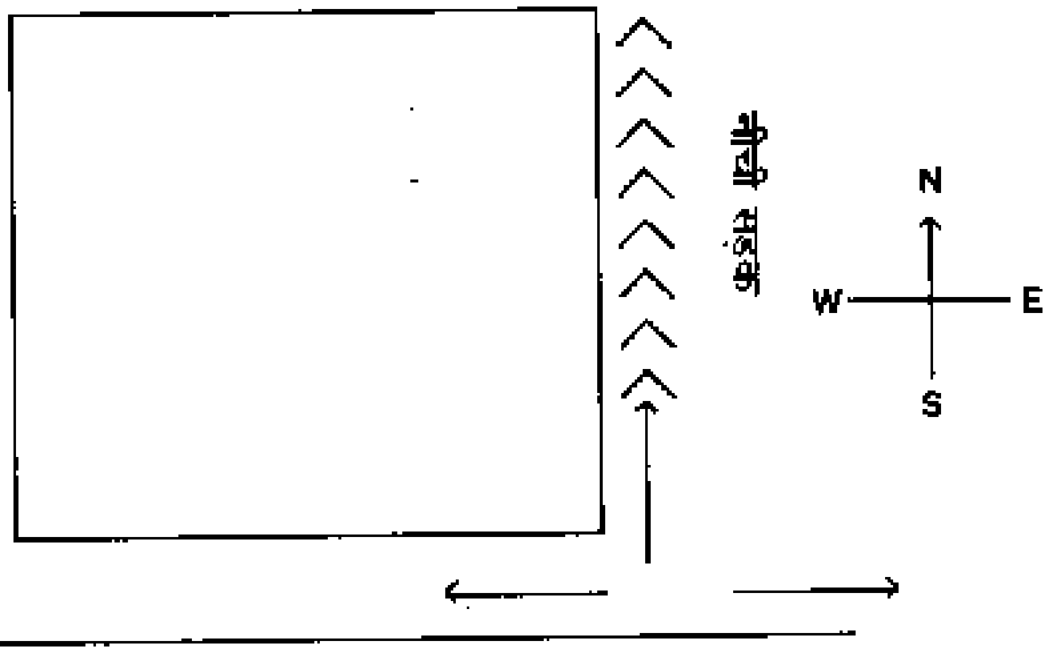

3. पश्चिम या दक्षिण में भूखण्ड से नीची सड़क हो तथा पूर्वी या उत्तरी दिशा में पहाड़ियां या ऊंची इमारतें हों तथा तीन तरफ सड़क हो। (चित्र ज-3)

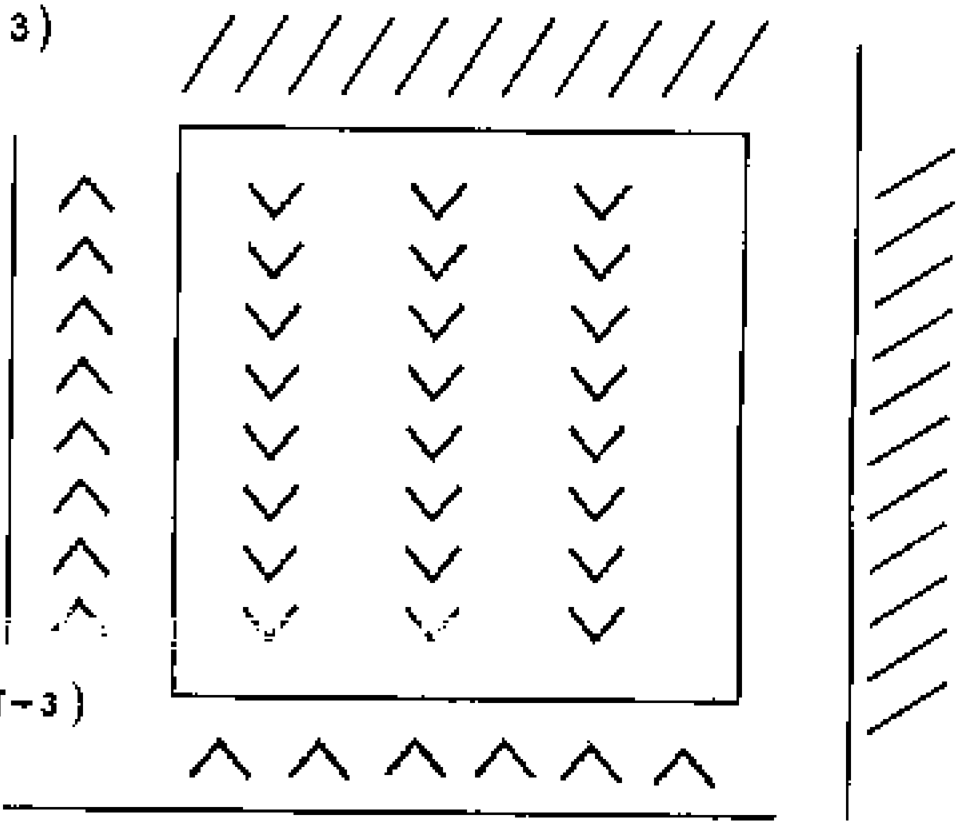

(चित्र ज-3)

संकेत

///// ऊंची इमारतें या पहाड़ियां

V V V ऊंचा तल/सड़क

Λ Λ Λ नीचा तल/सड़क

4. उत्तर एवं दक्षिण में सड़क हो; दक्षिणी सड़क उत्तरी सड़क से नीची हो, पूर्व में ऊंची इमारत या पहाड़ियां हों तथा पश्चिम में रिक्त भूमि हो (चित्र ज-4)

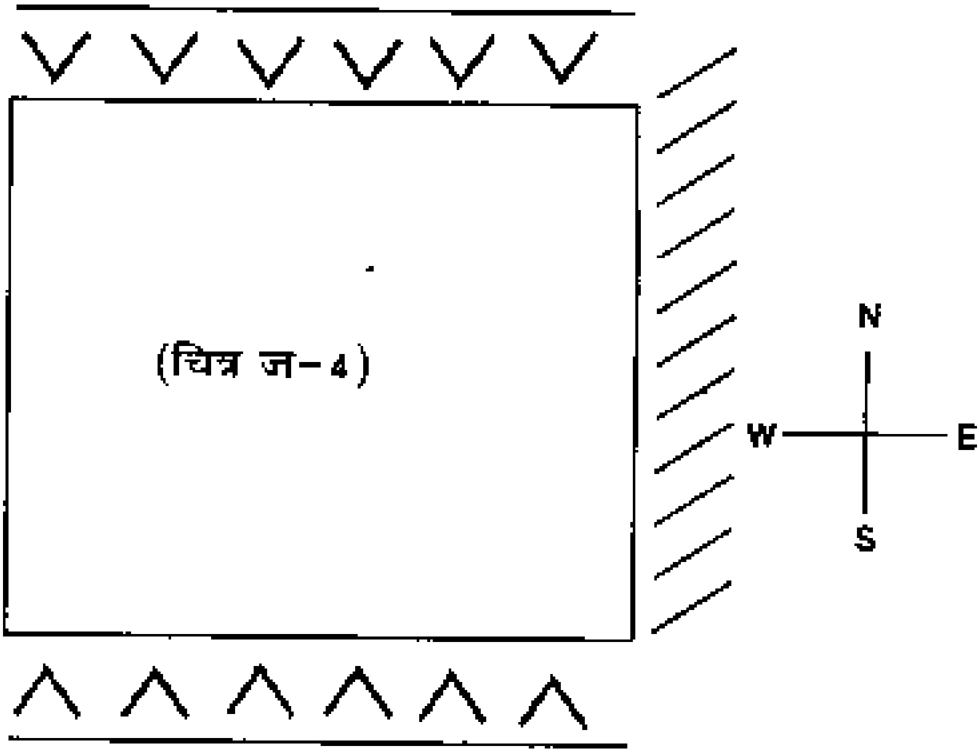

(चित्र ज-4)

अति जघन्य श्रेणी के भूखण्ड

1. पूर्व एवं दक्षिणी ओर सड़क हो, पूर्वी एवं उत्तरी तरफ ऊंची इमारत/पहाड़ियां हो (चित्र अ-1)

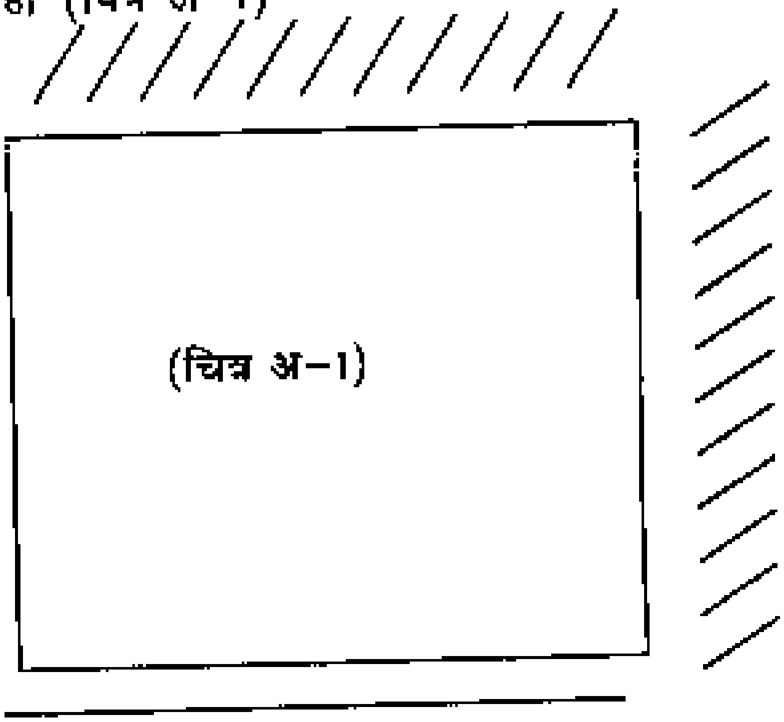

संकेत //////// ऊंची इमारतें या पहाड़ियां
∧ ∧ ∧ नीची सड़क

2. पूर्व एवं दक्षिण में भूखण्ड से नीची सड़क हो तथा पूर्व एवं दक्षिण में ऊंची इमारत/पहाड़ियां हो। (चित्र अ-2)

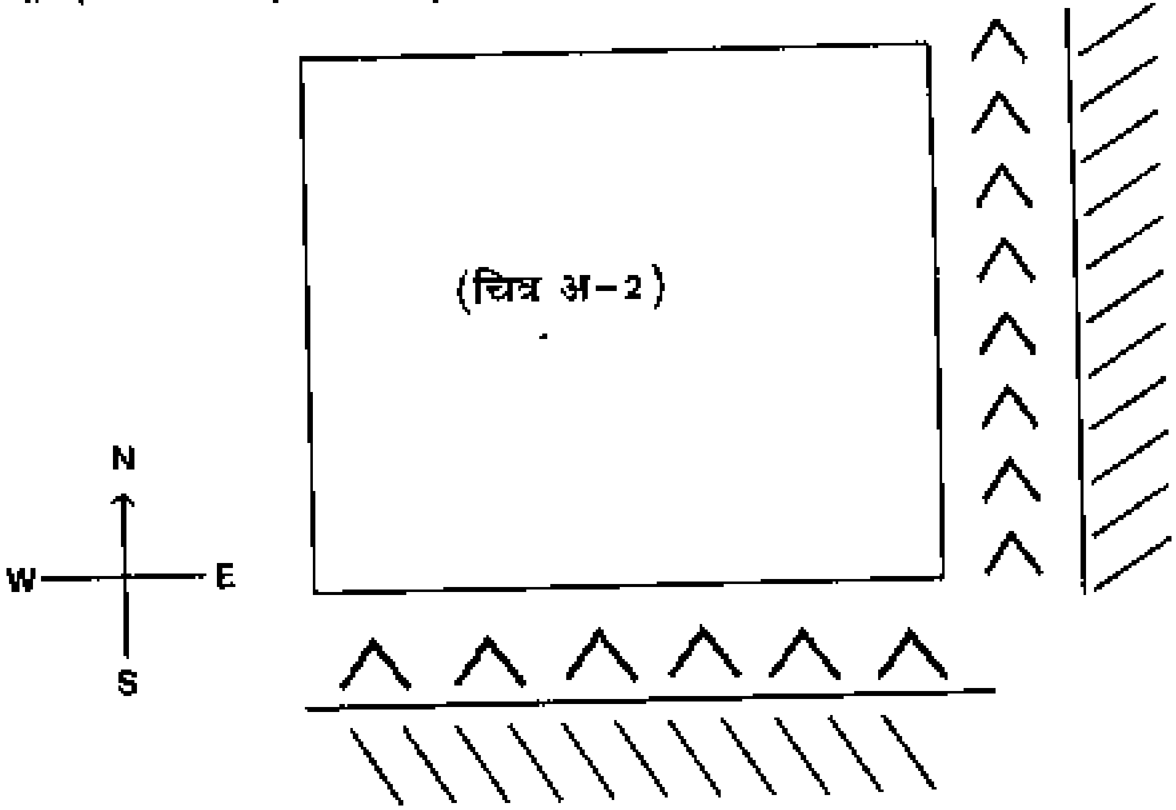

3. सिर्फ दक्षिण में भूखण्ड से नीची सड़क हो तथा पूर्व या उत्तर में कोई रिक्त स्थान न हो। (चित्र अ-3)

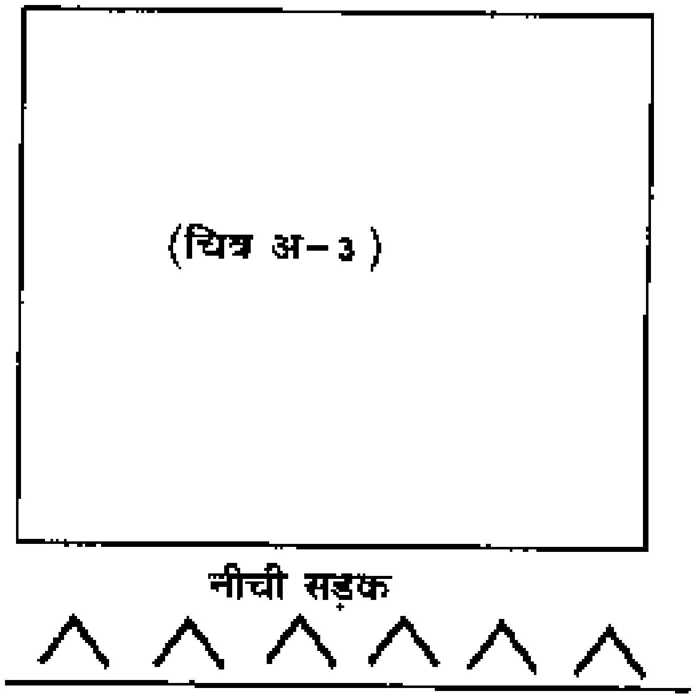

उपरोक्त प्रकार के भूखण्डों पर धरातल के उतार-चढ़ाव इत्यादि का पूरा ध्यान रखते हुए यदि वास्तु निर्माण कार्य किया जायेगा तो निश्चय ही निम्न कोटि का भूखण्ड भी अपने पुरुषार्थ एवं वास्तु संरचना के अनुकूल अधिकाधिक फल प्रदाता होगा।

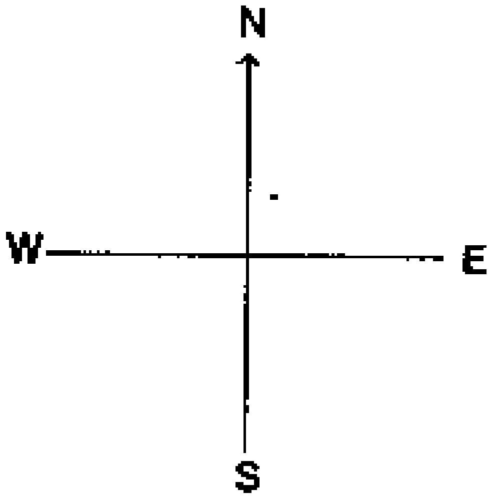

वास्तु के प्रकारः प्राचीन सिद्धांत
Kinds of Vaastu : Oriental Concepts

वास्तुसार के अनुसार शाला, अलिंद, गुंजारी, दीवार, पट्टे, स्तम्भ, झरोखा एवं मंडप आदि के भेद से 16384 प्रकार के घर बनते हैं। इन सबके नाम वर्तमान में नहीं मिलते हैं किन्तु ध्रुवादि-शांतनादि गृहों के नाम शास्त्रों में उपलब्ध हैं।

ध्रुवादि सोलह भेदों का वर्णन इस प्रकार है-

जिस प्रकार चार गुरु अक्षर वाले छन्द के सोलह भेद होते हैं उसी प्रकार घर के प्रदक्षिणा क्रम से लघुरूप शाला द्वारा ध्रुवधान्यादि सोलह घर बनते हैं। (।) के स्थान पर शाला तथा गुरु (ऽ) के स्थान पर दीवार समझना चाहिए। जैसे प्रथम चारों ही अक्षर गुरु हैं तो घर के चारों ही दिशा में दीवार है अर्थात् किसी दिशा में कोई शाला नहीं है। प्रस्तार के दूसरे भेद में प्रथम लघु है। यहां दूसरा धान्य नाम के घर की पूर्व दिशा में शाला समझनी चाहिए। तीसरे भेद में दूसरा लघु है यहां तीसरे जय नाम के घर के दक्षिण में शाला है। चौथे भेद में पूर्व और दक्षिण में एक एक शाला है।

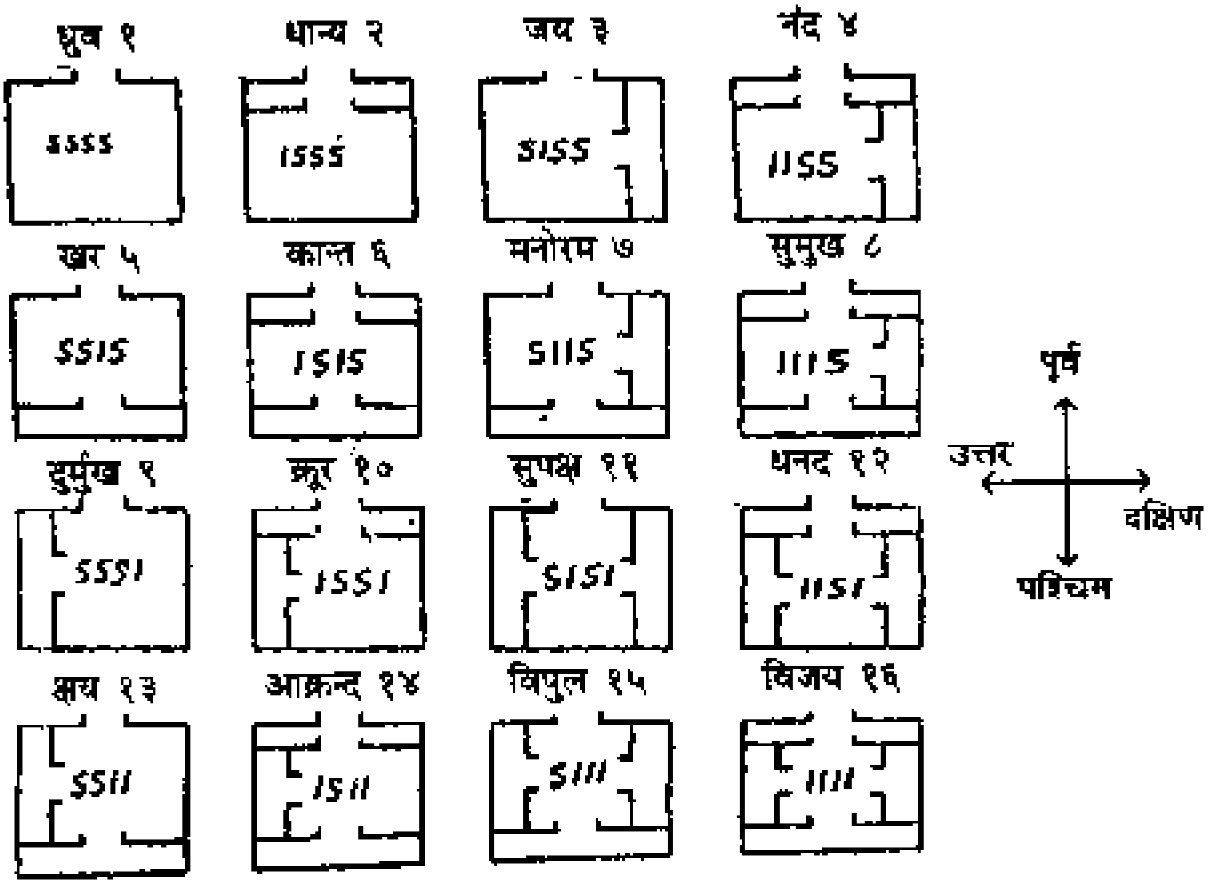

क्रं.	नाम	स्थिति	फल
1	ध्रुव	चारों ओर दीवार, कमरा नहीं	जयकारक
2	धान्य	तीन ओर दीवार, पूर्व में कमरा	धान्यवृद्धिकारक
3	जय	तीन ओर दीवार, दक्षिण में कमरा	शत्रुजय कारक
4	नन्द	दो ओर दीवार, पूर्व व दक्षिण में कमरा	सर्वसमृद्धिकारक
5	खर	तीन ओर दीवार, पश्चिम में कमरा	क्लेशदायक
6	कांत	दो ओर दीवार, पूर्व व पश्चिम में कमरा	अतिलाभदायक, धन, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य की वृद्धि
7	मनोरम	दो ओर दीवार, दक्षिण व पश्चिम में कमरा	मन में संतोष, आनन्द
8	सुमुख	एक ओर दीवार पूर्व, पश्चिम, दक्षिण में कमरा	राजसम्मान की प्राप्ति
9	दुर्मुख	तीन ओर दीवार उत्तर की ओर कमरा	सदा दुखदायक, क्लेश
10	क्रूर	'दो ओर दीवार पूर्व व उत्तर की ओर कमरा	भय, व्याधि
11	सुपक्ष	दो ओर दीवार उत्तर व दक्षिण की ओर कमरा	परिवार वृद्धि
12	धनद	एक ओर दीवार पूर्व, उत्तर, दक्षिण की ओर कमरा	सोना चांदी रत्न, गौ वृद्धि
13	क्षय	दो ओर दीवार उत्तर, पश्चिम की ओर कमरा	धन धान्य सुख का क्षय
14	आक्रन्द	एक ओर दीवार पूर्व, उत्तर, पश्चिम की ओर कमरा	परिवार जनों की मृत्यु
15	विपुल	एक ओर दीवार उत्तर, पश्चिम, दक्षिण की ओर कमरा	आरोग्य, कीर्तिदायक
16	विजय	उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम चारों ओर कमरे	सुख संपत्तिदायक

उपरोक्त के अतिरिक्त शांतन आदि 64 भेद भी हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—

1. शांतवन	17. बंधुद	33. श्रीधर	49. विलाश
2. शान्तिद	18. पुत्रद	34. सर्वकामद	50. बहुनिवास
3. वर्धमान	19. सर्वांग	35. पुष्टिद	51. पुष्टिद
4. कुक्कुट	20. कालचक्र	36. कीर्तिनाशक	52. क्रोधसन्निभ
5. स्वस्तिक	21. त्रिपुर	37. श्रृंगार	53. महन्त
6. हंस	22. सुन्दर	38. श्रीवास	54. महित
7. वर्धन	23. नील	39. श्रीशोभ	55. दुख
8. कर्बूर	24. कुटिल	40. कीर्तिशोभन	56. कुलच्छेद
9. शान्त	25. शाश्वत	41. युग्मशिखर	57. प्रतापवर्धन
10. हर्षण	26. शास्त्रद	42. बहुलाभ	58. दिव्य
11. विपुल	27. शील	43. लक्ष्मीनिवास	59. बहुदुख
12. कराल	28. कोटर	44. कुपित	60. कण्ठछेदन
13. वित्त	29. सौम्य	45. उद्योत	61. जंगम
14. चित्र	30. सुभद्र	46. बहुतेज	62. सिंहनाद
15. धन	31. भद्रमान	47. सुतेज	63. हस्तिज
16. कालदंड	32. क्रूर	48. कलहावह	64. कण्ठक

इस प्रकरण में कुछ समानार्थी एवं पारिभाषिक शब्दों को जान लेना उपयुक्त है—

1. ओरडे या कमरे को शाला कहते हैं।
2. जिसमें एक या दो कमरे हों उसे घर कहते हैं।
3. घर के आगे की दालान को अलिन्द कहते हैं। इसे गड् भी कहते हैं।
4. जिसमें एक, दो या तीन दालान हो तो उसे पाठशाला कहते हैं।
5. पाठशाला के द्वार के दोनों तरफ खिड़की (झरोखा) युक्त दीवार और मण्डप होता है। पिछले भाग में तथा दाहिनी और बायीं ओर जो अलिन्द हो उसे गुंजारी कहते हैं।
6. मूषा या जालिय का तात्पर्य छोटा दरवाजा है।
7. खंभे का अन्य नाम षट्दारु है।

8. स्तम्भ के ऊपर जो तिरछा मोटा काष्ठ रहता है उसे भारवट कहते हैं।
9. पीठ, कड़ी और धरण तीनों एककार्यभागी हैं।
10. ओरडे से पटशाला तक मुख्य घर होता है। घर में जो रसोईघर आदि भाग हैं वे सब मुख्य घर के आभूषण हैं।

द्विशाला घर के लक्षण

द्विशाला घर की भूमि की लम्बाई व चौड़ाई के तीन भाग करने से नौ भाग हो जाते हैं। इनमें से मध्य भाग को छोड़कर शेष आठ भागों में से दो भागों में शाला बनाना चाहिए। शेष भाग की भूमि खाली रखनी चाहिए। इसी प्रकार चार दिशाओं में चार प्रकार की शाला होती हैं।

इस प्रकार अनेक तरह के घर बनते हैं जिनका विशेष उल्लेख समरांगण एवं राजवल्लभ आदि ग्रंथों में मिलता है।

दो दिशाओं में शाला	शाला मुख दिशा	नाम
दक्षिण व आग्नेय	उत्तर	करिणी (हस्तिनी) शाला
नैऋत्य व पश्चिम	पूर्व	महिषी शाला
वायव्य व उत्तर	दक्षिण	गावी शाला
पूर्व व ईशान	पश्चिम	छागी शाला

घर का नाम	शालाओं का नाम	फल
सिद्धार्थ	कारिणी व महिषी	शुभ
यमसूर्य	गावी व महिषी	मृत्यु
दण्ड	छागी व गावी	धन हानि
काच	छागी व हस्तिनी	हानिकारक
चूल्हि	गावी व हस्तिनी	अशुभ

शान्तन आदि घरों के लक्षण

1. शान्तन – हस्तिनी शाला वाला घर
2. शांतिद – महिषी शाला वाला घर
3. वर्धमान – गावी शाला वाला घर
4. कुक्कुट – छागी शाला वाला घर
1. स्वस्तिक – शांतन घर के मध्य में षट्दारु तथा मुख के आगे अलिन्द
2. हंस – शांतिद घर के मध्य में षट्दारू तथा मुख के आगे अलिन्द
3. वर्धन – वर्धमान घर के मध्य में षट्दारू तथा मुख के आगे अलिन्द
4. कर्बूर – कुक्कुट घर के मध्य में षट्दारू तथा मुख के आगे अलिन्द
1. शान्त – स्वस्तिक के आगे एक दूसरा अलिन्द
2. हर्षण – हंस के आगे एक दूसरा अलिन्द
3. विपुल – वर्धन के आगे एक दूसरा अलिन्द
4. कराल – कर्बूर के आगे एक दूसरा अलिन्द
1. वित्त – शांत घर के दाहिनी तरफ स्तंभ वाला एक अलिन्द
2. चित्त (चित्र) – हर्षण घर के दाहिनी तरफ स्तंभ वाला एक अलिन्द
3. धन – विपुल घर के दाहिनी तरफ स्तम्भ वाला एक अलिन्द
4. कालदंड – कराल घर के दाहिनी तरफ स्तम्भ वाला एक अलिन्द

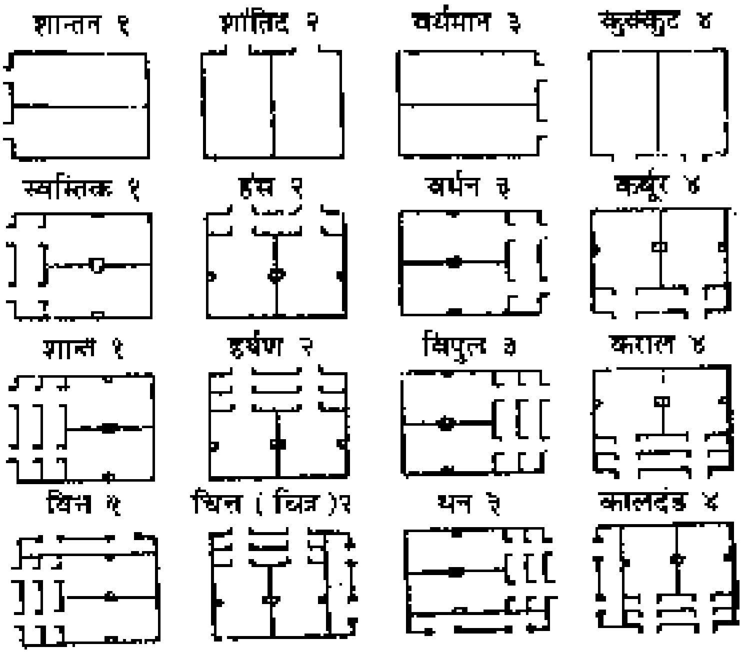

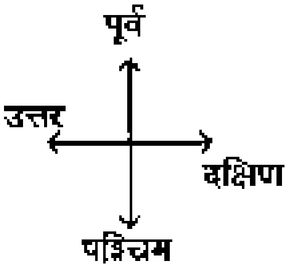

1. बंधुद – वित्त घर के बायीं ओर एक अलिन्द
2. पुत्रद – चित्त घर के बायीं ओर एक अलिन्द
3. सर्वांग – धन घर के बायीं ओर एक अलिन्द
4. कालचक्र – कालदंड घर के बायीं ओर एक अलिन्द

1. त्रिपुर – शांतन घर के पिछले भाग में और दाहिनी तरफ एक एक अलिन्द तथा आगे दो दो अलिन्द
2. सुन्दर – शातिन घर के पिछले भाग में और दाहिनी तरफ एक एक अलिन्द तथा आगे दो दो अलिन्द
3. नील – वर्धमान घर के पिछले भाग में और दाहिनी तरफ एक एक अलिन्द तथा आगे दो दो अलिन्द
4. कुटिल – कुक्कुट घर के पिछले भाग में और दाहिनी तरफ एक एक अलिन्द तथा आगे दो दो अलिन्द

1. शाश्वत – शान्तन घर के पीछे दाहिनी ओर बायीं तरफ एक एक अलिन्द तथा आगे की तरफ दो अलिन्द
2. शास्त्रद – शान्तिद घर के पीछे दाहिनी ओर बायीं तरफ एक एक अलिन्द तथा आगे की तरफ दो अलिन्द
3. शील – वर्धमान घर के पीछे दाहिनी और बायीं तरफ एक एक अलिन्द तथा आगे की तरफ दो अलिन्द
4. कोटर – कुक्कुट घर के पीछे दाहिनी ओर बायीं तरफ एक एक अलिन्द तथा आगे की तरफ दो अलिन्द

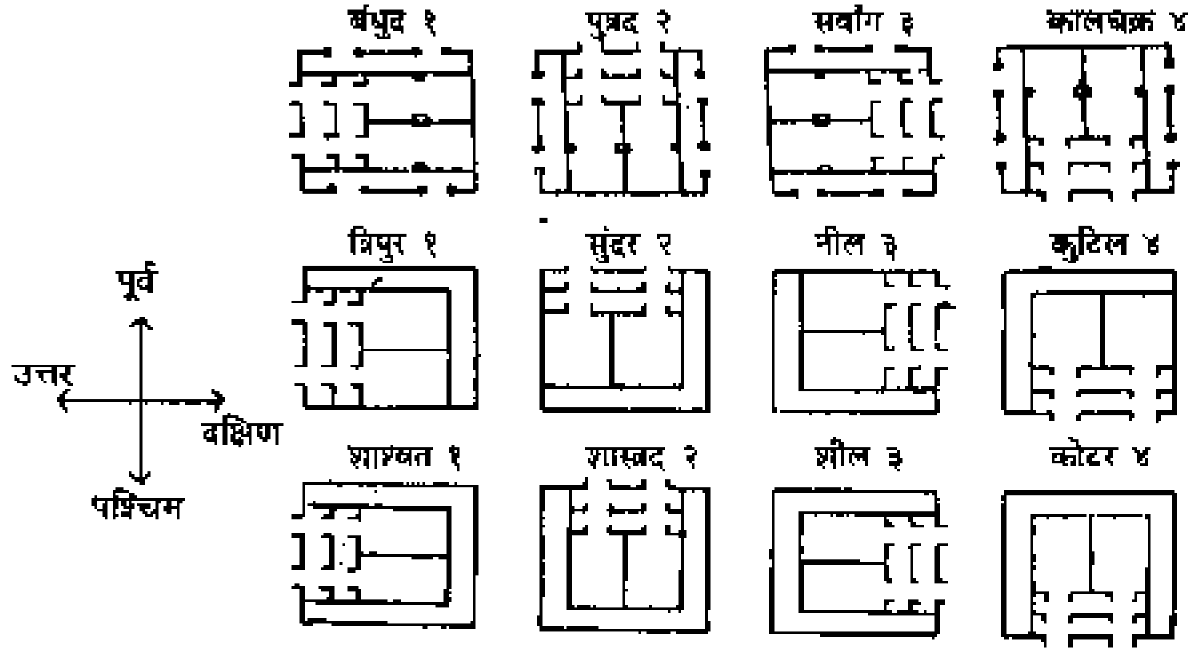

1. सौम्य – शांतन घर के दाहिनी और बायीं ओर एक एक अलिन्द तथा आगे दो अलिन्द मंडप सहित हों व शाला के मध्य में स्तम्भ हो।

2. सुभद्र – शान्तिद घर के दाहिनी और बायीं ओर एक एक अलिन्द तथा आगे दो अलिन्द मंडप सहित हों व शाला के मध्य में स्तम्भ हो।

3. भद्रमान – वर्धमान घर के दाहिनी और बायीं ओर एक एक अलिन्द तथा आगे दो अलिन्द मंडप सहित हों व शाला के मध्य में स्तम्भ हो।

4. क्रूर – कुक्कुट घर के दाहिनी और बायीं ओर एक एक अलिन्द तथा आगे दो अलिन्द मंडप सहित हों व शाला के मध्य में स्तम्भ हो।

1. श्रीधर – शांतन घर के आगे तीन अलिन्द तथा बाकी की तीन दिशाओं में एक एक गुंजारी (अलिन्द) तथा शाला में षट्दारू (स्तम्भ व पीढ़े) हों।

2. सर्वकामद – शांतिद घर के आगे तीन अलिन्द तथा बाकी की तीन दिशाओं में एक एक गुंजारी (अलिन्द) तथा शाला में षट्दारू (स्तम्भ व पीढ़ें) हों।

3. पुष्टिद – वर्धमान घर के आगे तीन अलिन्द तथा बाकी की तीन दिशाओं में एक एक गुंजारी (अलिन्द) तथा शाला में षट्दारू (स्तम्भ व पीढ़े) हों।

4. कीर्तिविनाश – कुक्कुट घर के आगे तीन अलिन्द तथा बाकी की तीन दिशाओं में एक एक गुंजारी (अलिन्द) तथा शाला में षट्दारू (स्तम्भ व पीढ़े) हों।

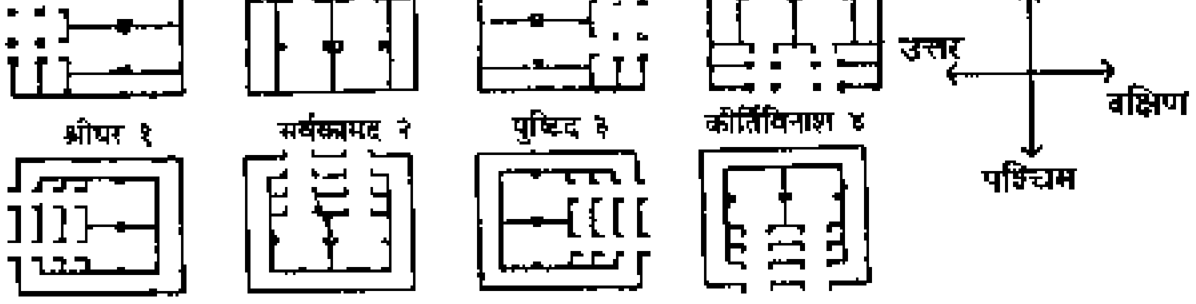

1. श्रीश्रृंगार – द्विशाल घर की तीन दिशाओं में दो दो गुंजारी, मुख के आगे दो अलिन्द मध्य में षट्दारू और अलिन्द के आगे खिड़की युक्त मंडप हो तथा उत्तर मुख हो।
2. श्रीनिवास – द्विशाल घर की तीन दिशाओं में दो दो गुंजारी, मुख के आगे दो अलिन्द मध्य में षट्दारू और अलिन्द के आगे खिड़की युक्त मंडप हो तथा पूर्व मुख हो।
3. श्रीशोभ – द्विशाल घर की तीन दिशाओं में दो दो गुंजारी, मुख के आगे दो अलिन्द मध्य में षट्दारू और अलिन्द के आगे खिड़की युक्त मंडप हो तथा दक्षिण मुख हो।
4. कीर्तिशोभन – द्विशाल घर की तीन दिशाओं में दो दो गुंजारी, मुख के आगे दो अलिन्द मध्य में षट्दारू और अलिन्द के आगे खिड़की युक्त मंडप हो तथा पश्चिम मुख हो।
1. युग्मश्रीधर – जिस द्विशाल घर के मुख के आगे तीन अलिन्द हों तथा इनके आगे भद्र हो तथा तीनों दिशाओं में दो दो गुंजारी, बीच में षट्दारू तथा अलिन्द के आगे खिड़की युक्त मंडप, ऐसे घर का मुख यदि उत्तर दिशा में हो।
2. बहुलाभ – जिस द्विशाल घर के मुख के आगे तीन अलिन्द हों तथा इनके आगे भद्र हो तथा तीनों दिशाओं में दो दो गुंजारी, बीच में षट्दारू तथा अलिन्द के आगे खिड़की युक्त मंडप, ऐसे घर का मुख यदि पूर्व दिशा में हो।
3. लक्ष्मीनिवास – जिस द्विशाल घर के मुख के आगे तीन अलिन्द हों तथा इनके आगे भद्र हो तथा तीनों दिशाओं में दो दो गुंजारी, बीच में षट्दारू तथा अलिन्द के आगे खिड़की युक्त मंडप, ऐसे घर का मुख यदि दक्षिण दिशा में हो।
4. कुपित – जिस द्विशाल घर के मुख के आगे तीन अलिन्द हों तथा इनके आगे भद्र हो तथा तीनों दिशाओं में दो दो गुंजारी, बीच में षट्दारू तथा अलिन्द के आगे खिड़की युक्त मंडप, ऐसे घर का मुख यदि पश्चिम दिशा में हो।

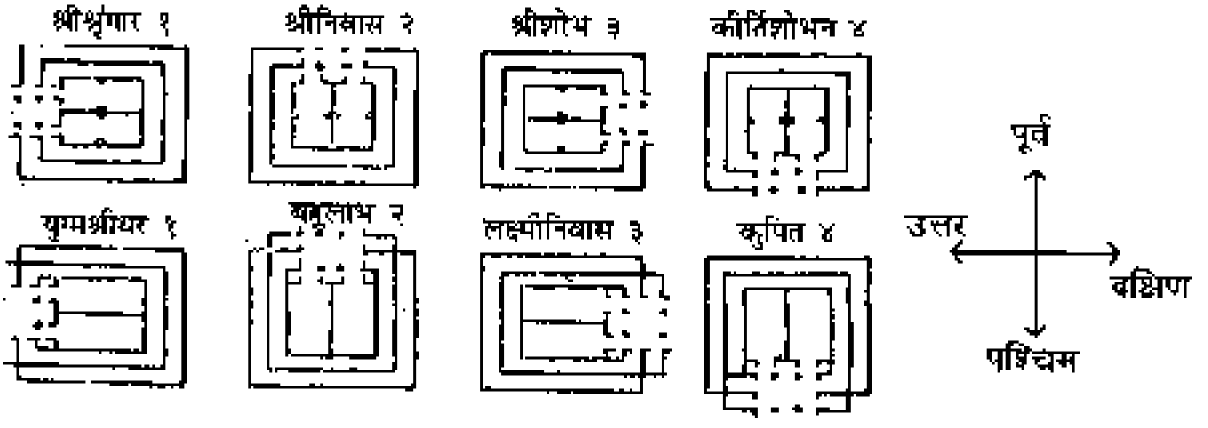

1. उद्योत – जिस द्विशाल घर के मुख के आगे दो अलिन्द और खिड़कीयुक्त मंडप हो तथा पीछे एक अलिन्द और दाहिनी तरफ दो अलिन्द हों व स्तंभयुक्त दीवार भी हो, ऐसे घर का यदि मुख उत्तर में हो।

2. बहुतेज – जिस द्विशाल घर के मुख के आगे दो अलिन्द और खिड़कीयुक्त मंडप हो तथा पीछे एक अलिन्द और दाहिनी तरफ दो अलिन्द हों व स्तंभयुक्त दीवार भी हो, ऐसे घर का यदि मुख पूर्व में हो।

3. सुतेज – जिस द्विशाल घर के मुख के आगे दो अलिन्द और खिड़कीयुक्त मंडप हो तथा पीछे एक अलिन्द और दाहिनी तरफ दो अलिन्द हों व स्तंभयुक्त दीवार भी हो, ऐसे घर का यदि मुख दक्षिण में हो।

4. कलहावह – जिस द्विशाल घर के मुख के आगे दो अलिन्द और खिड़कीयुक्त मंडप हो तथा पीछे एक अलिन्द और दाहिनी तरफ दो अलिन्द हों व स्तंभयुक्त दीवार भी हो, ऐसे घर का यदि मुख पश्चिम में हो।

1. विलास – उद्योत घर के पीछे तथा दाहिनी तरफ दो दो अलिन्द दीवार के भीतर हों, घर के चारों ओर घूम सके ऐसे दो प्रदक्षिणा मार्ग हों, ऐसे घर का मुख यदि उत्तर की ओर हो।

2. बहुनिवास – उद्योत घर के पीछे तथा दाहिनी तरफ दो दो अलिन्द दीवार के भीतर हों, घर के चारों ओर घूम सके ऐसे दो प्रदक्षिणा मार्ग हों, ऐसे घर का मुख यदि पूर्व की ओर हो।

3. पुष्टिद – उद्योत घर के पीछे तथा दाहिनी तरफ दो दो अलिन्द दीवार के भीतर हों, घर के चारों ओर घूम सके ऐसे दो प्रदक्षिणा मार्ग हों, ऐसे घर का मुख यदि दक्षिण की ओर हो।

4. क्रोधसन्निभ – उद्योत घर के पीछे तथा दाहिनी तरफ दो दो अलिन्द दीवार के भीतर हों, घर के चारों ओर घूम सके ऐसे दो

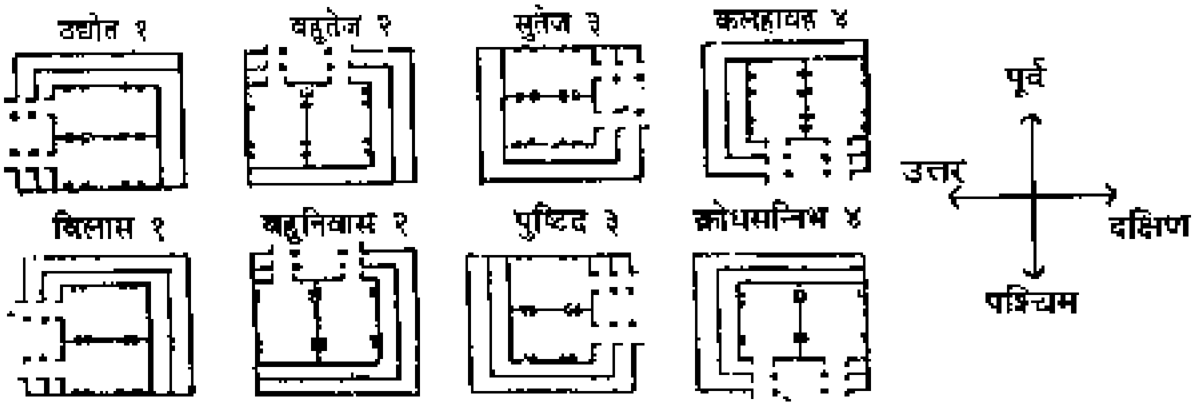

प्रदक्षिणा मार्ग हों, ऐसे घर का मुख यदि पश्चिम की ओर हो।

1. महान्त – विलास घर के मुख के आगे तीन अलिन्द और मंडप हो तथा मुख उत्तर दिशा में हो।
2. महित – विलास घर के मुख के आगे तीन अलिन्द और मंडप हो तथा मुख पूर्व दिशा में हो।
3. दुख – विलास घर के मुख के आगे तीन अलिन्द और मंडप हो तथा मुख दक्षिण दिशा में हो।
4. कुलच्छेद – विलास घर के मुख के आगे तीन अलिन्द और मंडप हो तथा मुख पश्चिम दिशा में हो।

1. प्रतापवर्धन – जिस द्विशाल घर के मुख के आगे तीन अलिन्द, मंडप और खिड़की हो तथा तीन दिशाओं में दो दो गुन्जारी (अलिन्द) हों तथा मध्य वलय की दीवार में खिड़की हो तथा मुख उत्तर दिशा में हो।
2. दिव्य – जिस द्विशाल घर के मुख के आगे तीन अलिन्द, मंडप और खिड़की हो तथा तीन दिशाओं में दो दो गुन्जारी (अलिन्द) हों तथा मध्य वलय की दीवार में खिड़की हो तथा मुख पूर्व दिशा में हो।
3. बहुदुख – जिस द्विशाल घर के मुख के आगे तीन अलिन्द, मंडप और खिड़की हो तथा तीन दिशाओं में दो दो गुन्जारी (अलिन्द) हों तथा मध्य वलय की दीवार में खिड़की हो तथा मुख दक्षिण दिशा में हो।
4. कंठछेदन – जिस द्विशाल घर के मुख के आगे तीन अलिन्द, मंडप और खिड़की हो तथा तीन दिशाओं में दो दो गुन्जारी (अलिन्द) हों तथा मध्य वलय की दीवार में खिड़की हो तथा मुख पश्चिम दिशा में हो।

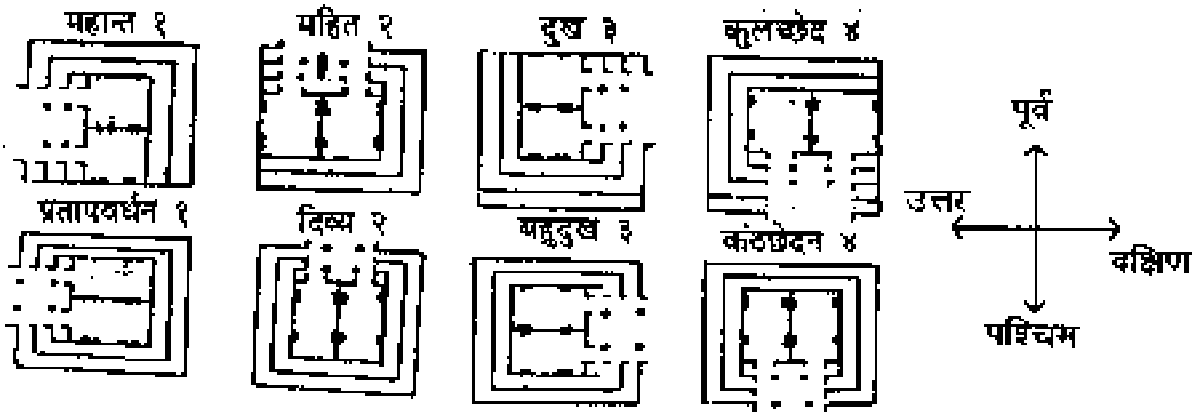

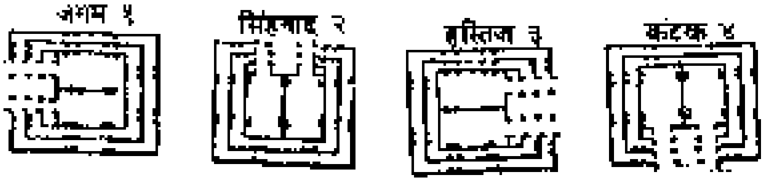

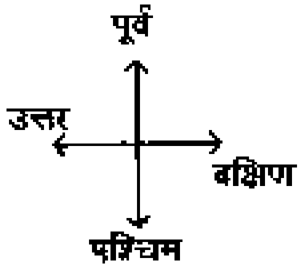

1. जंगम – प्रतापवर्धन घर में षट्दारू (स्तम्भ पीढ़ा) हो तथा उत्तर दिशा में मुख हो।
2. सिंहनाद – प्रतापवर्धन घर में षट्दारू (स्तम्भ पीढ़ा) हो तथा पूर्व दिशा में मुख हो।
3. हस्तिज – प्रतापवर्धन घर में षट्दारू (स्तम्भ पीढ़ा) हो तथा दक्षिण दिशा में मुख हो।
4. कंटक – प्रतापवर्धन घर में षट्दारू (स्तम्भ पीढ़ा) हो तथा पश्चिम दिशा में मुख हो।

विभिन्न घरों के शुभाशुभ फल

शाश्वत घर सर्व मनुष्यों को शान्ति दायक है।

युग्मश्रीधर घर बहुत मंगल दायक तथा ऋद्धियों का स्थान है।

महान्त घर में निवास करने वाला महाऋद्धि को प्राप्त करता है।

जंगम घर अच्छा यश फैलाने वाला है।

बहुलाभ घर विपुल सम्पदा को देने वाला है।

लक्ष्मी निवास घर में निरन्तर लक्ष्मी बनी रहती है।

कुपित घर में कलह, अनबन, वादविवाद बना रहता है।

बहुतेज घर में स्वामी उन्नति करता है।

सुतेज घर दक्षिण मुख होकर भी सामान्यतः अच्छा माना जाता है।

कलहावह घर में निरन्तर कलह बनी रहती है।

गोलघर

गृहस्थों को गोलघर नहीं बनवाना चाहिए किन्तु राजा लोग गोल मकान बना सकते हैं। साधारण जन गोल या वर्तुलाकार मकान निर्माण से अस्थिरता एवं अर्थसंकट से त्रस्त रहते हैं।

घर के अन्य प्रकार

उपरोक्त 64 प्रकार के घरों के अतिरिक्त सूर्यादि आठ प्रकार के घर भी होते हैं–

1. **सूर्य** – द्विशाल घर के आगे तीन अलिन्द हों तथा बायीं ओर एक एक शाला स्तम्भ सहित हो। यह मकान स्वामी को सूर्य सदृश वृद्धि का कारक है।
2. **वासव** – द्विशाल घर के आगे चार अलिन्द हों। बायीं तथा दाहिनी तरफ एक एक शाला हो। यह मकान परिवार को युग युगों तक स्थायी बनाता है।
3. **वीर्य** – जिस द्विशाल घर के आगे तीन अलिन्द हों। पीछे की तरफ दो अलिन्द हों। बायीं तथा दायीं तरफ एक एक अलिन्द हो। यह घर सभी वर्णों के लिए हितकारी है।
4. **काल** – द्विशाल घर के आगे पीछे दो दो अलिन्द हों तथा दायीं ओर एक अलिन्द हो। ऐसा घर परिवार के लिए अकाल मृत्यु तथा दुर्भिक्ष का कारण है। अतएव अशुभ है।
5. **सुव्रत** – द्विशाल घर के चारों तरफ दो दो अलिन्द हों। यह परिवार के लिए सभी सिद्धियों का करने वाला है।
6. **बुद्धि** – द्विशाल घर के आगे तीन अलिन्द हों, बायीं और दाहिनी तरफ दो अलिन्द हों, पीछे की तरफ एक अलिन्द हो। यह घर परिवार के लिए बुद्धि वर्धक होता है।

सूर्य १

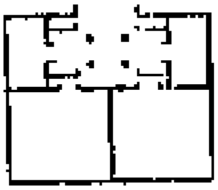

वासव २

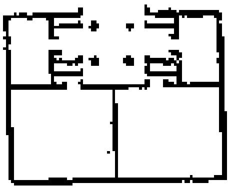

वीर्य ३

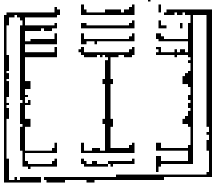

काल ४

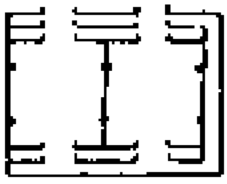

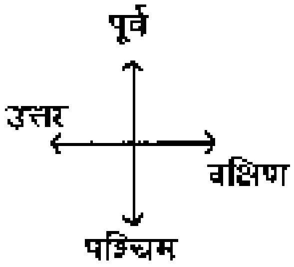

सुव्रत ५

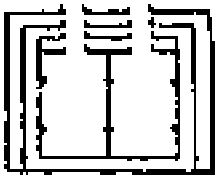

बुद्धि ६

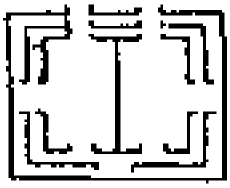

प्रासाद ७

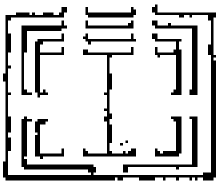

द्विवेध ८

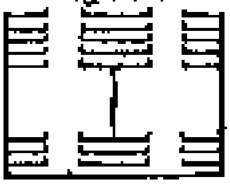

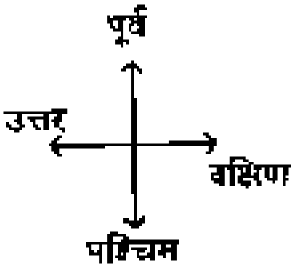

7. **प्रासाद**— द्विशाल घर के आगे तीन अलिन्द तथा तीनों दिशाओं में दो दो अलिन्द हों। परिवार को शुभफल दायक है।

8. **द्विवेध**— घर के आगे चार अलिन्द हों तथा पीछे की तरफ तीन अलिन्द हों। ऐसा घर सामान्यत: अशुभ है।

वास्तुसार में उल्लेख है कि त्रैलोक्य सुन्दर आदि चौंसठ घर राजाओं के लिए श्रेष्ठ एवं उपयुक्त होते हैं।

तिअलोयसुंदराई चउसट्ठि गिहाई हुंति रायाणो।
ते पुण अवद्ध संपइ मिच्छा ण च रज्ज भावेण।।

वास्तुसार प्र. 1 गा. 106

वास्तु निर्माण आयोजना
Plan of Construction of Vaastu

प्रथम आयोजना
FIRST PLAN

वास्तु का निर्माण निश्चित करने के उपरांत यह विचार करना आवश्यक है कि कहां कहां पर क्या क्या निर्माण करना चाहिए। उमास्वामी आचार्य ने अपने ग्रंथ उमास्वामी श्रावकाचार में इसका उल्लेख इस प्रकार किया है-

पूर्वास्यां श्रीगृहं कार्यमाग्नेय्यां तु महानसम।
शयनं दक्षिणस्या तु नैऋत्यामायुधादिकम्।।112।।
भुजिक्रियां पश्चिमस्यां वायव्ये धनसंग्रहम्।
उत्तरस्यां जलस्थानमैशान्यां देव सद्गृहम्।।113।।

वायव्य		उत्तर		ईशान
	धन तथा अन्नसंग्रह	जलस्थान	देवस्थान	
पश्चिम	भोजनगृह		श्रीगृह	पूर्व
	शस्त्रगृह प्रसूतिगृह	शयनकक्ष	रसोई	
नैऋत्य		दक्षिण		आग्नेय

द्वितीय वास्तु निर्माण आयोजना
SECOND PLAN

पुव्वे सीहदुवारं अग्गीइ रसोई दाहिणे सयणं।
नेरइ नीहारठिई भोयणठिइ पच्छिमे भणियं।।107।।
वायव्वे सव्वाउह कोसुत्तर धम्मठाणु ईसाणे।
पुव्वाइ विणिद्दिसो मूलग्गिहदार विक्खाए।।108।।

वास्तुसार प्र. 1

वायव्य	उत्तर	ईशान	
आयुधकक्ष	धनसंग्रह	धर्मस्थान	
भोजनगृह (पश्चिम)		सिंह द्वार	पूर्व
नीहारगृह (शौचालय)	शयनकक्ष	रसोई	
नैऋत्य	दक्षिण	आग्नेय	

इन सबका घर के मूल द्वार की अपेक्षा से पूर्वादिक दिशा का विभाग करना चाहिए अर्थात् जिस दिशा में घर का मुख्य द्वार हो उसे पूर्व मानकर उपरोक्त प्रकार से विभाग करना चाहिए।

वास्तु निर्माण की तृतीय आयोजना
THIRD PLAN

स्नानस्य पाक शयनास्त्र भुजेश्च धान्य
भाण्डार दैवत गृहाणि च पूर्वतः स्युः।
तन्मध्यतस्तु मथनाज्य पुरीष विद्या-
भ्यासाख्यरोदनरतौषध सर्वधाम।।

-विश्वकर्मा वि.प्र. 14

वायव्य — उत्तर — ईशान

अन्नगृह	रतिगृह	धन धान्य संग्रह	औषधगृह	देवगृह
शोकगृह				सर्वधाम
भोजन शाला				स्नानागार
विद्याभ्यास गृह				दधि मथन स्थान
शस्त्रागार	शौचालय	शयनगृह दक्षिण	घी तेल संग्रह चक्की स्थान	रसोई

पश्चिम (बाएँ) — पूर्व (दाएँ)

नैऋत्य — आग्नेय

यहां एक विशेष उल्लेख करना आवश्यक है कि मध्यस्थान में उच्छिष्ट आदि डालने से गृहस्वामी को क्लेश का कारण होता है।

वास्तु निर्माण की चतुर्थ आयोजना
FOURTH PLAN

प्रादि षोडश गृह सूतिक स्नान दधिमथन पाकाग्नेय भवनं
तैलाज्य शयन मलमूत्रोर्ज नैऋत्यानुशं च निलयं।
विद्याश्च भोज्य रोदन पशुपाल वात्संभोगं धन धान्यौषधं
ईश दिशदेव षोडश मन्दिर क्रमं।।

वायव्य	उत्तरी वायव्य	उत्तर	उत्तरी ईशान		ईशान
पशुशाला	रतिगृह	धन धान्य गृह	वैद्यगृह	देवगृह	
पश्चिम वायव्य: शोकगृह				प्रसूतिगृह	पूर्वी ईशान
पश्चिम: भोजन शाला				स्नानागार	पूर्व
पश्चिम नैऋत्य: विद्याभ्यास कक्ष				दधिमथन गृह	पूर्वी आग्नेय
सामानगृह	शौचालय	शयनकक्ष	आज्य तैल गृह	रसोई	
नैऋत्य	दक्षिणी नैऋत्य	दक्षिण	दक्षिणी आग्नेय		आग्नेय

वास्तु निर्माण की पांचवी आयोजना
FIFTH PLAN

स्नानागारं दिशि प्राच्यामाग्नेयां पचनालयम्।
यम्यायां शयनागारं नैऋत्यां शस्त्र मंदिरम्।।
एवं कुर्यादिदं स्थानं क्षीरपानाज्य शालिकाः।
शय्यामूत्रस्त्राजद्विद्या भोजना मंगलाश्रयाः।।

-नारद संहिता

वायव्य		उत्तर		ईशान
	श्रृंगारगृह	श्रीगृह	आज्य तैल गृह	
पश्चिम	भोजन गृह		स्नानगृह	पूर्व
	शस्त्र, धान्य रति, धनगृह	शयनगृह	रसोई शौचालय	
नैऋत्य		दक्षिण		आग्नेय

वास्तु की छठवीं आयोजना
SIXTH PLAN

धान्यं स्त्रीभोग वित्तं च श्रृंगाराय तनानिच।
ईशान्यादि क्रमस्तेषां गृहनिर्माणकं शुभम्।।
एके स्वस्थानशस्तानि स्वस्वायस्व दिशाष्वपि।।

–वाराहाचार्य कृत वृहत्संहिता

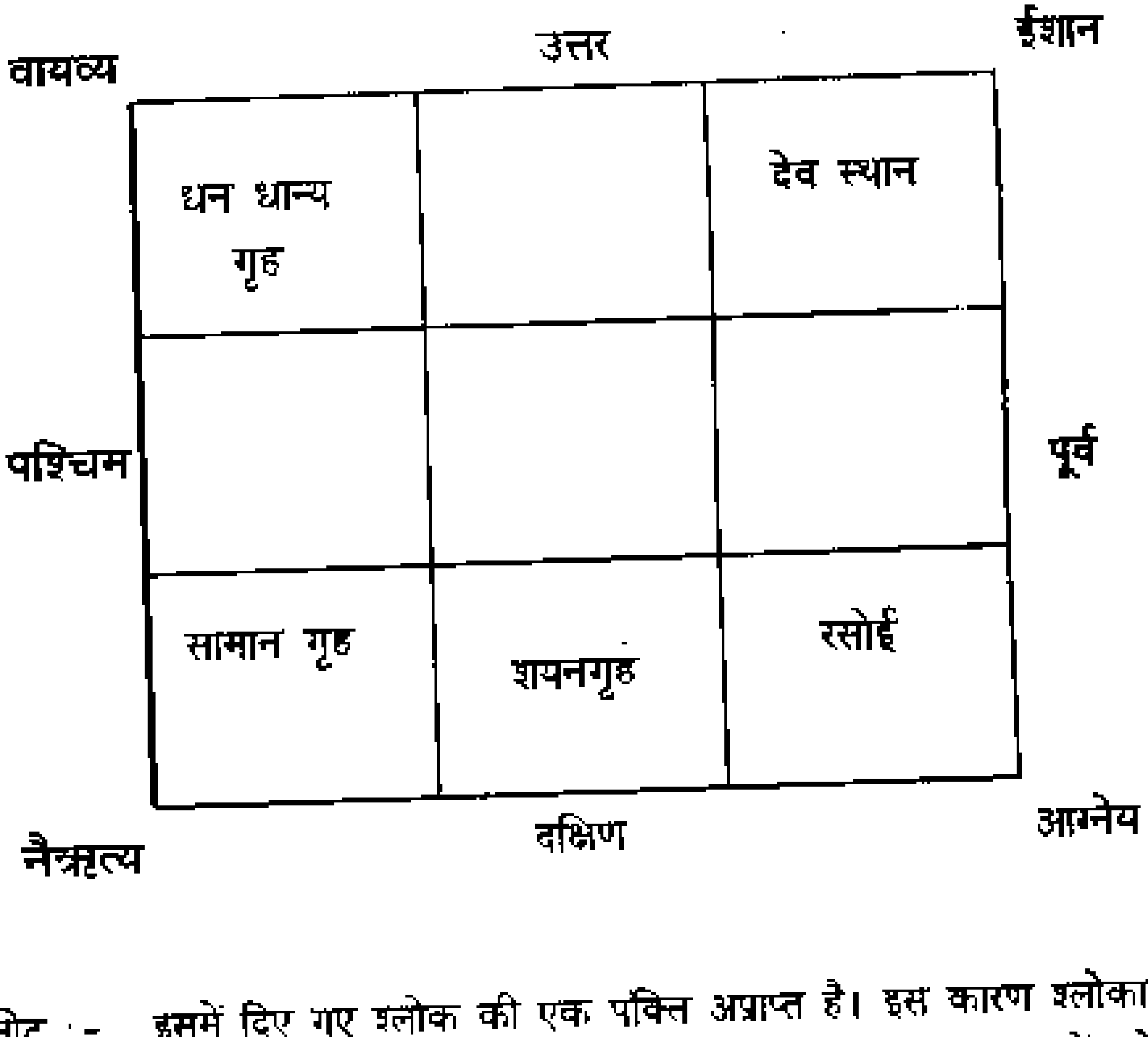

नोट :- इसमें दिए गए श्लोक की एक पंक्ति अप्राप्त है। इस कारण श्लोकार्थ की चित्र से संगति नहीं हो पा रही है। पाठक कृपया इसे ध्यान में रखें।

वास्तु की सातवीं आयोजना
SEVENTH PLAN

किरण तंत्र का कथन है कि

पूर्वस्यां श्रीगृहं प्रोक्तमाग्नेय्यांच महानसम्।
शयनं दक्षिणायांच नैऋत्यामायुधाश्रयम्।।
भोजनं पश्चिमायांच वायव्यां धान्यसंचयम्।
उत्तरे द्रव्यसंस्थानमैशान्ये देवतागृहम्।।

वायव्य — उत्तर — ईशान

धान्य गृह	धन संग्रह कक्ष	देव स्थान
भोजन गृह	रिक्त स्थान	कागजात कक्ष
शस्त्र, उपकरण गृह	शयनगृह	रसोई

पश्चिम (बाएँ) — पूर्व (दाएँ)

नैऋत्य — दक्षिण — आग्नेय

वास्तु निर्माण की अष्टम आयोजना

EIGHTH PLAN

प्राच्यां स्नानगृहं च पाकसदनं वन्हौ तु सुप्तालयो।
यम्या यामध शस्त्र सद्मनुजे भुक्तालयं पश्चिमे।।
वायव्ये पशुमंदिरं शुभकरं भंडार वेश्मोत्तरे।
शैवे देवगृहं प्रशस्तमखिल स्वस्वाय कार्यं सदा।।

वायव्य		उत्तर		ईशान
	धान्य गृह पशु गृह	धन संग्रह कक्ष	देव स्थान	
पश्चिम	भोजन गृह		स्नानागार	पूर्व
	सामान गृह	शयनगृह	रसोई	
नैऋत्य		दक्षिण		आग्नेय

वास्तु निर्माण का आकार

Shape of Vastu Construction

भूमि के आकार की ही भांति वास्तु या घर के आकार का महत्त्व है। वास्तु का आकार यथासंभव चतुष्कोण अर्थात् वर्गाकार या आयताकार ही रहना चाहिए। यह निवासियों के लिए सुख शांति देता है। यदि वास्तु या मकान का कोई भी कोना बढ़ा या कटा हुआ होगा तो उसका प्रभाव वास्तु पर पड़े बिना नहीं रहता। इसका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

1. ईशान दिशा के कोने का कटा रहना (या अभाव होना) या अन्दर धंसा रहना सुख–समृद्धि एवं वंशनाश का हेतु बनता है।
2. पूर्व दिशा का कोना नहीं रहने से परिवार में शांति का अभाव होकर रोज कलह होने लगती है।
3. आग्नेय दिशा में कोना न होने या धंसा रहने से कुछ न कुछ शुभ फल होगा।
4. वायव्य दिशा में कोना न होने या धंसा रहने से आर्थिक संकट आते हैं।
5. नैऋत्य दिशा में कोना न होने या धंसा रहने से हानि नहीं होती। व्यापार ठीक रहता है तथा शुभ फल मिलता है।
6. वास्तु की कोई भी दिशा या विदिशा का अन्दर की ओर धंसा रहने से अनेकों लाभ रुक जाते हैं।
7. यदि जमीन और परकोटा समानान्तर है किन्तु मुख्य वास्तु दिशाओं के समानान्तर नहीं होगी या वास्तु के कोने विदिशाओं की ओर मुख करके बने होंगे तो वह वास्तु अयोग्य होती है तथा निरन्तर उपद्रव होते रहते हैं।
8. जमीन और परकोटा समानान्तर न रहने पर यदि मात्र वास्तु समानान्तर हो तो उसे भी अयोग्य समझा जाता है। ऐसी वास्तु निर्माण करने वालों को स्थिरता नहीं रहती।

9. जमीन की पूर्व दिशा की भूमि या वास्तु कटी होने पर गृहस्वामी की शक्ति क्षीण होती है तथा अपमान होता है।

10. दक्षिण दिशा की जमीन कम होने पर भी शुभ होती है।

11. पश्चिम दिशा की जमीन या वास्तु कम होने पर भी मध्यम फल मिलता है।

12. उत्तर दिशा की जमीन या वास्तु कम होने पर धन नाश होता है।

13. सामान्य रूप से भूमि और वास्तु का चौकोर (आयताकार या वर्गाकार) होना अत्यंत शुभ है।

14. पूर्व दिशा की ओर जमीन का या वास्तु निर्माण का भाग अधिक हो तो स्वामी को कीर्ति, प्रतिष्ठा मिलती है किन्तु वंश वृद्धि की दृष्टि से हानिकारक है।

15. दक्षिण दिशा की ओर जमीन का या वास्तु निर्माण का भाग अधिक हो तो दरिद्रता का आगमन होता है।

16. उत्तर दिशा की ओर जमीन का या वास्तु निर्माण का भाग अधिक हो या बाहर की ओर निकला हो तो धन-धान्य वृद्धि होती है वंश वृद्धि होती है।

17. पश्चिम दिशा की ओर ज़मीन का या वास्तु का निर्माण अधिक होने की स्थिति में ऐश्वर्य का नाश होता है।

समभाग प्रकरण

देवालय, प्रासाद अथवा आश्रम, मठ आदि वास्तु कर हीन अर्थात् दायें बायें ओर छोटे बड़े होना अशुभ है। ऐसा होने से स्त्री नाश, शोक, संताप एवं गृहस्वामी का धन नाश होता है।

कहा है–

कर हीनं न कर्त्तव्यं प्रासाद मठ मंदिरं।
स्त्री नाशः शोकः संतापौ स्वामि सर्व धनक्षयः।।

–पंच रत्न 200

इसी तरह कहा है कि यदि घर बायीं ओर बड़ा तथा दाहिनी ओर छोटा हो तो ऐसा घर अन्तकगृह कहलाता है तथा कुल एवं सम्पत्ति का नाशकारक होने से अशुभ है।

वामे ज्येष्ठं भवेत्तत्र दक्षिणे च कनिष्ठकम्।
अन्तकाख्यं भवेद्वेश्म हन्यते कुलसम्पदः।।

–पंच रत्न 169

घर के दोनों भाग समपार्श्व होना चाहिए। यदि दाहिनी ओर बड़ा हो तथा उसमें ज्येष्ठ भ्राता रहता हो तो दोष नहीं रहता।

वेध प्रकरण

वेध का आशय बाधा से है। इनके सात प्रकारों का नामोल्लेख यहां किया जा रहा है। निर्माण की गई वास्तु में किसी प्रकार का वेध नहीं रहना चाहिए। मुख्य प्रवेशद्वार के समक्ष किसी मार्ग, द्वार, कूप, वृक्ष, स्तंभ आदि का होना अथवा यथोचित स्थान पर परिमाण सहित न होना वेध कहा जाता है। वेध ये हैं-

1. तल वेध	2. कोण वेध	3. तालू वेध	4. कपाल वेध
5. स्तंभ वेध	6. तुला वेध	7. द्वार वेध	

तल वेह कोणवेहं तालुयवेहं कवालवेहं च।
तह थंभ तुलावेहं दुवारवेहं च सत्तमयं।।

वास्तुसार प्र. 1 गा. 116।।

1. **तल वेध** - वास्तु की भूमि कहीं सम कहीं विषम हो अथवा द्वार के सामने कुंआ हो, तेल निकालने की घानी हो, पानी का रहट हो, गन्ने का रस निकालने का यंत्र हो, कुंए या दूसरे के घर का रास्ता अपने घर से जाता हो तो वह तलवेध कहलाता है। ऐसा होने से घर में रोग, सफेददाग की बीमारी, चर्मरोग, कुष्ठरोग, आदि रोगों का आगमन होता है।

2. **कोण वेध** - घर के कोने यदि समकोण 90 अंश के समान न होकर कम ज्यादा हों तो कोण वेध होता है। घर के निवासी परिवारजनों में अशुभ घटना, परेशानियां, वाहन दुर्घटना आदि की आशंका रहती है।

3. **तालु वेध** - एक ही खंड में पीढ़े ऊंचे-नीचे होने पर तालुवेध होता है। इससे चोरी का भय होता है।

4. **शिर वेध** - द्वार के ऊपर की पटरी पर गर्भ यानी मध्य भाग में पीढ़ा आये तो शिर वेध होता है। इससे घर में दरिद्रता तथा शारीरिक, मानसिक क्लेश होता है।

5. **स्तम्भ वेध** – घर के मध्य भाग में स्तम्भ हो या घर के मध्य भाग में अग्नि या जल का स्थान हो तो घर में स्तम्भ वेध या हृदय शल्य होता है। इससे वंशनाश, कुल क्षय की संभावना रहती है।

6. **तुला वेध** – घर के ऊपर-नीचे की मंजिल में पीढ़े कम ज्यादा हों तो तुला वेध होता है। यदि पीढ़े समान संख्या में हैं तो दोष नहीं रहता है। इससे घर में अशुभ फलदायक घटनाएं होती हैं।

7. **द्वार वेध** – घर के द्वार के सामने या मध्य में कोई वृक्ष, कुंआ, स्तम्भ हो अथवा किसी के मकान का कोना अपने घर के सामने हो या गाय आदि पशु बांधने का खूंटा गाड़ा गया हो तो द्वार वेध होता है। द्वार के सामने या बीच में सदा कीचड़ जमा रहता हो अथवा दरवाजे पर शूकर आदि बैठे रहते हों तो द्वार वेध होता है। दूसरों के घर का रास्ता अपने घर से जाता हो अथवा घर का गंदा पानी निकालने की नाली मूल द्वार के मध्य में हो अथवा ब्रह्मा के मंदिर के द्वार के ठीक सामने अपने घर का द्वार हो तो भी द्वार वेध होता है।

इगवेहेण य कलहो कमेण हाणिं च जत्थ दो हुंति।
तिहु भूआण निवासो चउहिं खओ पंचहिं मारी।।

–वास्तुसार प्र. 1 गा. 124

एक ही घर यदि एक वेध से दूषित है तो कलह होती है।
एक ही घर यदि दो वेध से दूषित है तो अतिहानि होती है।
एक ही घर यदि तीन वेध से दूषित है तो भूतों का वास होता है।
एक ही घर यदि चार वेध से दूषित है तो लक्ष्मी नाश होती है।
एक ही घर यदि पांच वेध से दूषित है तो महामारी, भयंकर पीड़ा होती है।

वेध दोष परिहार

राजमार्गान्तरे वेधो न प्राकारन्तरेऽपि च।
स्तंभ पदादि वेधस्तु नाभित्यंतरतो भवेत्।।

देवालय और मकान के मध्य यदि राजमार्ग, कोट, किला आदि आयें तो वेध दोष नहीं होता। यदि मध्य में दीवाल हो तो स्तम्भों के पद का वेध दोष भी निराकरण हो जाता है।

उच्छ्रायभूमिं द्विगुणां त्यक्त्वा चैत्ये चतुर्गुणाम्।
वेधादि दोषो नैवं स्याद् एवं त्वष्टमतं यथा।।

–आचार दिनकर

घर की ऊंचाई से दुगुनी और मंदिर की ऊंचाई से चार गुनी भूमि को छोड़कर कोई वेध आदि दोष हों तो दोष नहीं गिना जाता।

रथ्यांविद्धं द्वारं नाशाय कुमारदोपदं तरुणा।
पंकद्वारे शोको व्ययोऽम्बुनिः स्त्राविणि प्रोक्तः।।
कूपेनापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे।
स्तंभेन स्त्रीदोषाः कुलनाशो ब्रह्मणाभिमुखे।।

– नारदी संहिता

दूसरे के घर का रास्ता अपने घर के मुख्य द्वार से जाता है तो रास्ते का द्वार वेध होने से विनाश कारक होता है।
मुख्य द्वार के सामने वृक्ष का वेध होने पर बालकों के लिए हानिकारक है।
मुख्य द्वार के सामने कीचड़ का वेध होने पर परिवार के लिए शोककारक है।
मुख्य द्वार के सामने जल निकास नाली का वेध होने पर धन का विनाश होता है।
मुख्य द्वार के सामने महादेव या सूर्य मंदिर होने पर गृहस्वामी का विनाश होता है।
मुख्य द्वार के सामने स्तम्भ का वेध होने पर स्त्रियों के लिए नाशकरक है।
मुख्य द्वार के सामने कुंए का वेध होने पर अपस्मार रोग (वायु विकार) होता है।
मुख्य द्वार के सामने ब्रह्मा का द्वार हो तो कुल का नाश होता है।

अन्य महत्वपूर्ण संकेत

वापी मण्डप गेहानां तृतीय स्तम्भ वर्जनम्।
शिल्पिनो नरकं यान्ति, स्वामी सर्वधन क्षयम्।।

वापी, मंडप, घरों में तीन खम्भे नहीं लगाना चाहिए। घर में सम संख्या में खम्भे लगाना चाहिए। विषम संख्या में खम्भे लगाने का फल यह है कि शिल्पी नरक जाता है तथा स्वामी दुखी होता है। उसका सारा धन नष्ट हो जाता है।

द्विकोणं गोमुखाश्चैव धननाशः पतिव्रजः।
त्रिकोणं मृत्युदं ज्ञेयं षड्शं धर्म नाशकम्।।

दो कोने वाले मकान से धन नाश होता है। गोमुख मकान से गृहपति को गृह त्याग कर परदेश गमन करना पड़ता है। तीन कोने वाला घर मृत्यु या मृत्युतुल्य कष्ट देता है। छह कोनों वाला मकान धर्म नष्ट करता है।

पाहाणमयं थंभं पीढं पट्टं च बारउत्ताणं।
ए ए गेहि विरुद्धा सुहावहा धम्म ठाणेसु।।

– वास्तुसार प्र. 1 गा. 150

यदि पत्थर के स्तम्भ, पीढ़े, छत पर के तख्ते तथा द्वार शाख सामान्य गृहस्थ के घर में हों तो अशुभ होते हैं। किन्तु धर्मस्थान तथा देवालय आदि में हों तो शुभकारक हैं।

वास्तुसार प्रकरण 1 की निम्नलिखित गाथाएं दृष्टव्य हैं–

कूणं कूणस्स समं आलय आलं च कीलए कीलं।
थंभे थंभं कुज्जा अह वेहं वज्जि कायव्वा।।127।।
आलय सिरम्मि कीला थंभो बारुवरि वारु थंभुवरे।
बार द्विबार समखण विसमा थंभा महाअसुहा।।128।।
थंभ हीणं न कायव्वं पासायं मठ मंदिरम्।
कूणकक्खंतरेऽवस्सं देयं थंभं पयत्तओ।।129।।
गिहमज्झि अंगणे वा तिकोणयं पंचकोणयं जत्थ।
तत्थ वसंतस्स पुणो न हवइ सुहरिद्धि कईयावि।।132।।

कोने के बराबर कोना, आले के बराबर आला, खूंटे के बराबर खूंटा तथा खम्भे के बराबर खम्भा ये सब वेध को छोड़कर रखना चाहिए। आले के ऊपर खूंटा या कीला, द्वार के ऊपर स्तम्भ, स्तम्भ के ऊपर द्वार, द्वार के ऊपर दो द्वार, समान खण्ड, और विषम स्तम्भ ये सब बड़े अशुभ फलदायक होते हैं। देवालय, राजभवन, राजप्रासाद बिना स्तम्भ के नहीं बनाना चाहिए। किन्तु खण्ड में अन्तरपट तथा मंची अवश्य बनानी चाहिए। पीढ़े सम संख्या में रखना चाहिए। कोने के बगल में अवश्य ही स्तम्भ रखना चाहिए। खूंटी, आला, खिड़की इनमें से कोई खण्ड के मध्य भाग में आ जाए, इस प्रकार नहीं बनाना चाहिए। जिस घर के मध्य भाग में या आंगन में त्रिकोण या पंचकोण भूमि हो उस घर में रहने वाले को कभी भी सुख समृद्धि की प्राप्ति नहीं होगी।

वलयाकारं कूणेहिं संकुलं अहव एग दु ति कूणं।
दाहिण वामइ दीहं न वासियव्वेरिसं गेहं।।

– वास्तुसार प्र. 1 गा. 135

गोल कोने वाला या एक, दो तीन कोने वाला या दाहिनी और बायीं ओर लम्बा घर रहने योग्य नहीं है।

बैलगाड़ी के अग्रभाग के समान घर अच्छा है। अर्थात् बैलगाड़ी के सरीखा अग्रभाग संकरा तथा पीछे का भाग चौड़ा होना अच्छा है।

घर के द्वार भाग से पीछे का भाग ऊंचा होना अतिउत्तम है।

अन्य गेहेर्जाति कांति दृष्टवा सर्वरोग भयप्रदं।

दूसरे के घर का प्रकाश अपने घर में आने से अनेक रोग होते हैं।

कूपेनापस्मारे भवति नाशश्च देवतामुखे।
स्त्रीदोषं स्तंभ दद्दष्टीच्च कुलनाशं ब्राह्मणगृहे।।

अपने घर के मुख्य प्रवेशद्वार के सामने कुंआ होने से उपद्रव होते हैं। मन्दिर के सामने वास्तु होने से सर्वनाश होता है। वास्तु के सामने स्तम्भ होने से स्त्रियों को रोग होता है। घर के सामने अंत्येष्टि, बलि शांतिकर्म कराने वाले ब्राह्मण का घर होने से कुल नाश होता है।

वास्तु परिकर विचार
Surroundings of land

जिस स्थान पर वास्तु का निर्माण करना है उसका भी अपना विशेष महत्त्व है। इसका गृहस्वामी पर प्रभाव निश्चित रूप से पड़ता है।

वज्जिजज्जइ जिणपिट्ठी रवि ईसरदिट्ठि विण्हुवाममुआ।
सव्वत्थ असुह चंडी बंभाणं चउदिसिं चयह।।

- वास्तुसार प्र. 1 गा. 141

वास्तु के सामने जिनदेव की पीठ नहीं होना चाहिए। सूर्य और महादेव की दृष्टि घर के सामने न हो। घर के बायीं ओर विष्णु का मन्दिर न हो। घर के आसपास चंडी मन्दिर न हो तथा ब्रह्मा मन्दिर के आसपास की चारों दिशाओं में घर नहीं बनवाना चाहिए। ये सभी वास्तु के लिए अशुभ होने से त्याज्य हैं।

अरिहंत दिष्ट्दाहिण हरपुट्टी वामएसु कल्लाणं।
विवरीए बहुदुक्खं परं न मग्गंतरे दोसो।।

- वास्तुसार प्र. 1 गा. 142

वास्तु के सामने अरिहंत देव की दृष्टि हो अथवा घर के दाहिनी ओर जिनालय हो अथवा महादेव की पीठ या बायीं भुजा हो तो यह कल्याणकारक है तथा सुख-संतोष को देने वाला है। इसके विपरीत स्थिति होने पर अत्यंत दुखकारक होता है किन्तु यदि आने जाने का रास्ता बीच में हो तो दोष नहीं होता।

पढमंत जाम वज्जिय धया इ-दु-ति पहर संभवा छाया।
दुहहेऊ णायव्वा तओ पयत्तेण वज्जिजजा।।

- वास्तुसार प्र. 1 गा. 143

प्रथम और अंतिम प्रहर को छोड़कर अर्थात् दूसरे तीसरे पहर (9 से 3 बजे तक) दिन में मन्दिर या ध्वजा की छाया घर पर नहीं पड़ना चाहिए। यदि छाया गिरती है तो यह अत्यंत अशुभ होने से परिवार के लिए दुखकारक होगी। ऐसे स्थान पर मकान का निर्माण नहीं करना चाहिए।

धुत्तामच्चासन्ने परवत्थुदले चउप्पहे न गिहं।
गिहदेवलपुव्विल्लं मूलदुवारं न चालिज्जा।।

– *वास्तुसार प्र. 1 गा. 156*

धूर्त और मंत्री के घर के समीप, दूसरे की वास्तु निर्मित की हुई भूमि पर तथा चौक में घर नहीं बनवाना चाहिए।

दुखं देवकुलासन्ने गृहे हानिश्चतुष्पथे।
धूर्तामात्य गृहाभ्याशे स्यातां सुतधनक्षयौ।।

– *विवेक विलास*

यदि देवमन्दिर के समीप घर हो तो दुख; चौक में हो तो हानि तथा धूर्त व मंत्री के घर के समीप हो तो पुत्र एवं धन हानि होती है।

ऐसा भी कथन है कि–

गृहस्वामि भयञ्चैत्ये, वल्मीके विपद स्मृताः।
धूर्तालय समीपेतु, पुत्रस्य मरणं ध्रुवं।।

चैत्य भूमि पर मकान बनवाने से स्वामी को भय उत्पन्न होता है। दामी वाली भूमि पर मकान बनवाने से विपत्तियों में वृद्धि होती है। धूर्त व नीच लोगों के मकानों के समीप मकान बनवाने से पुत्रहानि या मरण होता है।

इनके अतिरिक्त परिकर विचार करते समय निम्न बातों का भी ध्यान रखा जाना आवश्यक है–

1. मस्जिद और चर्च के सामने तथा उसके समीप न मकान बनवाना चाहिए, न जमीन खरीदनी चाहिए।
2. जमीन के आसपास कोई कब्रिस्तान न हो।
3. जमीन के एवं घर के सामने कचरे का ढेर न हो। इससे मन में कुविचार, रोग एवं दरिद्रता आती है।
4. जमीन के ठीक मध्य में गड्ढा, कुंआ या तलघर न हो। अन्यथा आर्थिक हानि बहुत होगी।
5. वास्तु के पूर्व या उत्तर की ओर टेकड़ी (पहाड़ी) नहीं होना चाहिए। अन्यथा प्रगति में बाधा आती है।
6. इसके विपरीत दक्षिण एवं पश्चिम में ऊंचा स्थान या टेकड़ी संकट निवारक होने में शुभ मानी जाती है।
7. पूर्व, उत्तर या ईशान की ओर जलाशय (नदी, नाला, कुंआ, बावड़ी, नहर, तालाब आदि) रहना अत्यंत शुभ है। इससे घर में धन-धान्य में वृद्धि होती है।

वास्तु का परकोटा
Compound wall of vaastu

वास्तु के चारों तरफ परकोटा या चार दीवारी का निर्माण अत्यंत आवश्यक है। इससे वास्तु की सुरक्षा होती है। जिस प्रकार बाड़ खेत की रक्षा करती है, उसी प्रकार परकोटा भी परिवार की तथा धर्म की मर्यादा की रक्षा करता है। जिस प्रकार बाड़ के बिना खेत नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार बगैर परकोटे के परिवार की मर्यादाएं भी नष्ट हो जाती हैं। बगैर परकोटे की वास्तु होने से परिवार को अशुभ परिणामों का सामना करना पड़ता है। परकोटा वास्तु की दुर्जनों के अतिरिक्त हिंसक जानवरों सर्प, बिच्छू तथा भूत-पिशाच आदि से भी रक्षा करता है।

वास्तु निर्माण करने के पहले ही वास्तु के चारों तरफ चौकोर परकोटे का निर्माण कर लेना उपयुक्त है। इसमें निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना अति महत्त्वपूर्ण है-

1. परकोटे की दीवाल में दो दरवाजे, एक पूर्व तथा एक उत्तर की ओर बनाना चाहिए। इनमें से एक महाद्वार तथा एक लघुद्वार हो। द्वार पर सुन्दर कमान हो तथा सुन्दर रंग से पुता हो। ऐसा महाद्वार व्यवहारिक कार्यों में सफलता, पारिवारिक समृद्धि तथा सुख समाधान प्रदान करता है।
2. परकोटे में एक ही द्वार परेशानियों का कारण है।
3. यदि परकोटे का द्वार अपने आप बंद होता है तो यह भय उत्पन्न करता है।
4. परकोटे की दीवाल दक्षिण व पश्चिम में ऊंची हो तथा अधिक मोटी हो तो आरोग्य एवं धन लाभ की-प्राप्ति होती है।
5. परकोटे की उत्तर की दीवाल सबसे ऊंची होने पर धननाश, स्त्री रोग, कर्ज होता है।
6. परकोटे की ईशान की दीवाल सबसे ऊंची होने पर सर्वकार्यों में विघ्न होगा।
7. नैऋत्य दिशा में परकोटे की दीवाल सबसे ऊंची होने पर यश, मान, सम्मान, धन लाभ तथा सुख प्राप्त होता है।

8. वायव्य दिशा में परकोटे की दीवाल सबसे ऊंची होने पर आरोग्य एवं सुख मिलेगा।
9. आग्नेय दिशा में परकोटे की दीवाल सबसे ऊंची होने पर सर्वत्र यश मिलता है।
10. पूर्व दिशा में परकोटे की दीवाल सबसे ऊंची होने पर ऐश्वर्य हानि तथा अशुभ होता है।
11. परकोटे की दीवाल का निर्माण कार्य पत्थर व ईंटों से पूरा करें। दीवाल पर प्लास्टर कर अच्छे रंग से पुताई अवश्य कर दें। पत्थर का रंग स्वभावतः काला होने से अशुभ है, अतः पुताई करना अच्छा है।
12. वास्तु की दीवाल तथा परकोटे की दीवाल में अन्तर रखना आवश्यक है।
13. वास्तु एवं परकोटे की दीवाल को एक समझकर निर्माण करने से धनहानि होती है।
14. वास्तु एवं परकोटे की दीवाल के मध्य सामान्यतः कम से कम एक मीटर का अंतर रखना आवश्यक है ताकि वास्तु के चारो तरफ आसानी से जाया जा सके।
15. वास्तु के चारों तरफ तथा परकोटे के अन्दर से रास्ता होने से परिवार सुखी-सम्पन्न होता है। घर की बात घर में ही रहती है, बाहर नहीं जाती।
16. वास्तु-सम्बन्धी संरचना परकोटे के अन्दर यथायोग्य स्थान पर दिशाओं की अनुकूलता के अनुसार करना चाहिए। इससे गृहस्वामी को सर्वत्र लाभ होता है।
17. परकोटे के अन्दर उत्तर की पूर्व की तरफ अधिक खाली स्थान रखें जबकि दक्षिण एवं पश्चिम की तरफ कम से कम खाली स्थान रखें।
18. वास्तु के पश्चिम व दक्षिण की ओर खाली जगह अधिक पड़ी हो तो उसे खाली न रखकर शीघ्र ही उस पर कोई न कोई निर्माण कार्य करा लेना उपयुक्त है।

जमीन या वास्तु का रास्ता
Way to Land or Vaastu

वास्तु की ओर जाने वाले रास्ते का भी अपना विशिष्ट महत्त्व है। यदि रास्ता वास्तु के पास से उत्तर की ओर जाता है तो भाग्योदय होता है। पूर्व की ओर का रास्ता शुभफलदायी है। इससे पारिवारिक शान्ति तथा लोगों के विचारों में शालीनता आती है।

वास्तु के पश्चिम की ओर का रास्ता पारिवारिक कलह तथा आर्थिक हानि देता है। वास्तु के दक्षिण की ओर का रास्ता भी अच्छा नहीं है। ऐसी वास्तु के निवासी स्वभाव में चिड़चिड़े हो जाते हैं।

यदि वास्तु के चारों ओर रास्ता हो तो यह अति उत्तम है तथा सर्वसुखदायी है। परन्तु चौराहे के मध्य निर्मित वास्तु कीर्ति का नाश करती है।

चतुष्पथेत्त्वकीर्तिः स्यादुद्वेगो देव सद्मति।
अर्थ हानिश्च सचिवेश्वभे विपद उत्कटा।।

चौराहे पर मकान बनाने से कीर्ति का नाश होता है।

किसी देवालय के स्थान पर वास्तु या मकान बनवाने से उद्वेग एवं विवाद होते हैं।

मन्त्री के स्थान पर घर बनाने से धनहानि होती है।

किसी गड्ढे में घर बनाने से परिवार पर घोर विपत्ति आती है।

भित्ति-प्रकरण
Chapter of Walls

वास्तु निर्माण की सभी दीवालें आगे की दीवाल की समानता से एक ही सूत्र में निर्माण करना चाहिए। दीवालों का श्रेणी भंग होना तथा गर्भवेध होना स्वामी को अति कष्टकर होता है। कहा है कि-

समान सूत्रे शुभमग्रभित्तिः श्रेणी विभंजेसुतवित्तनाशः।
गर्भश्च वेधे न सुख कदाचित् स्वामीविभिन्नेन च दोषकारी।।

- ग्रंथ रत्नाकर 172

वास्तु की दीवालें पत्थर की बनाना शुभ नहीं होता। ऐसे भवन दो तीन पीढ़ी के उपरान्त निर्जन हो जाते हैं। परिवारजन अन्यत्र या अन्य नगर को प्रस्थान कर जाते हैं।

वास्तु के प्रवेशद्वार वाली दीवाल ऊबड़-खाबड़ पत्थरों की होगी तो स्वामी कभी सुखी न रहेगा।

दीवाल में दरार पड़ना, फटना, सीधी न होना तथा मुख्य कमान के या द्वार के ऊपर ही दरार आ जाना परिवार पर भयंकर मुसीबत आने की निशानी है।

दीवार या जमीन में सदैव गीलापन या सीडन रहना परिवार में रोगों को निमन्त्रण देता है।

पश्चिम की दीवाल में दरार आना या टेढ़ी-मेढ़ी होना संपत्ति नाश एवं चोर भय की सूचना देता है।

दक्षिण की दीवाल में दरार या टेढ़ापन आना परिवार में रोगवृद्धि तथा मृत्युसम कष्ट का सूचक है।

पूर्व या उत्तर की दीवालों में दरार या टेढ़ापन आना परिवार में अनायास विपत्तियों के आगमन की सूचना है।

दीवालों के कोने समकोण 90 अंश से कम या अधिक के बने होने पर निवासी को भय कारक होते हैं।

यदि निर्माण कार्य को प्रारम्भ करते समय सर्वप्रथम पूर्व दिशा की दीवाल बनवाई जाएगी तो इससे वास्तु निर्माण में अकारण ही विलम्ब होता है। अतएव प्रथमतः दक्षिण की ओर से काम आरम्भ करके दक्षिण की दीवाल बनवाना श्रेयस्कर है।

वास्तुशास्त्र : आधुनिक परिप्रेक्ष्य में

वास्तुशास्त्र के नियमों का अध्ययन करने पर कभी-कभी यह आभास होता है कि ये नियम काल बाह्य हो गए हैं तथा आधुनिक शैली के भवन निर्माण इनके अनुरूप निर्मित करना संभव नहीं है। जबकि वस्तु-स्थिति इसके विपरीत है। वास्तु शास्त्र के नियम आज भी उतने ही कार्यकारी हैं। समय परिवर्तन के साथ-साथ भवन शैलियों में जो परिवर्तन आया है तदनुरूप वास्तु नियमों का विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

प्राचीन काल में स्थान की विपुलता थी तथा जनसंख्या अपेक्षाकृत सीमित थी। ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वाधिक जनसंख्या निवास करती थी। नगरों की बसावट काफी कम थी। शिक्षा एवं विज्ञान के प्रचार-प्रसार के उपरान्त जनता का झुकाव शहरों में बसने की ओर होने लगा। रोजगार के अवसरों की बहुलता भी ग्रामीण जनसंख्या के शहरों में पलायन का प्रमुख कारण है। नवीन उद्योगों की स्थापना ने इस प्रवृत्ति को अधिक योगदान दिया है। निश्चय ही इन परिवर्तनों का प्रभाव वास्तु-शैलियों पर परिलक्षित हुआ। विदेशी शासकों का भारतवर्ष पर शासन करना भी इस परिवर्तन का प्रमुख कारण रहा। विदेशी शासकों के साथ उनकी जीवन शैली, संस्कृति, धर्म और भाषा ने भी भारत में प्रवेश किया। इसका प्रभाव वर्तमान में स्पष्ट ही परिलक्षित किया जा सकता है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में निर्मित भवनों के लिए वास्तु सिद्धांत समान रूप से कार्यकारी हैं। बालकनी, चबूतरा, गोल सीढ़ियां, लिफ्ट, सैप्टिक टैंक, शौचालय इत्यादि बातों का प्रसंगानुसार उल्लेख करने का प्रयास इस ग्रन्थ में किया गया है। इसके लिए आधुनिक वास्तु-शास्त्र के जैन-जैनेतर ग्रंथों का अध्ययन कर उपयोगी सामग्री पाठकों के हितार्थ प्रस्तुत की गई है। वास्तु-शास्त्र के मूल सिद्धांतों में किंचित् भी परिवर्तन किए बिना आधुनिक संदर्भ में उपयोगी संकेत दिए गए हैं।

वर्तमान शैलियों में भवन निर्माण सामान्यतः कालोनियों अथवा उपनगरों में किए जाते हैं। इन भवनों की स्थिति उनके धरातल से ढलान, चढ़ाव, आस-पास के वृक्ष आदि के अतिरिक्त उनसे लगने वाली सड़कों से भी

प्रभावित होती है। प्राचीन ग्रंथों में यथासंभव पूर्व या उत्तर में ही सिंह द्वार अथवा कुबेर द्वार निर्माण करने का उल्लेख किया गया है। वर्तमान काल में जनसंख्या वृद्धि तथा शहरीकरण की वृद्धिंगत प्रवृत्ति के कारण भूमि एवं भवनों का मूल्य तो बढ़ा ही है, साथ ही सुलभता भी समाप्त हो गयी है। ऐसी परिस्थिति में उपलब्ध भूखण्ड पर यथासंभव प्रयास किया जाना चाहिए कि वास्तु का निर्माण अधिक से अधिक वास्तु नियमों के अनुकूल हो।

साधारणत: भूखण्डों के पार्श्व में एक अथवा दो सड़कें होती हैं। किन्हीं भूखण्डों की तीन पार्श्वों में भी सड़कें होती हैं। चारों तरफ सड़क वाले भूखण्ड नगण्य अथवा अल्प ही है।

सड़कों के पार्श्व के अनुरूप भूखण्डों का वर्गीकरण किया जा सकता है। जिन भूखण्डों में मात्र एक पार्श्व में सड़क है उनके नाम सड़क वाली दिशा नाम के नाम से कहे जाते हैं। जिन भूखण्डों में दो पार्श्वों में सड़क है उनके नाम उन पार्श्वों के मध्य की विदिशा के नाम पर कहे जाते हैं। इसको निम्नलिखित रीति से दर्शाया जा सकता है–

क्रं.	भूखण्ड का नाम	लक्षण
1	पूर्वी	जिनके मात्र पूर्व पार्श्व में सड़क हो
2	उत्तरी	जिनके मात्र उत्तर पार्श्व में सड़क हो
3	पश्चिमी	जिनके मात्र पश्चिम पार्श्व में सड़क हो
4	दक्षिणी	जिनके मात्र दक्षिण पार्श्व में सड़क हो
5	ईशान	जिनके मात्र पूर्व एवं उत्तर पार्श्व में सड़क हो
6	आग्नेय	जिनके मात्र पूर्व एवं दक्षिण पार्श्व में सड़क हो
7	नैऋत्य	जिनके मात्र पश्चिम एवं दक्षिण पार्श्व में सड़क हो
8	वायव्य	जिनके मात्र पश्चिम एवं उत्तर पार्श्व में सड़क हो

इन खण्डों में वास्तुशास्त्र के मूल नियमों को ध्यान में रखकर ही वास्तु संरचना का निर्माण किया जाना उचित है। प्रस्तुत खण्ड में आधुनिक संदर्भ में भूतल की अपेक्षा, निर्माण कार्य की अपेक्षा, प्रवेश की अपेक्षा तथा मार्गारम्भ की अपेक्षा उपयुक्त संकेत देने का प्रयास किया गया है। यथासंभव पुरुषार्थ करके ऐसी वास्तु संरचना का निर्माण करना उचित है जो कि नियमानुकूल हो। कुछ स्थलों पर प्राकृतिक बाधाएं भी आ सकती हैं जिनके कारण भूखण्ड स्वामी विवश हो जाता है। परिस्थिति एवं शक्ति के अनुरूप सत्पुरुषार्थ करना ही ऐसे अवसरों पर उपयुक्त है। नवकार्य में चाहे चबूतरा बनाना हो या सीढ़ी, दरवाजा बनाना हो या खिड़कियां सर्वत्र विवेक की आवश्यकता है। दुकान, भवन, उद्योग एवं व्यापारिक संकुल (काम्प्लेक्स) आदि सभी प्रकार के निर्माणों के संदर्भ में भी यही बात ध्यान में रखना चाहिए।

मूल सिद्धांत यही है कि पूर्व एवं उत्तरी दिशा में तल नीचा हो तथा निर्माण कार्य की ऊंचाई इन दिशाओं में नीची हो। इन दिशाओं में कम निर्माण करना चाहिए तथा अधिक रिक्त स्थान छोड़ना चाहिए। सड़कों की अपेक्षा से विभक्त इन भूखण्डों में इसी मूल भावना को ध्यान में रखकर आधुनिक परिप्रेक्ष्य में यथोचित संकेत देने का उपक्रम किया गया है। इतना ध्यान में रखना आवश्यक है कि पुराने भवनों में सुधार करते समय कम से कम तोड़-फोड़ की जाना चाहिए। यथासंभव वर्तमान परिस्थिति में दिशाओं के संतुलन के अनुरूप बाह्य व आंतरिक साज-सज्जा एवं सामान की स्थिति में परिवर्तन करके अपनी वास्तु को नियमानुकूल बनाने का प्रयास करना उचित है।

ईशान भूखण्ड
North Eastern Block

जिन भूखण्डों में उत्तर एवं पूर्व की तरफ सड़क हो वे भूखण्ड ईशान भूखण्ड कहलाते हैं। ऐसे भूखण्डों के विषय में निम्नलिखित विशिष्ट स्मरणीय निर्देशों का अनुपालन भूखण्ड स्वामी के लिए हितकारी होगा। ऐसे भूखण्ड वास्तु विज्ञान की अपेक्षा उत्तमोत्तम माने जाते हैं। (चित्र ई-1)

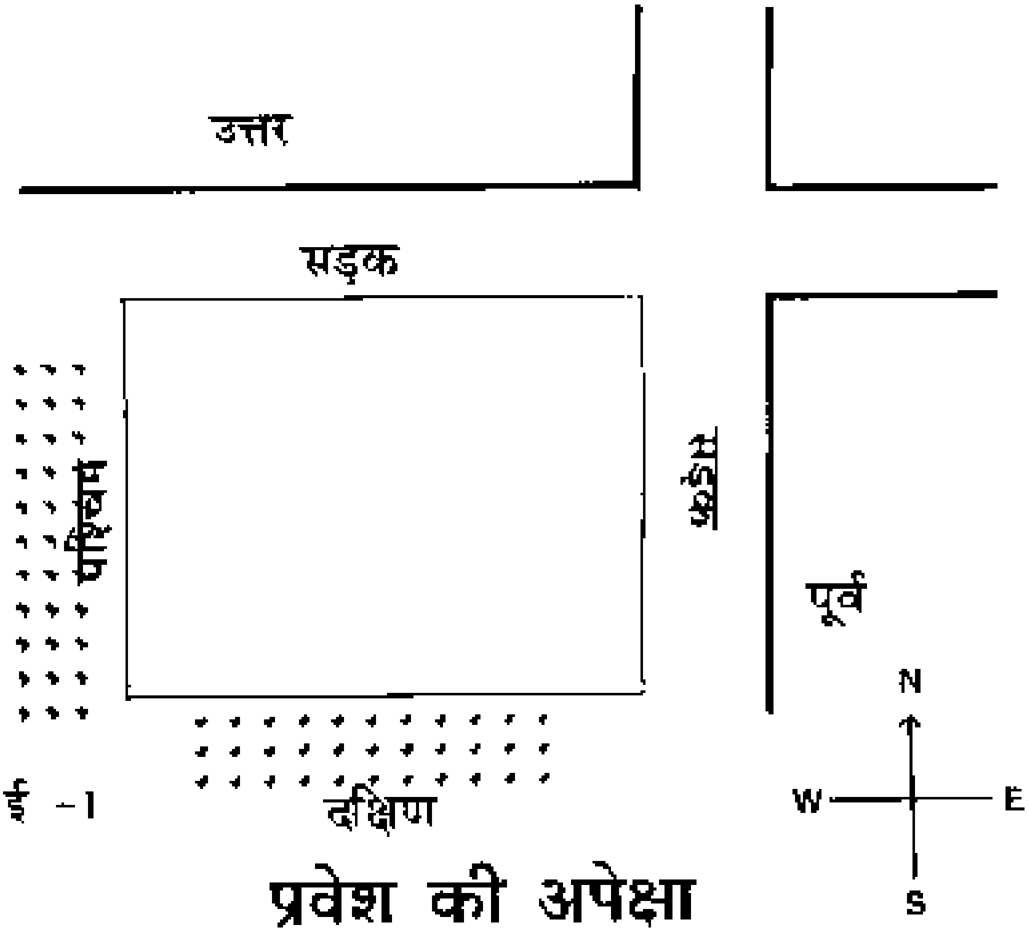

चित्र ई -1

प्रवेश की अपेक्षा

1. मुख्य प्रवेश उत्तर या पूर्व में ही,रखना चाहिये। यह ध्यान रखें कि उत्तरी प्रवेश की अपेक्षा दक्षिणी प्रवेश नीचा न हो। इसी प्रकार पूर्वी प्रवेश की अपेक्षा पश्चिमी प्रवेश भी ऊंचा हो। कम्पाउन्ड वाल का गेट भी फर्श से ऊंचा न हो।
2. यदि भूखण्ड 10 अंश से अधिक पूर्वी आग्नेय की ओर झुका हो तो मकान का मुख उत्तर में तथा मुख्य द्वार पूर्वी ईशान में रखने के अतिरिक्त पूर्व में एक द्वार भी रखें।
3. मुख्य प्रवेश द्वार पूर्वी या उत्तरी ईशान में सर्वोपयोगी है।

निर्माण कार्य की अपेक्षा

1. ईशान कोण से सीमा दीवाल का काम प्रारम्भ करने पर विपरीत प्रभाव होता है।
2. ईशान कोण में उत्तरी पार्श्व काटा जाने पर तथा निर्माण कार्य उत्तर की ओर से प्रारम्भ करने पर घर की महिलाओं को दीर्घरोग, चिंता, भीषण वित्तीय संकट की प्राप्ति होती है।
3. ईशान कोण को काटकर आग्नेय में निर्माण कार्य करने से गंभीर दुर्घटनाएं होने की आशंका होती है। (चित्र ई-2)

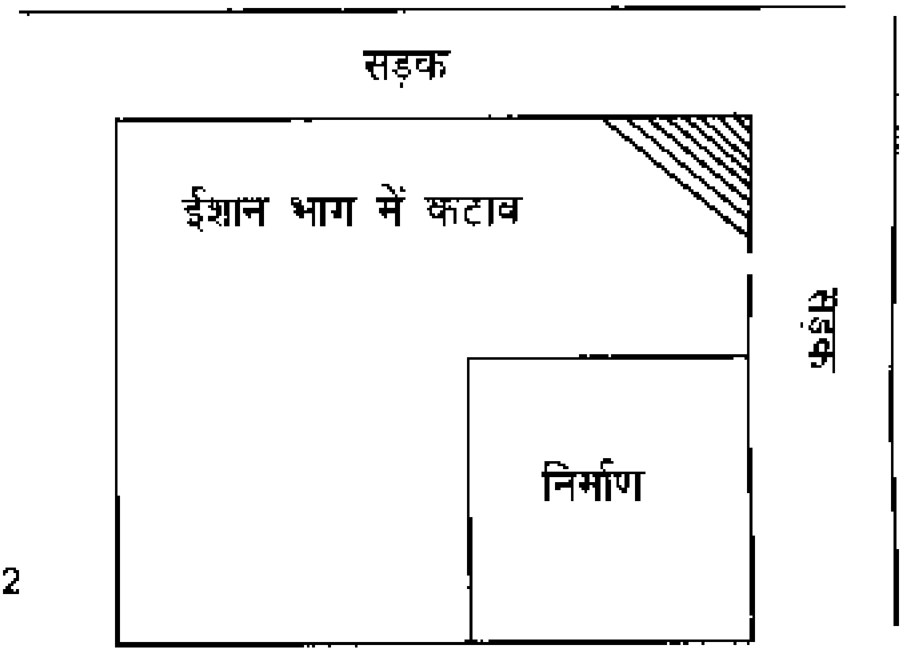

चित्र ई -2

4. ईशान कोण में पूर्वी पार्श्व काटा जाने पर तथा पूर्वी सीमा से निर्माण कार्य प्रारम्भ करने पर परिवार के पुरुष प्रमुख अथवा ज्येष्ठ पुत्र को शारीरिक कष्ट, गंभीर वित्तीय संकट तथा तृतीय पीढ़ी के बाद निर्वंश होने का दुख भोगना पड़ता है।
5. ईशान कोण काटने से धन होने पर भी दुखी जीवन, निर्वंशता का दुख कभी-कभी यहां तक हो जाता है कि दत्तक पुत्र भी संतानहीन होते हैं। पुत्र होने पर उन्हें मृत्युभय रहता है।
6. ईशान कोण में पूर्वी या उत्तरी दीवाल से लगकर छोटा कमरा या शैल्टर बनाने पर वंशहानि एवं प्रगति अवरोध होता है।

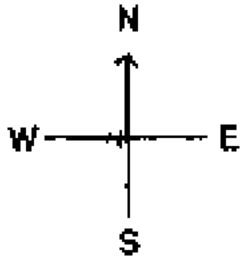

7. ईशान में कमरा हो तो उसमें पूर्वी या उत्तरी ईशान में द्वार बनाएं।
8. पूर्व मध्य या उत्तर मध्य में पोर्टिको नहीं बनाएं। बनाना आवश्यक हो तो ईशान कोण तक विस्तृत कर दें।

9. कम्पाउन्ड वाल का कोना ईशान दिशा में गोल न कटाएं।
10. यदि पूर्वी सड़क उत्तरी सड़क से नीची हो तो निर्माण पूर्वाभिमुखी करें।
11. यदि उत्तरी सड़क पूर्वी सड़क से नीची हो तो निर्माण उत्तराभिमुखी करें।
12. यदि छत का झुकाव पूर्व की ओर होगा तो पुरुष सदस्यों के लिए लाभदायक होगा।
13. यदि पूर्वी चबूतरा मकान के फर्श से ऊंचा होगा तो पुरुष सदस्य तथा उत्तरी चबूतरा मकान से ऊंचा होने पर स्त्री सदस्यों को पीड़ाकारक होगा।
14. ईशान में शौचालय का निर्माण करने से पारिवारिक अशांति, अपराधीवृत्ति तथा असाध्य रोगों का आगमन होता है।

किराये से देना

1. मकान का ईशान भाग न बेचें न किराये से दें।

रिक्त भूमि

1. ईशान का रिक्त स्थान या वरांडा होने पर निवासी वैभवशाली जीवन व्यतीत करेंगे, बशर्ते ईशान कोण का भाग भूखण्ड के अन्य भागों से नीचा हो। (चित्र ई-3)

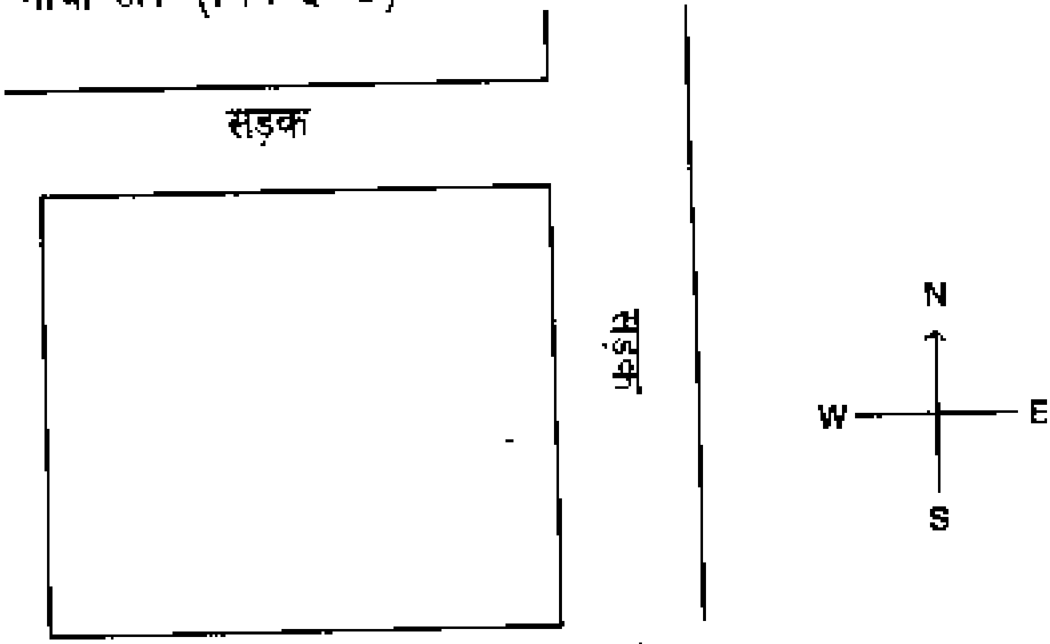

चित्र ई -3

2. ईशान कोण सही तरीके से बना हो तथा पूर्व में पश्चिम की अपेक्षा अधिक रिक्त स्थान हो तथा उत्तर में दक्षिण की अपेक्षा अधिक रिक्त स्थान हो तो निवासी पीढ़ियों तक आलीशान वैभव भोगते हैं।

3. ईशान मे रिक्त भूमि मिले तो अवश्य ही ले लेना चाहिये तथा भूखण्ड के ईशान बिंदु का निर्धारण कर इसके अनुरूप नैऋत्य में एक छोटा सा कमरा बनाना चाहिये। यदि लिये गए ईशान के भूखण्ड से मूल भूखण्ड में आने जाने का सुगम मार्ग हो तो यह भूखण्ड बहुमूल्य होने पर भी अत्यंत लाभकारी साबित होगा।

ईशान कोण की अपेक्षा

1. ईशान कोण में चढ़ाव होना अशुभ, धनहानि, वंशहानि, पारिवारिक संकट का कारण होता है।
2. ईशान कोण में यदि पूर्व व उत्तर की सड़कों से विस्तार हुआ हो तो ऐसे भूखण्ड के निवासी वैभवशाली, अति बुद्धिमान संतति, नैतिक एवं त्यागमय जीवन के धारी होते हैं।
3. ईशान कोण का विस्तार पूर्व की ओर हो तो निवासी धनी, प्रसिद्ध तथा न्यायप्रिय होंगे। (चित्र ई-4)

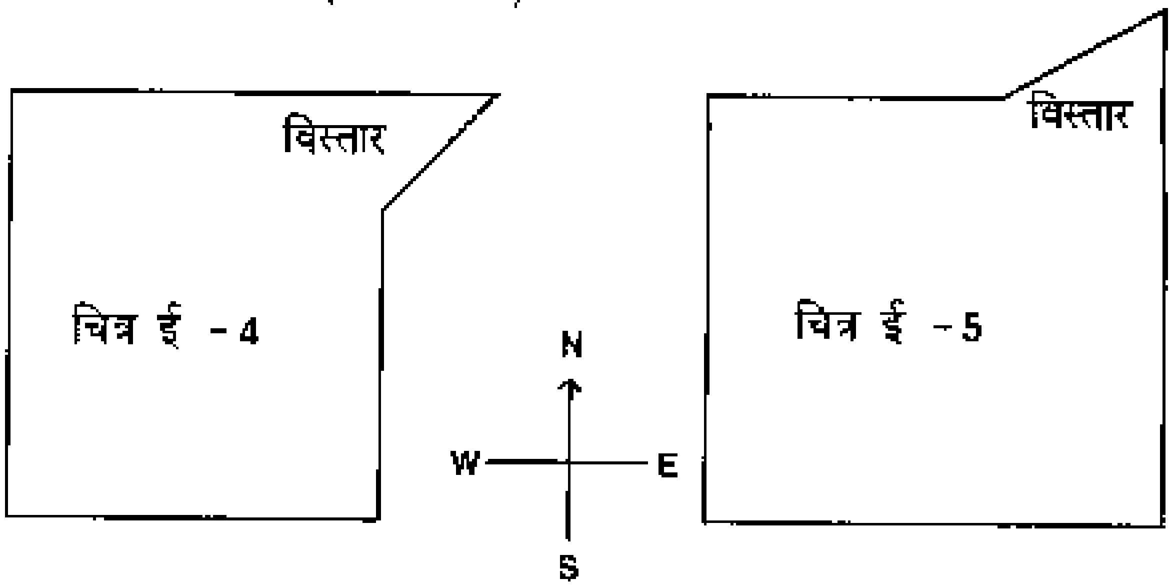

4. ईशान कोण का विस्तार उत्तर की ओर हो तो धनागम होने के बावजूद दुर्घटनाभय बना रहेगा। (चित्र ई-5)
5. ईशान कोण में विस्तार प्रति 100 फुट पर 2 फुट करने से वास्तु का संपूर्ण शुभ प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

मार्गारम्भ बिन्दु

1. यदि पूर्वी ईशान से मार्गारम्भ हो तो निवासी नाम, यश पाता है।
2. यदि उत्तरी ईशान से मार्गारम्भ हो तो संततियों तक समृद्धि की प्राप्ति होती है।

पूर्व भूखण्ड
Eastern Block

ऐसे भूखण्ड, जिसके सिर्फ पूर्व दिशा में सड़क हो, वे पूर्व भूखण्ड कहे जाते हैं। इसका विशेष प्रभाव पुरुष वंशावली पर होता है तथा निवासी स्वास्थ्य एवं धन दोनों का सुख प्राप्त करते हैं। ऐसे भूखण्डों के विषय में कुछ विशेष ध्यान देने योग्य बातें निम्नलिखित हैं-

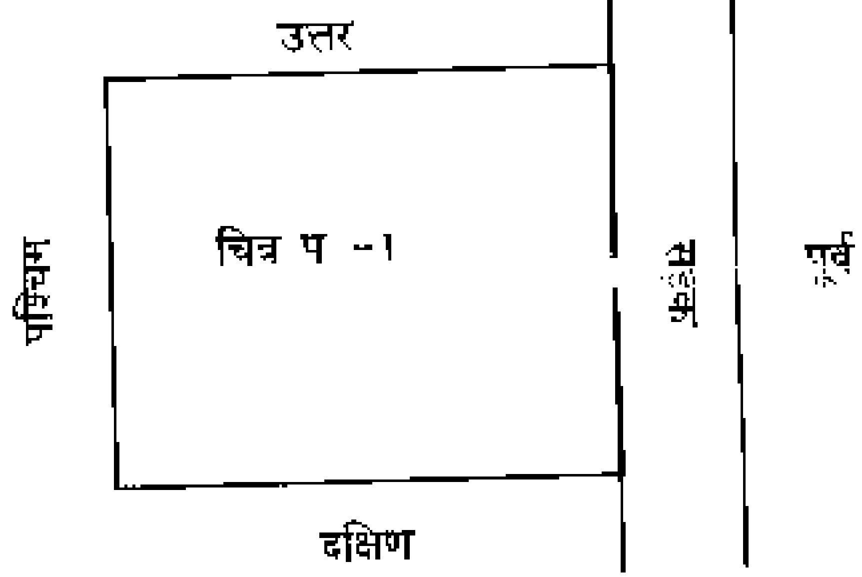

रिक्त स्थान की अपेक्षा

1. भूखण्ड के पूर्वी भाग में अधिक रिक्त स्थान रखा जाये तो निवासियों को वैभव तथा सुयोग्य वंशावली का सुख प्राप्त होता है।
2. यदि उत्तर में रिक्त स्थान न हो किंतु वास्तु नियमों के अनुकूल निर्माण कार्य किया गया हो तो भी लाभकारक होता है। पूर्वी रिक्त भाग में विस्तार स्वास्थ्य एवं दीर्घायु का कारण है।

तल एवं चबूतरे की अपेक्षा

1. पश्चिमी एवं दक्षिणी भाग की अपेक्षा पूर्वी भाग नीचा रहने पर निवासियों को धन, वैभव, सुस्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। सभी कमरों एवं बालकनी में भी इसी बात का ध्यान रखा जाये तो और भी बेहतर है।
2. फर्श से पूर्व का चबूतरा कम ऊंचा होने पर शांति, वैभव, सुख समाधान की प्राप्ति होती है।
3. पूर्वी भाग अन्य भागों से ऊंचा होने पर परिवार को दरिद्रता का संकट, पुत्रादि को दीर्घ रोग, मानसिक दौर्बल्यता का संताप भोगना पड़ता है।

प्रवेश की अपेक्षा

1. पूर्वाभिमुखी प्रवेश शुभफलदायी होंगे। (चित्र प-2)
2. ईशान से प्रवेश होने पर वंशानुक्रम प्राप्ति, शांति, साधन, सुख, वैभव, प्रगति एवं सर्वोपरि सुदृढ़ आर्थिक स्थिति मिलेगी। (चित्र प-2)

चित्र प -2

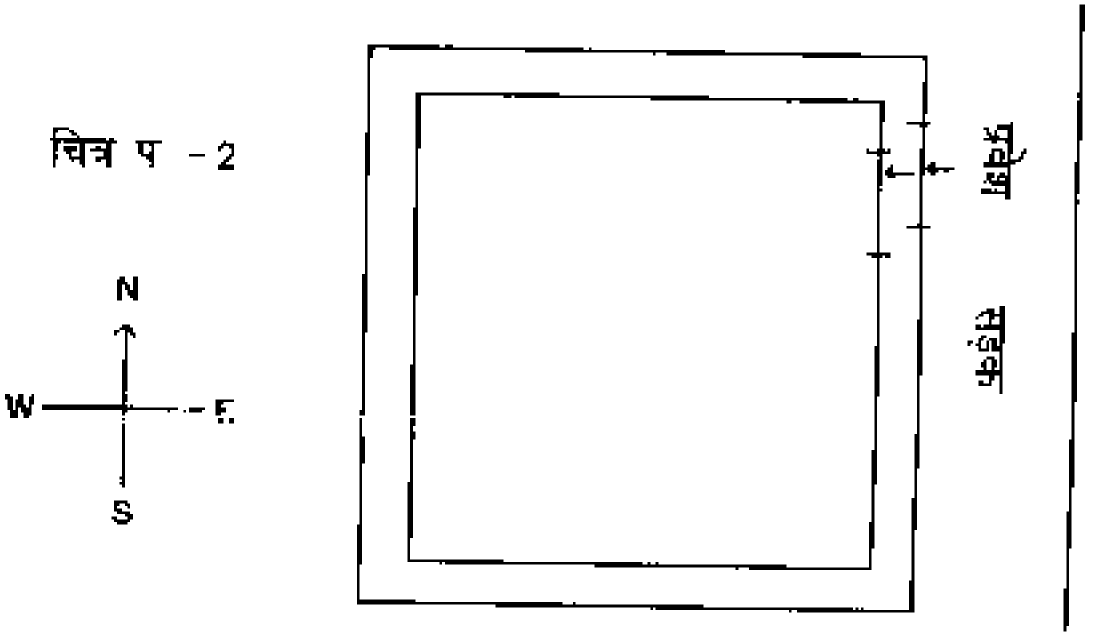

3. पूर्वाभिमुखी मकान की कम्पाउन्ड वाल प्रमुख प्रवेश से ऊंची न हो। पथ पर चलने वाले की दृष्टि में प्रमखु प्रवेश आ सके, यह आवश्यक है। (चित्र प-2)
4. पूर्वी द्वार आग्नेय की तरफ होने पर गरीबी, मुकदमेबाजी, डकैती, अग्निभय की आशंका बनी रहेगी।

निर्माण कार्य की अपेक्षा

1. यदि पूर्वी सीमा से निर्माण कार्य प्रारम्भ कर पश्चिम में रिक्त स्थान रखेंगे तो हानि तथा पुत्रों का अभाव हो सकता है। दुर्घटना भय भी रहेगा। यदि सुरक्षित बच भी गये तो शारीरिक एवं मानसिक संताप होगा। अकालमृत्यु एवं दीर्घ रोग भी हो सकते हैं।
2. यदि पूर्व के पड़ोसी के कम्पाउन्ड वाल से लगकर मकान बनाते हैं तो इसमें 3 इंच छोड़कर 4 फुट ऊंची कम्पाउन्ड वाल बनाएं।
3. पूर्वी सीमा से निर्माण कार्य आरम्भ करें तथा पश्चिम में झुका हुआ विस्तार (छपरीनुमा) रखें तो निवासी को नेत्ररोग, दीर्घरोग, पक्षाघात इत्यादि रोगों के आगमन का भय रहता है।

4. यदि पूर्व में झुकावदार विस्तार (छपरी) बनी हो तो परिवार के पुरुष सदस्यों के लिए अमृत स्वरूप है। स्वास्थ्य एवं यश प्रदाता है। स्लैब वाले मकान में उत्तर एवं पूर्व में दो-दो फुट की बालकनी निकालें। दक्षिण एवं पश्चिम में बालकनी न निकालें।
5. यदि पूर्वी कम्पाउन्ड वाल पश्चिमी कम्पाउन्ड वाल से नीची रहेगी तो सुयोग्य वंशावली की प्राप्ति होगी।
6. पश्चिमी कम्पाउन्ड वाल, पूर्वी कम्पाउन्ड वाल से अगर नीची रहेगी तो संतति नाश का भय होगा।

किराए से देने की अपेक्षा

1. यदि मकान का निर्माण इस प्रकार किया गया हो कि उसका कुछ भाग किराये से देना हो तो स्वयं पूर्वी अथवा उत्तरी भाग में रहना चाहिये तथा किरायेदार को दक्षिणी या पश्चिमी भाग में रखना चाहिये। मकान जब खाली हो तब दक्षिण या पश्चिम भाग में आ जाये ताकि पूर्व व उत्तर दिशाओं पर भार न रहे। ऐसा न करने से वास्तु के मूल सिद्धांत के विपरीत होने के कारण परेशानियां उत्पन्न होना अवश्यंभावी है।

आग्नेय भूखण्ड
South Eastern Block

ऐसे भूखण्ड जिनके पूर्वी एवं दक्षिणी पार्श्व में सड़क हो, आग्नेय भूखण्ड कहलाते हैं। ऐसे भूखण्डों में परिवार की महिला सदस्यों तथा द्वितीय संतान पर विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। ऐसे भूखण्डों पर वास्तु का निर्माण पूर्ण सावधानी के साथ करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। ऐसे भूखण्डों के विषय में निम्नलिखित सूचनाओं को ध्यान में रख वास्तु का निर्माण करना निर्माणकर्ता के हित में होगा अन्यथा एकदम अनपेक्षित परिणाम निकलने की संभावना रहेगी।

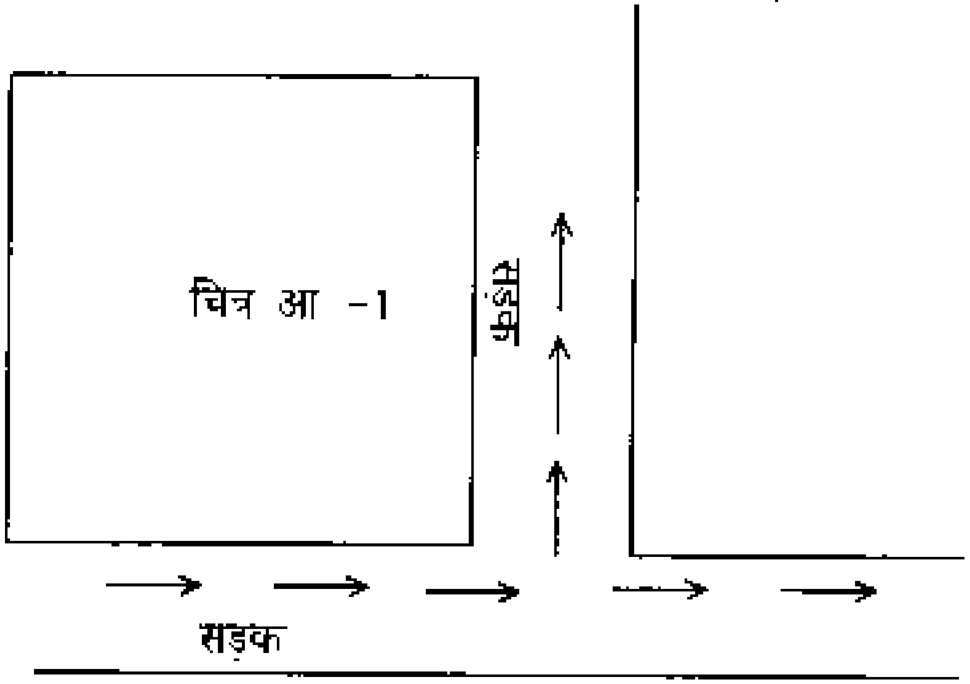

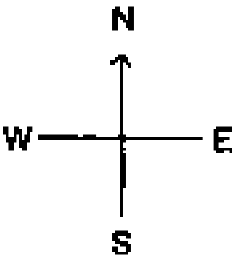

निम्नलिखित बातों का अवश्य ध्यान रखें-

प्रवेश की अपेक्षा

1. यदि दक्षिणी पथ पूर्वी पथ से नीचा हो तो प्रमुख प्रवेश पूर्व से रखें। यदि भूखण्ड का झुकाव आग्नेय की ओर 10 अंश से ज्यादा हो तो कम्पाउन्ड वाल का प्रमुख द्वार पूर्वी ईशान में तथा मकान का प्रवेश उत्तर में रखना चाहिये। पूर्व में भी एक दरवाजा रखें।
2. पूर्वी आग्नेय में प्रमुख प्रवेश होने पर सनकीपन, अस्थिर व्यक्तित्व, पत्नि में आपसी विश्वास का अभाव तथा अनावश्यक कलह का सामना करना पड़ेगा।

3. दक्षिण में प्रवेश हो, पूर्वी तथा पश्चिमी पार्श्व खुले होकर सामने आंगन में आच्छादित चबूतरा हो, चबूतरे के किसी भी तरफ तीन फुट ऊंची दीवाल हो तो आवागमन पूर्वावर्ती अथवा दक्षिणावर्ती रखना चाहिये। आग्नेय एवं पश्चिम से आवागमन अवरोध करें।

निर्माण कार्य प्रारम्भ की अपेक्षा

क्र.	प्रवेश	निर्माण आरंभ	तल	अन्य	परिणाम
1	दक्षिण	पश्चिमी व दक्षिणी सीमा से	पूर्व एवं उत्तर में नीचा	ईशान में कुंआ	वैभवदायी
2	दक्षिण	पूर्वी एवं दक्षिणी सीमा से	-	पूर्वी भाग में सीढ़ी	अकाल मृत्यु, दीर्घरोग
3	दक्षिण	पूर्वी एवं उत्तरी सीमा से	दक्षिण में नीचापन लिए रिक्त स्थान	दक्षिण में छपरी, पोर्टिको	महिलाओं को असाध्य रोग, वैधव्य, प्रौढ़ आयु में उच्छृंखल संतान
4	दक्षिण	पूर्वी एवं दक्षिणी सीमा से	पश्चिम में नीचा रिक्त स्थान	पश्चिम में कुंआ	अल्पायु में दीर्घ रोगी
5	पूर्व	उत्तरी एवं पूर्वी सीमा से	फर्श व चबूतरा ईशान में ऊंचा	-	पुरुष प्रमुख की अकाल मृत्यु
6	पूर्व	उत्तरी सीमा से	-	दक्षिणी में रिक्त स्थान, आग्नेय में कुंआ	महिला की अकाल मृत्यु
7	पूर्व	पूर्वी एवं उत्तरी सीमा से	-	पश्चिम व दक्षिण में रिक्त स्थान	पति-पत्नी में शत्रुता, संतान रोगी व उद्दंड
8	पूर्व	उत्तरी सीमा से	-	दक्षिण में रिक्त स्थान, नैऋत्य में बढ़ाव	महिलाओं की दुर्घटना एवं अकाल मृत्यु
9	दक्षिण	पूर्वी सीमा से	-	पश्चिम में रिक्त स्थान, कुंआ, पूर्वी आग्नेय में बढ़ाव या मार्गारंभ	पत्नी द्वारा पति की हत्या, संतति अवरोध

तल की अपेक्षा

क्र.	तल का ऊंचापन	तल का नीचापन	अन्य	परिणाम
1	वायव्य, ईशान	दक्षिण, आग्नेय	–	दरिद्रता, रोग
2	आग्नेय	नैऋत्य	–	संतति अवरोध, वंशनाश
3	अन्य दिशाएं	आग्नेय	सभी कमरों में आग्नेय नीचा	अग्निभय, शत्रुता रंजिश, चोरी
4	नैऋत्य	आग्नेय	–	शुभ
5	आग्नेय	ईशान, वायव्य	–	शुभ
6	दक्षिण	उत्तर	उत्तर में अधिक रिक्त स्थान	शुभ
7	पश्चिम	पूर्व	पूर्व में अधिक रिक्त स्थान	शुभ

दरवाजे की अपेक्षा

1. पूर्वी आग्नेय दिशा में दरवाजे रखने पर अग्निभय, चौरभय एवं शत्रुता का दुख होगा।
2. यदि कमरे में उत्तर, पूर्व या ईशान की ओर कोई दरवाजा न हो तो आप या तो पश्चिमी वायव्य में दरवाजे लगाएं अथवा दक्षिणी आग्नेय में। किसी एक दिशा में दरवाजे लगाएं, दोनों में नहीं।
3. दरवाजे शुभ दिशाओं में रखें।

कोण की अपेक्षा

1. पूर्व में पथ का कटा हुआ होना तथा उत्तर के मकानों का ईशान में कटा हुआ होना शुभ परिणाम देता है।
2. विदिशाओं के कोण सही होना चाहिये। इससे शुभ प्रभाव होगा।
3. ईशान कोण कुछ बड़ा अथवा एकदम सही हो तथा भूखण्ड में नीचा धरातल हो तो शुभ है।

4. आग्नेय कोण कुछ कटा हुआ हो किंतु अकारण न हो तो शुभ है।
5. आग्नेय कोण दक्षिण की ओर बढ़ा हुआ हो तो शत्रुता एवं स्त्री रोग की आशंका होगी। किंतु आग्नेय कोण का विकास ठीक आयताकार या वर्गाकार के लिये हो तो अशुभ नहीं है।

अन्य महत्त्वपूर्ण संकेत

1. प्रमुख प्रवेश पूर्व में हो, कम्पाउन्ड वाल में पूर्वी आग्नेय में अतिरिक्त गेट हो, ईशान में कटा हुआ हो, वायव्य में कुंआ हो, पश्चिमी वायव्य में झुकी हुई छपरी हो, पश्चिमी भाग कम ऊंचा हो तो गृहस्वामी बुद्धिमान एवं शिक्षित होने पर भी आत्महत्या करने को प्रवृत्त हो सकता है। (चित्र आ-2)

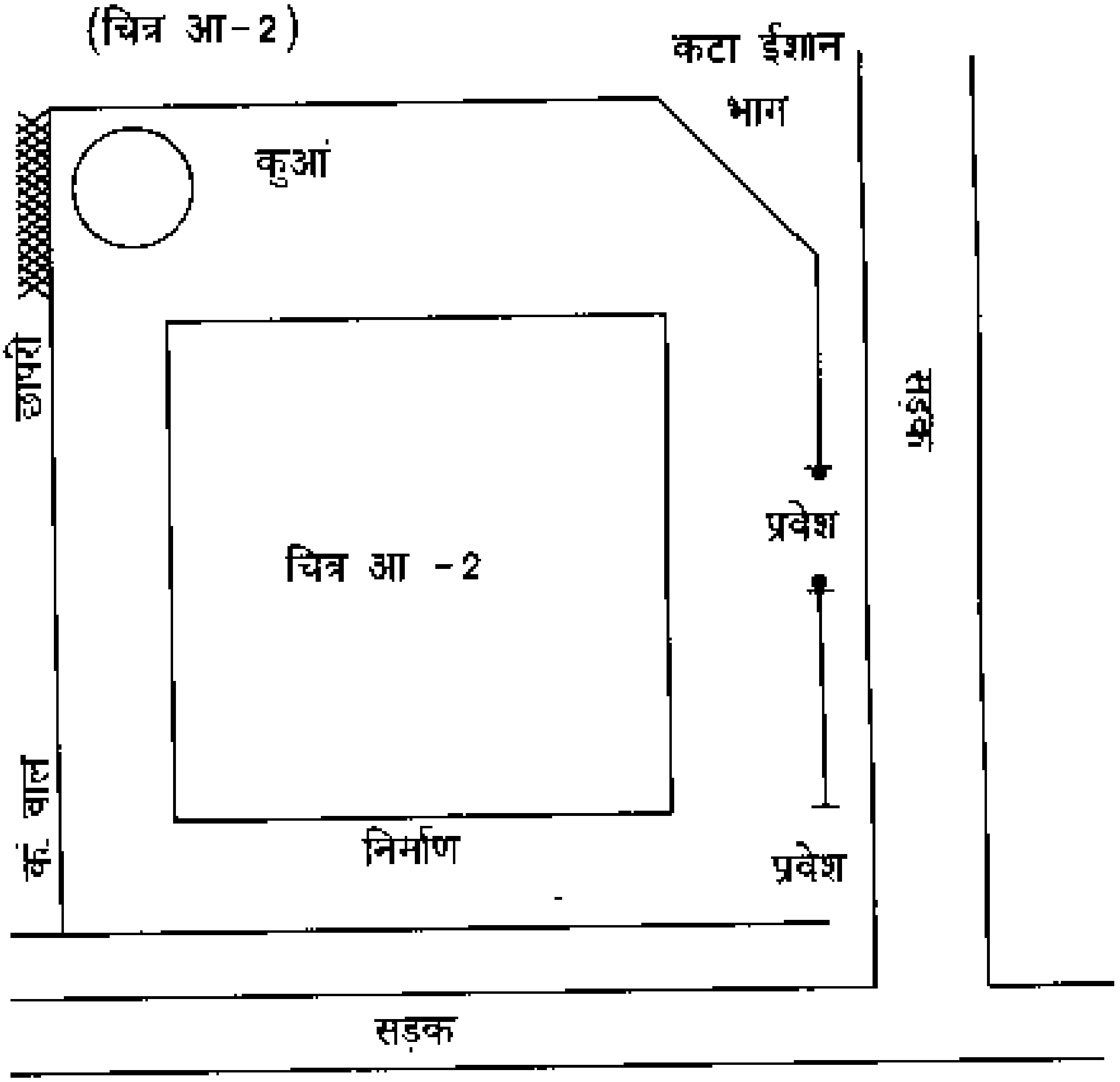

2. यदि पूर्वी आग्नेय का विस्तार पूर्वाभिमुखी हो तो पुरुष संतति की मृत्यु होकर गृहस्वामित्व महिला सदस्यों को मिलता है।

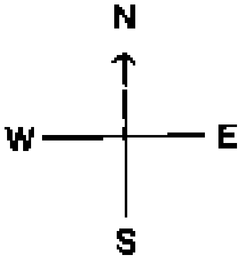

3. यदि दक्षिणी भाग में चबूतरा पूर्व से ग्रिल से जुड़ा हो तथा ग्रिल के नीचे की दीवाल घर की अन्य दीवालों से पतली न हो तो शुभ है अन्यथा पूर्वी आग्नेय की ओर विस्तार का परिणाम विपरीत मिलेगा। यदि यही ग्रिल पश्चिम से जुड़ी हो तो ठीक है अन्यथा इससे पश्चिमी नैऋत्य के विस्तार का असर मिलेगा।
4. शौचालय यदि आग्नेय में बनाना अपरिहार्य हो तो भी स्नानगृह पूर्व में ही रखें।
5. नारियल, नील आदि बड़े वृक्ष दक्षिणी आग्नेय एवं दक्षिणी नैऋत्य के मध्य लगाएं।
6. यदि उद्योग हो तो बायलर, ट्रांसफार्मर पूर्वी कम्पाउन्ड वाल से 3 फुट दूर रखें।
7. यदि उद्योग में आग्नेय कोण में शौचालय बनाना अपरिहार्य हो तो पूर्वी कम्पाउन्ड वाल से 3 फुट दूर बनाएं। शौचालय कम्पाउन्ड वाल को स्पर्श कर न बनाएं।
8. यदि भूखण्ड में निर्मित मकान में पूर्वी या मध्य आग्नेय में बढ़ाव है, तथा कुंआ, गड्ढे आग्नेय में हैं एवं उत्तर में रिक्त स्थान नहीं है अथवा दक्षिण में उत्तर की अपेक्षा ज्यादा रिक्त स्थान है अथवा नैऋत्य या पूर्वी आग्नेय में कम्पाउन्ड वाल में गेट है तो ऐसी स्थिति भीषण फल देती है। निवासी को मुकदमेबाजी, अग्निभय, चोरी, अनैतिक चरित्र एवं कर्ज का सामना करना पड़ेगा। बर्बादी में मकान बिकने की नौबत आ सकती है। पुरुष संतति का अभाव होने से संपत्ति लावारिस हो जायेगी। (चित्र आ-3)

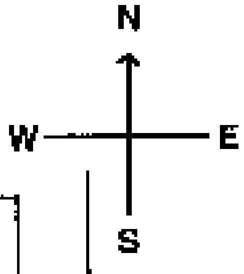

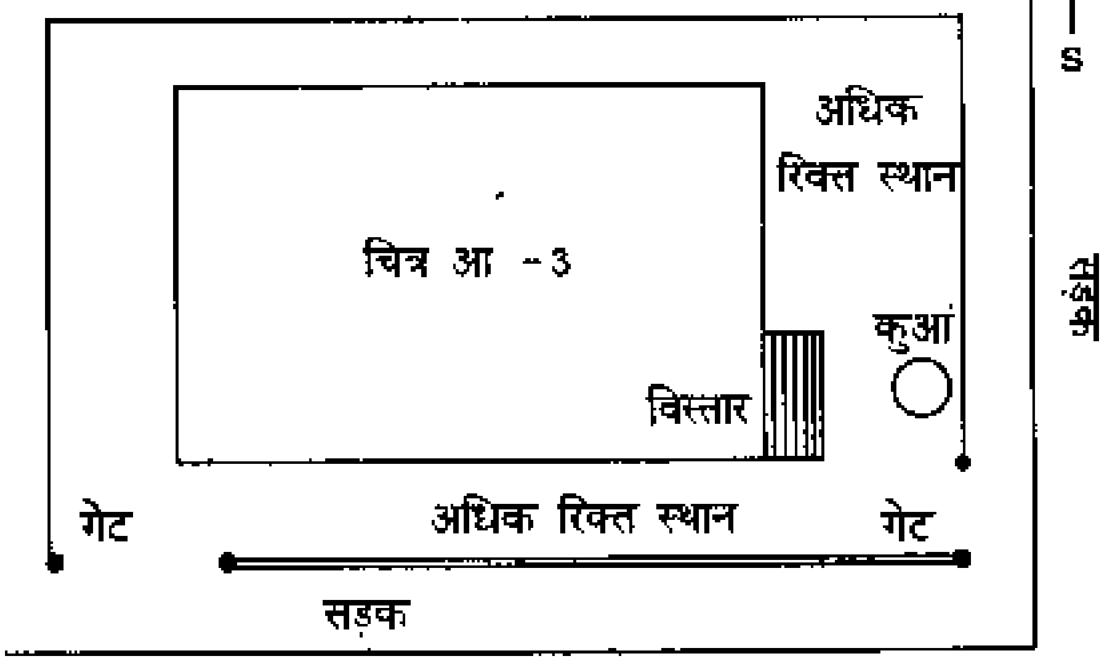

मार्गारम्भ

1. पूर्वी ईशान में शुभ है।
2. दक्षिणी आग्नेय में शुभ है।
3. पूर्वी आग्नेय में होने पर पुरुष सदस्य शनैः शनैः महत्त्वहीन होते जाते हैं, अपमान होता है अंततः स्त्रियों का पुरुषों पर विशेष दबाव एवं अधिकार हो जाता है।
4. दक्षिण नैऋत्य में मार्गारम्भ होने पर महिलाओं को कष्ट, पागलपन, असाध्य रोग तथा आत्महत्या तक की नौबत आ सकती है।

(मार्गारम्भ के संकेतों के लिए देखिए चित्र आ – 4)

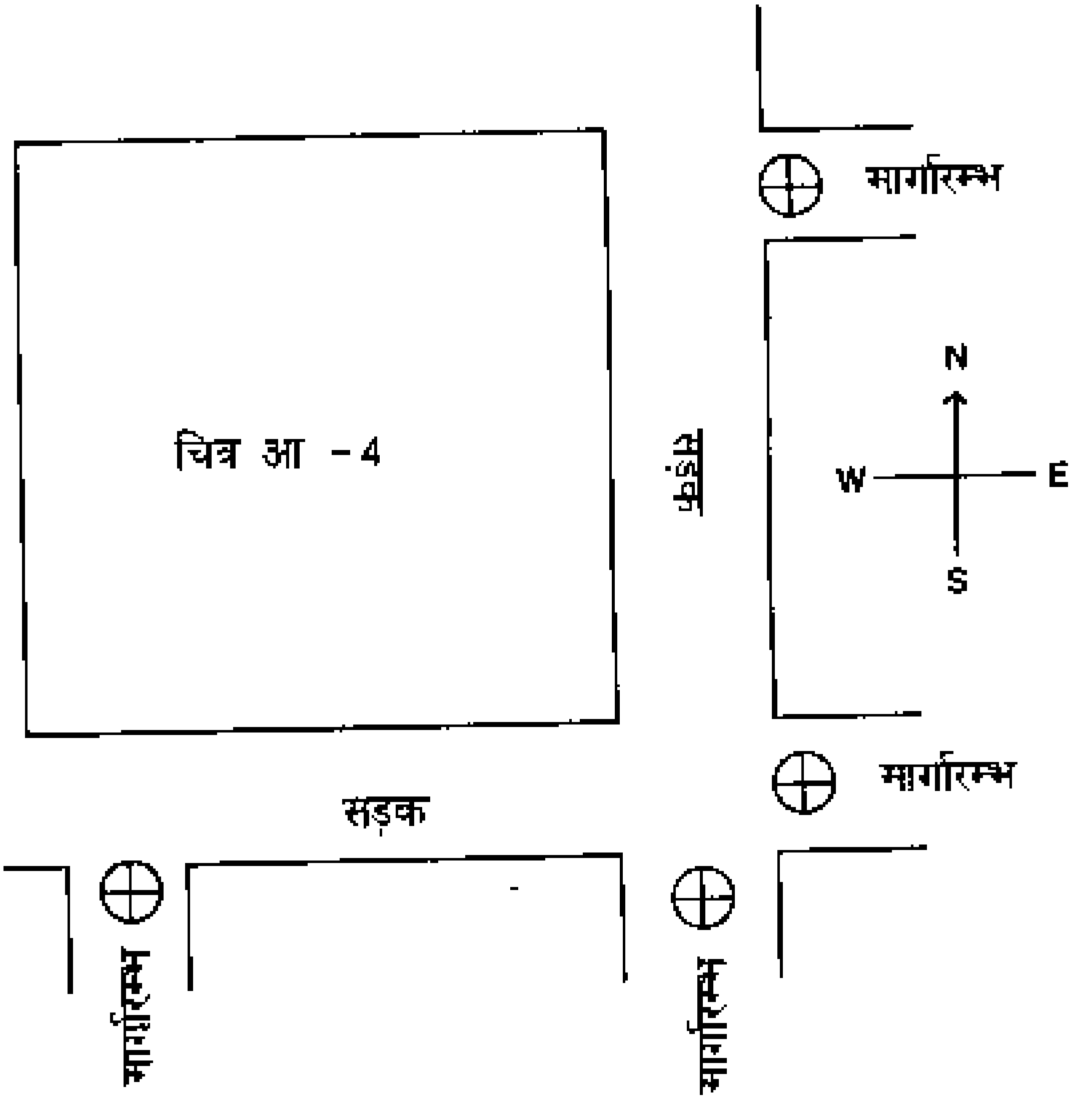

दक्षिण भूखण्ड
Southern Block

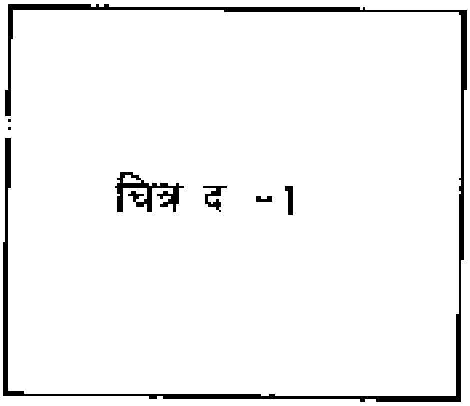
चित्र द -1

ऐसे भूखण्ड जिनके केवल दक्षिणी पार्श्व में सड़क हो तो उनको दक्षिण भूखण्ड कहते हैं। ऐसे भूखण्ड में दक्षिणाभिमुख होने का विशेष प्रभाव घर की महिला सदस्यों पर होता है। दक्षिण दिशा को सामान्यतः भारी एवं अशुभ माना जाता है। किंतु सर्वथा ऐसा नहीं है। यदि वास्तु नियमों का समुचित ध्यान रखा जाये तो शुभ परिणामों की निश्चित प्राप्ति होती है। ऐसे भूखण्डों के संदर्भ में निम्नलिखित विशिष्ट निर्देशों को ध्यान में रखना स्वामी के लिए हितकारी हैं–

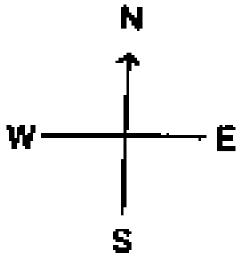

तल की अपेक्षा

1. यदि भूखण्ड के दक्षिण में ऊंचापन हो तो निवासी को आरोग्य एवं धन की प्राप्ति होगी। (चित्र द-2)
2. भूखण्ड में दक्षिणी भाग में भारी सामान एवं अस्त्रागार रखना अत्यंत शुभफलदाता है। (चित्र द-2)
3. यदि दक्षिणी कमरों को उत्तरी कमरों से ऊंचा रखा जाये तो वैभव प्रदाता होगा। (चित्र द-2)

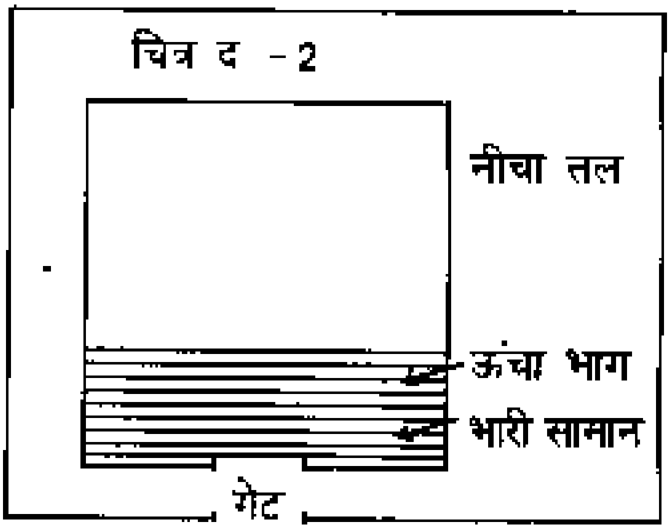

चित्र द -2

4. दक्षिणी फर्श तल उत्तरी फर्श तल से नीचा होने पर स्त्री रोग, धन हानि, अकालमृत्यु की आशंका विद्यमान होगी।

चबूतरे की अपेक्षा

1. दक्षिण में चबूतरा उत्तर के चबूतरे से नीचा होने पर धन हानि, रोग का संताप होगा।
2. फर्शतल से दक्षिणी पार्श्व का चबूतरा ऊंचा होने पर उत्तम स्वास्थ्य तथा सुदृढ़ अर्थसंपदा की प्राप्ति होगी।

रिक्त स्थान की अपेक्षा

1. उत्तर में दक्षिण की अपेक्षा कम रिक्त स्थान होने पर धन हानि, वैमनस्य, शत्रुता, महिलाओं में कलह होने से नारकीय जीवन रहेगा।
2. दक्षिणी खुली जगह अपेक्षाकृत कम ऊंची हो तो स्त्री सदस्यों को बीमारी, अकालमृत्यु तथा धन हानि का संकट रहेगा।
3. यदि उत्तर की खाली भूमि खरीदने का प्रसंग आये तो कम्पाउन्ड वाल को तुड़वा लें तथा भूखण्ड से जोड़कर एक कर लें। ऐसा न कर सकें तो कम्पाउन्ड वाल के पूर्वी या उत्तरी भाग में गेट अवश्य लगवा लें।
4. यदि पूर्व की रिक्त भूमि क्रय करना हो तो कम्पाउन्ड वाल के पूर्व में एक गेट अवश्य लगवा लें। अथवा कम्पाउन्ड वाल को तुड़वा दें। नए भूखण्ड में प्रवेश के लिए पृथक से आग्नेय में गेट बनाएं। ऐसा न करने पर वर्तमान गेट नैऋत्य में हो जाने से अशुभ होकर विपरीत प्रभाव करेगा।

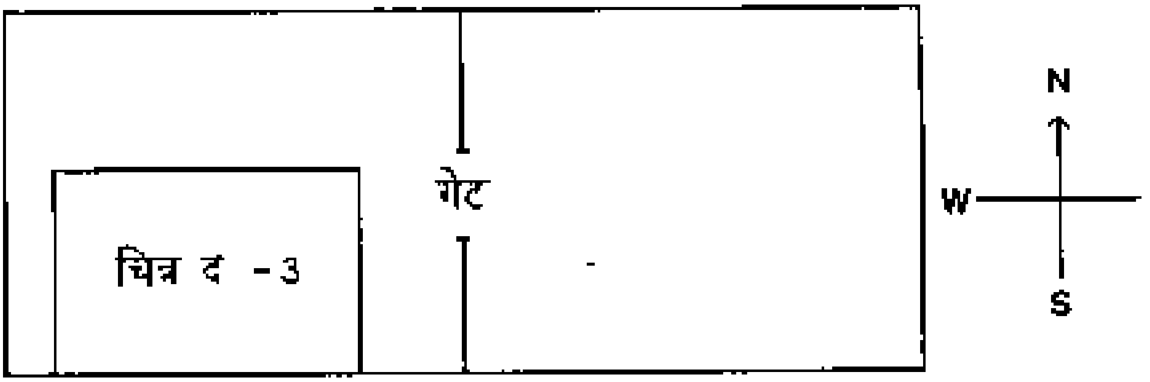

5. यथा संभव दक्षिण या पश्चिम का भूखण्ड न खरीदें। अपरिहार्य होने पर प्रथमतः मूल भूखण्ड या मकान किसी अन्य के नाम कर दें तथा नया भूखण्ड खरीदकर इसे पूरा गिरवा लें। अब नवीन निर्माण दक्षिण या पश्चिमी सीमा से प्रारम्भ करें। तदनन्तर मूल भूखण्ड अपने नाम से पुनः कराकर अब निवास हेतु जायें।

दरवाजे की अपेक्षा

1. दक्षिण में द्वार धनी बनाते हैं। ऐसे द्वार ठीक दक्षिण में दक्षिणाभिमुखी हों।
2. दक्षिणी द्वार यदि आग्नेय मुखी हों तो अग्निभय, चौरभय, मुकदमेबाजी का संकट होने की संभावना होती है।
3. दक्षिणी द्वार नैऋत्याभिमुखी होने की स्थिति में दीर्घरोग, शत्रुता, अकालमृत्यु की आशंका का निर्माण होता है।

अन्य संकेत

1. निर्माण कार्य दक्षिणी सीमा से प्रारम्भ करें। (चित्र द-4)
2. कम्पाउन्ड वाल तथा अन्य दीवालें दक्षिण की अपेक्षा उत्तर की नीची हो तो शुभ है।
3. प्रमुख प्रवेश दक्षिण में तथा दोनों तरफ खुला चबूतरा होने की परिस्थिति में उत्तर में छपरी अवश्य बनाएं तथा दक्षिण की तरफ निकास निकालें। (चित्र द-4)
4. प्रमुख प्रवेश द्वार से कम्पाउन्ड वाल ऊंची या नीची इच्छानुसार रखें। (चित्र द-4)
5. दक्षिणी पार्श्व में सड़क न होने पर कम्पाउन्ड वाल अवश्य उठाएं। (चित्र द-4)
6. दक्षिण में झुकावदार छपरी अत्यंत अशुभ है। (चित्र द-4)
7. उत्तर में छपरी अधिक झुकाव की बनाएं। (चित्र द-4)
8. दक्षिण में पोर्टिको बिना स्तंभ का बनाएं। छत से इसे बढ़ाकर बनाएं तथा फर्शतल मकान के फर्श तल से नीचा न हो। अन्यथा विपरीत फल होगा।

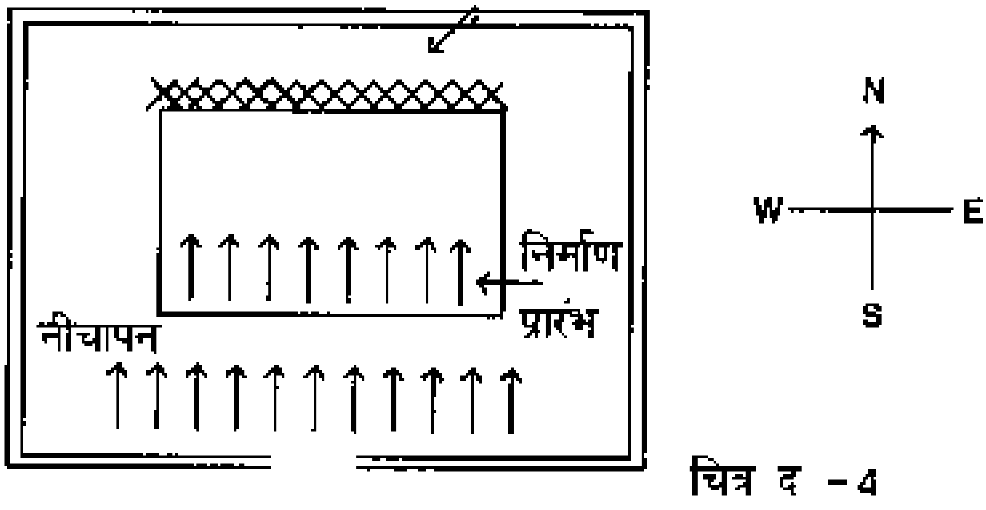

चित्र द -4

नैऋत्य भूखण्ड
South Western Block

ऐसे भूखण्ड जिनके दक्षिणी पार्श्व में सड़क हो वे नैऋत्य भूखण्ड कहलाते हैं। (चित्र न-1) चूंकि नैऋत्य दिशा का महत्त्व वास्तु शास्त्र में ईशान के समकक्ष है अतएव ऐसे प्रभागों पर वास्तु निर्माण का कार्य विशेष सावधानी से ही करना चाहिये। यदि शास्त्रानुकूल पद्धति से निर्माण कार्य किया जाये तो यह भूखण्ड सबसे अधिक उपयोगी तथा स्वामी के अनुकूल होता है। ऐसे भूखण्डों का मुख्य प्रभाव परिवार प्रमुख, उसकी सहधार्मिणी तथा ज्येष्ठ पुत्र पर परिलक्षित होता है। ऐसे भूखण्डों में निम्नानुसार विशिष्ट सावधानियां रखना भूस्वामी के लिए सफलदाता होता है अन्यथा मृत्युसम आपदाओं का सामना करना पड़ सकता है-

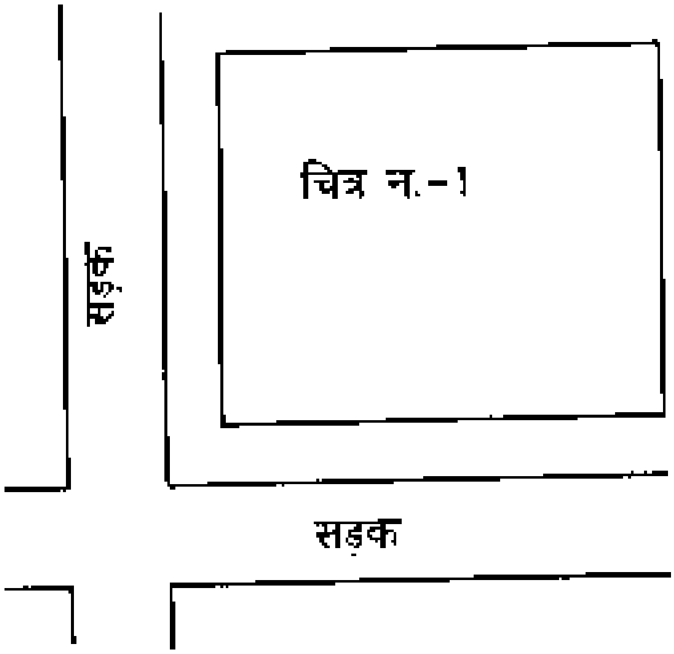

निर्माण की अपेक्षा

1. यदि उत्तर एवं पूर्व से निर्माण कार्य आरम्भ किया जायेगा तथा दक्षिण एवं पश्चिम में उत्तर एवं पूर्व की अपेक्षा अधिक खाली जगह छोड़ी जायेगी तो धननाश, वंशनाश, अनाथ होने जैसे संकट आयेंगे। (चित्र न-2)

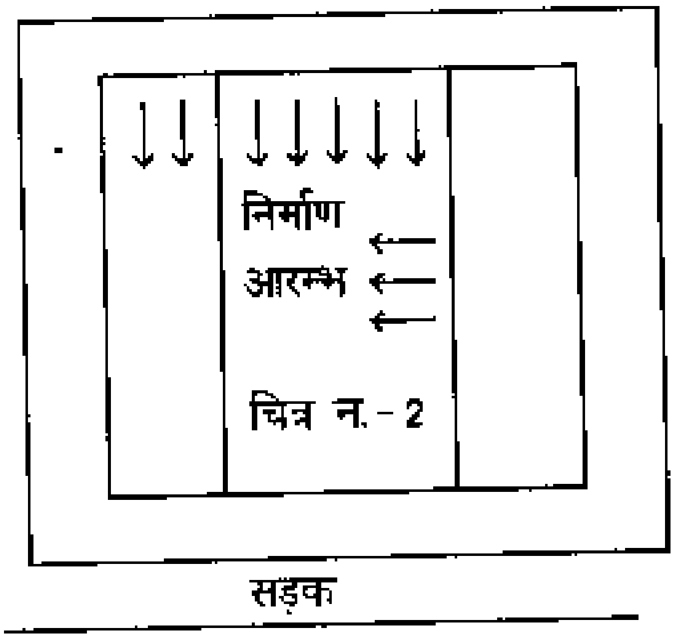

2. ऐसे भूखण्ड में नैऋत्य दिशा का निर्माण कार्य तीव्र गति से करवाएं अन्यथा अनपेक्षित खतरनाक घटनाएं घट सकती हैं।
3. नैऋत्य का कमरा टूटा फूटा हो तो पहले पूरी सामग्री एकत्र करने के पश्चात ही कार्य आरम्भ करें तथा प्राथमिकता से इसे पूरा कराएं। इस समय यात्रा टालना हितकर रहेगा।
4. निर्माण कार्य दक्षिणी या पश्चिमी सिरे से प्रारम्भ करना उपयुक्त है।
5. दक्षिण एवं पश्चिम में पक्का स्लैब (RCC) बनाना चाहिए। भले ही उत्तर एवं पूर्व में झुकावदार छपरी बनाया जा सकता है।

रिक्त स्थान की अपेक्षा

1. इस श्रेणी के मकानों के चारों तरफ खाली जगह रखना उत्तम है। (चित्र न-3)
2. यदि नैऋत्य दिशा में बिना मूल्य के भी भूखण्ड मिलता हो तो नहीं लेना चाहिए। यह महाअशुभ है। (चित्र न-3)
3. दक्षिण एवं पश्चिम में उत्तर एवं पूर्व की अपेक्षा कम खाली जगह छोड़ना शुभ है। (चित्र न-3)

चित्र न.-3

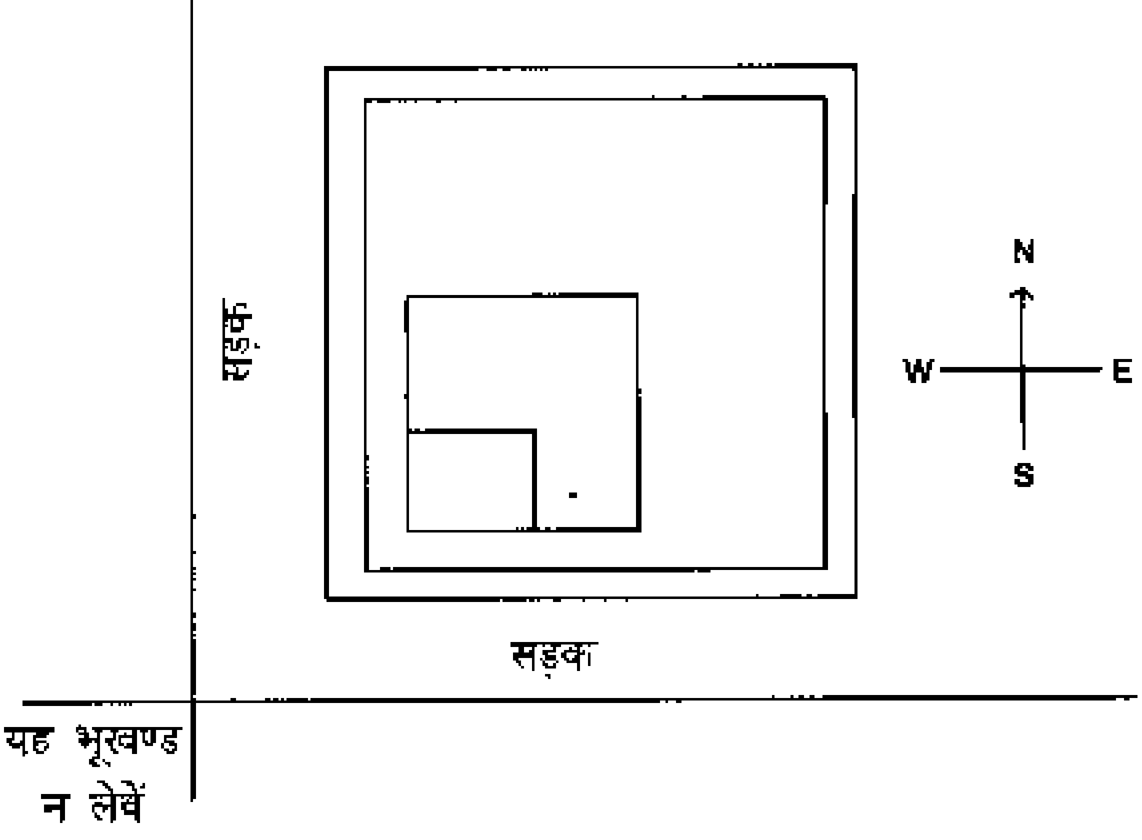

4. दक्षिण में उत्तर की अपेक्षा अधिक रिक्त स्थान छोड़ना महिलाओं के लिए अशुभ तथा अकाल मृत्यु आदि की आशंका का कारण है। जबकि

पश्चिम में पूर्व की अपेक्षा अधिक रिक्त स्थान छोड़ना पुरुषों को ऐसा ही फल देता है। कालांतर में ऐसे मकानों का निर्माण कर्ता उपभोग नहीं कर पाते, अन्य ही उपभोग करते हैं। (चित्र नं-3)

कोण की अपेक्षा

1. किसी भी स्थिति में नैऋत्य कोण काटें नहीं। नैऋत्य कोण ठीक समकोण रहना अत्यंत आवश्यक है। नैऋत्य कोण काटना हानिकारक है।
2. नैऋत्य में समकोण होने पर ईशान कोण में बढ़ाव करना अत्यंत फायदेमंद है।
3. पूरी वास्तु के साथ ही प्रत्येक कमरे में भी नैऋत्य कोण समकोण रहना अत्यंत आवश्यक है अन्यथा दुर्भाग्य को आमंत्रण होगा।
4. यदि नैऋत्य कोण कुछ ऊंचा करा दिया जाता है तथा नैऋत्य कोण किंचित काटा जाता है तो ईशान के बढ़ाव का असर मिलने से शुभ फल दायी होगा।
5. नैऋत्य कोण का बढ़ाव दक्षिण की ओर किया जाने पर महिलाओं को अशुभ होगा। जबकि इसका बढ़ाव पश्चिम की ओर होने पर पुरुष दुख उठायेंगे।
6. नैऋत्य कोण का बढ़ाव नैऋत्य की ओर होने पर शत्रुता, मुकदमेबाजी, कर्ज भार आयेगा।
7. यदि सारे मकानों का ईशान कटा हो क्योंकि सामने उत्तरी या पूर्वी तिरछी सड़क हो तो ऐसे नैऋत्य प्रभाग में हानि नहीं होगी। विपुल धनागम होगा किंतु निवासी धनलोलुपी एवं स्वार्थी होंगे। ऐसे मकानों के निवासी अपराधी वृत्ति के, बहु हत्यारे, मनोभ्रम या सनक के कारण आत्महत्या के करने वाले तथा असाध्य रोग से पीड़ित देखे जाते हैं।

तल की अपेक्षा

1. नैऋत्य का कमरा अन्य कमरों से ऊंचा हो।
2. जितना ईशान का तल नीचा होगा, उतना ही नैऋत्य का तल ऊंचा होना आवश्यक है तभी अत्यंत सुखदायक एवं शुभ होगा।
3. नैऋत्य की अपेक्षा आग्नेय तथा वायव्य नीचा होना चाहिये।

4. नैऋत्य भाग तथा कम्पाउन्ड वाल अन्य भागों से ऊंची रखना चाहिए।
5. दक्षिण, पश्चिम एवं नैऋत्य में चढ़ाव निवासी को वैभवदाता होता है। शांति एवं सुख की प्राप्ति होती है।
6. ईशान से नैऋत्य नीचा हो तथा पानी का बहाव या गड्ढा नैऋत्य की ओर हो तो घातक है। निवासी अपने अक्खड़पन के स्वभाव के कारण हर तरफ दुश्मनी बना लेता है। सर्वप्रकार से हानि होती है।

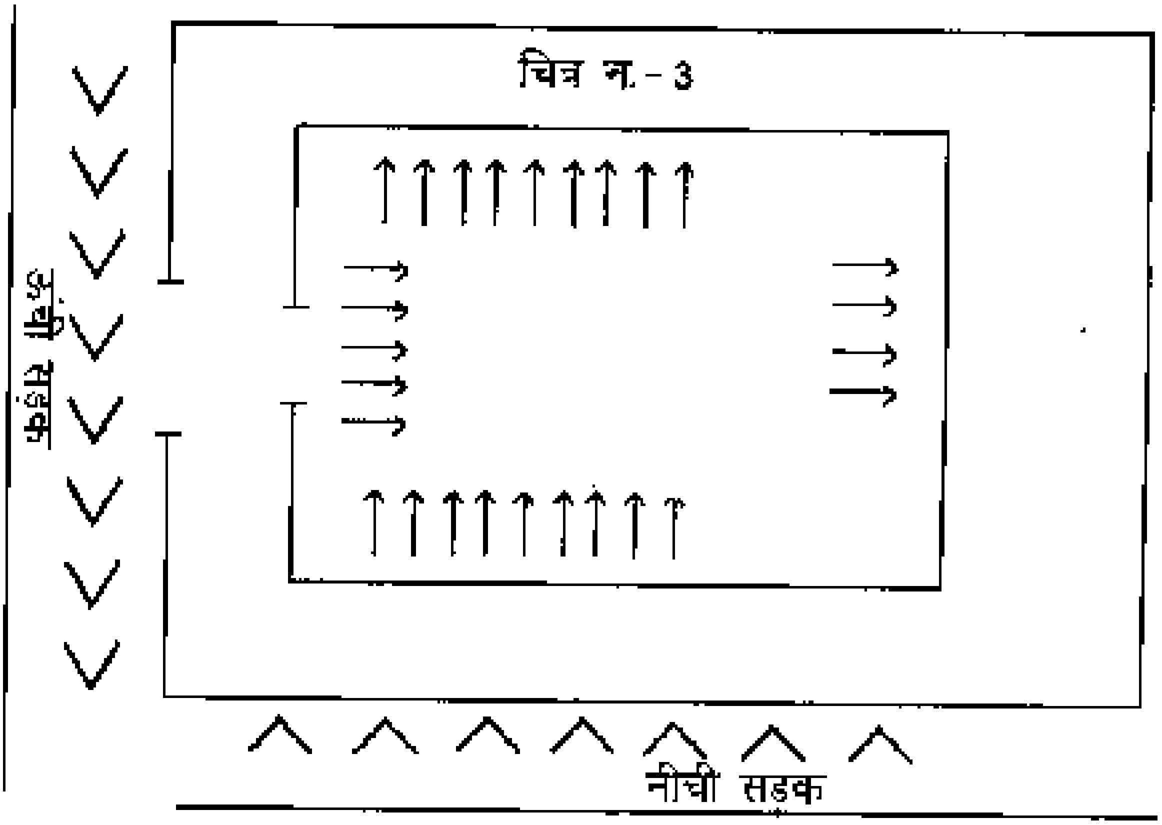

दरवाजे की अपेक्षा

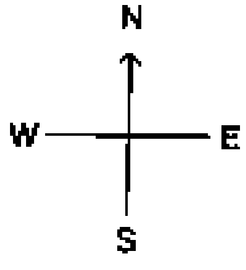

1. दक्षिणी या पश्चिमी नैऋत्य में दरवाजे रखना अत्यंत भीषण परिस्थितियों को निमंत्रण देता है। अपयश, कारावास, दुर्घटना, हृदयाघात, आत्महत्या, पक्षाघात, सरीखे संकटों के आगमन का कारण है। (चित्र न - 5)
2. दक्षिण या पश्चिम में से एक ही तरफ दरवाजा रखें, दोनों तरफ नहीं अन्यथा शत्रुता एवं कर्जभार होगा। अपरिहार्य होने पर उत्तर एवं पूर्व में भी दरवाजा रखें।

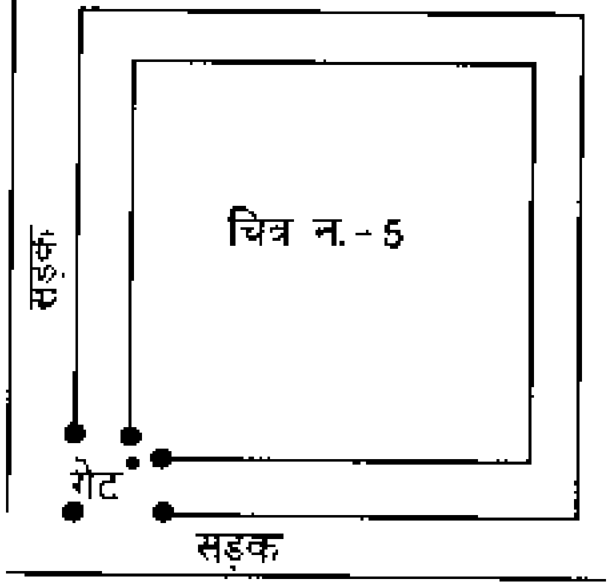

प्रवेश एवं सड़क की अपेक्षा

1. यह ध्यान दें कि पार्श्व सड़क नैऋत्य को न जाती हो।
2. यदि दक्षिणी पार्श्व की सड़क पश्चिमी पार्श्व की सड़क से ऊंची हो तो प्रवेश दक्षिण से रखना उचित है। यदि आग्नेय की तरफ 10 अंश से ज्यादा झुकाव हो तो दक्षिणी आग्नेय में एक गेट कम्पाउन्ड वाल में रखें। निवासी दरवाजे से पूर्ववर्ती आवागमन करें। उत्तर में भी एक दरवाजा रखना जरूरी है।
3. यदि पश्चिमी पार्श्व की सड़क दक्षिणी पार्श्व की सड़क से ऊंची हो तो प्रवेश पश्चिम से रखें। यदि पश्चिमी वायव्य की तरफ 10 अंश से ज्यादा झुकाव हो तो पश्चिमी नैऋत्य में कम्पाउन्ड वाल में एक गेट रखें। उत्तर में एक दरवाजा रखें। उत्तरावर्ती आवागमन करें।

चित्र न. - 6

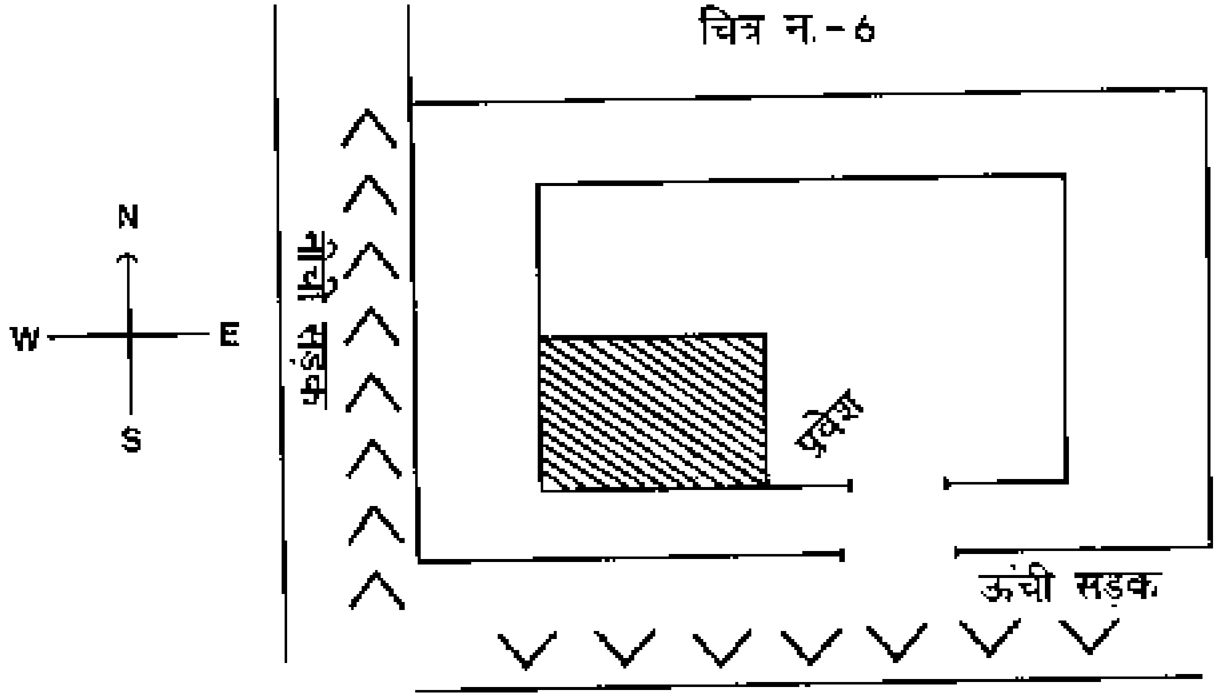

अन्य संकेत

1. नैऋत्य कमरे में स्वामी का शयन कक्ष अथवा शस्त्रागार बनाना शुभ है।
2. नैऋत्य कमरे में भूमिगत टैंक वाला बाथरूम बनाना भीषण संकट का आमंत्रण है।
3. आग्नेय में रसोई कक्ष बनाना असंभव होने पर वायव्य या नैऋत्य कमरे के आग्नेय कोण में बनाएं।
4. नैऋत्य में अन्य भूखण्ड या नाली होने पर कम्पाउन्ड वाल अवश्य बनाएं तथा उससे एक मीटर छोड़कर मकान बनाएं।

5. नैऋत्य में छत अन्य भाग से अधिक ऊंची तथा भारी बनाएं। छत झुकावदार छपरी नहीं होना चाहिये।
6. नैऋत्य में खिड़की न बनाएं। अपरिहार्य होने पर खिड़की उत्तरी ईशान में भी अवश्य बनाना चाहिये।
7. दक्षिण की ओर झुकी छत या छपरी से महिलाओं को कष्ट, पक्षाघात एवं असाध्य रोग की आशंका रहती है। जबकि पश्चिम की ओर झुकी छत से यही दुख पुरुषों को होने की संभावना रहती है।
8. ईशान दिशा में निर्माण खुला एवं हल्का कराएं जबकि दक्षिण एवं नैऋत्य में भारी एवं आच्छादित निर्माण कराना चाहिये।
9. नैऋत्य की कम्पाउन्ड वाल को समकोण बनाकर बाहरी भाग किंचित गोल बना सकते हैं। इसका विस्तार न करें।
10. नैऋत्य में सीढ़ियां शुभफल प्रदाता हैं।
11. नैऋत्य का चबूतरा घर के तल से ऊंचा होने पर घर की महिलाओं को आर्थिक सुदृढ़ता की प्राप्ति होती है।
12. नैऋत्य में बाहरी कमरा या सेवक गृह बनाना शुभ फल प्रदाता है।
13. नैऋत्य के ऊंचे वृक्ष काटना अत्यंत अशुभ है। पत्थरों का ढेर एवं ऊंचे वृक्ष नैऋत्य में रहना शुभ है।
14. दक्षिणी नैऋत्य में मार्गारम्भ तथा कुंआ हो तो महिलाओं को असाध्य रोग, आत्महत्या, अकाल मृत्यु की आशंका रहेगी। जबकि पश्चिमी नैऋत्य से मार्गारम्भ एवं कुंआ होने पर यह आशंका पुरुषों के लिए रहेगी।

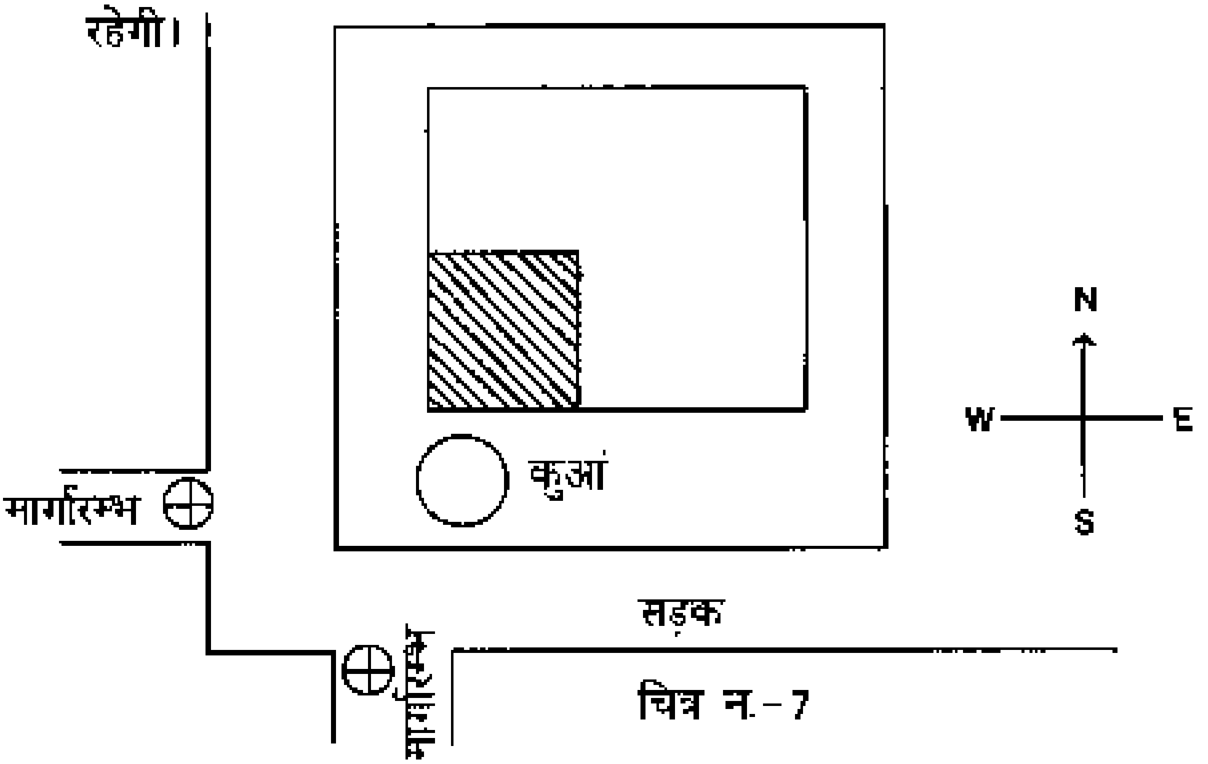

चित्र न.- 7

पश्चिम भूखण्ड
Western Block

ऐसे भूखण्ड जिनके सिर्फ पश्चिमी पार्श्व में सड़क हो वे भूखण्ड पश्चिम भूखण्ड कहलाते हैं। ऐसे भूखण्डों का विशिष्ट प्रभाव संतति अर्थात् पुत्रों पर देखा जाता है। ऐसे भूखण्ड के धारकों को निम्नलिखित विशिष्टताओं को ध्यान में रखना अत्यंत आवश्यक है ताकि विपरीत प्रभाव से सुरक्षा हो तथा स्वतः के लिए हितकारी परिणामों की प्राप्ति हो। (चित्र प-1)

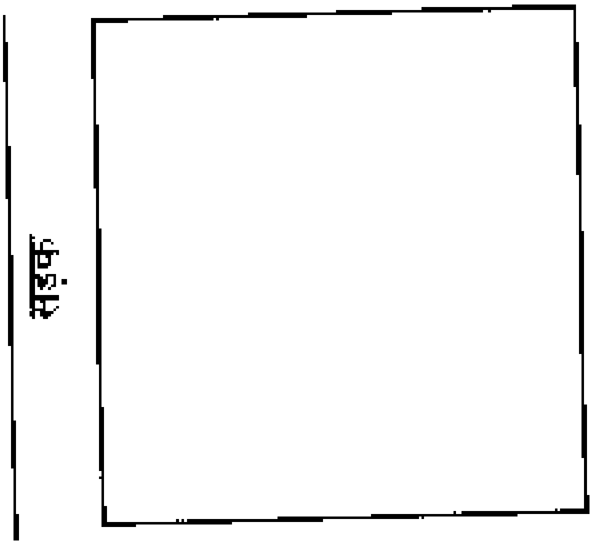

चित्र प.-1

प्रवेश एवं दरवाजे की अपेक्षा

1. यदि पश्चिम में प्रमुख द्वार हो तथा उत्तर में रिक्त भूखण्ड हो तो उत्तरी ईशान में पृथक गेट लगवाना चाहिये।
2. यदि मध्य की अंतराल दीवार तोड़ना हो तो पश्चिमी वायव्य में पश्चिम मुखी पृथक गेट लगाएं।
3. कम्पाउन्ड वाल मुख्य प्रवेश से ऊंची या नीची इच्छानुसार रख सकते हैं।
4. निर्माण कार्य पश्चिम की ओर से आरम्भ करें। यह शुभ फलदायी है।
5. एकदम पश्चिम में मुख्य द्वार या दरवाजा शुभ परिणाम देता है।
6. पश्चिम की कम्पाउन्ड वाल पूर्व की अपेक्षा ऊंची रखना शुभ है।
7. पश्चिम का दरवाजा वायव्य की ओर होने पर मुकदमे बाजी, शत्रुता, अपयश, धनहानि इत्यादि संताप होते हैं।
8. पश्चिम के दरवाजे का मुख नैऋत्य में होने पर दीर्घ रोग, अकालमृत्यु तथा आर्थिक क्षति होने की आशंका रहती है।

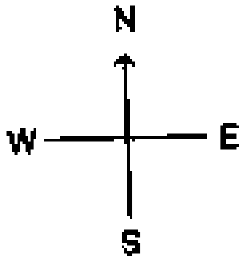

रिक्त स्थान की अपेक्षा

1. पश्चिम में पूर्व की अपेक्षा अधिक खुला भाग रखने पर पुत्रों को कष्ट एवं हानि का संताप होगा। (चित्र प-2)
2. पश्चिमी खाली भाग पूर्व की अपेक्षा नीचा होने पर अशुभ एवं हानिकारक होगा।

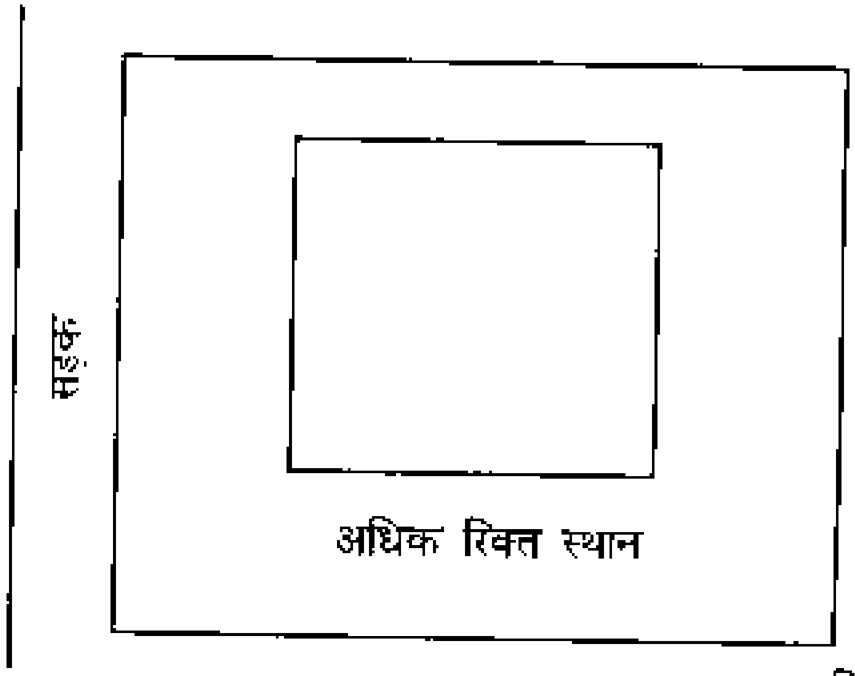

चित्र प.-2

निर्माण की अपेक्षा

1. पश्चिम में पोर्टिको छत को बढ़ाकर बनाएं। झुकावदार छपरी न बनाएं।
2. पश्चिमी मकान का भाग पूर्व की अपेक्षा नीचा होने पर अशुभ है।
3. पश्चिम में पोर्टिको आवश्यक होने पर बिना खंभे का बनाएं। यदि पिलर बनाना ही पड़े तो फर्शतल से नीचा न हो।
4. बालकनी में झुकावदार छपरी बनाएं।

चबूतरे की अपेक्षा

1. पश्चिम में चबूतरे अनिवार्य होने पर इससे नीचे तल पर पूर्व में चबूतरा बनाएं तथा इस पर झुकावदार छपरी बनाएं।
2. यदि पश्चिमी चबूतरा खुला हो तो एक मीटर ऊंची दीवाल घर की अन्य दीवालों जितनी ऊंची अवश्य ही बनाएं, ताकि निवासियों का आना जाना पूर्व एवं पश्चिम की ओर हो, नैऋत्य एवं वायव्य की ओर न हो।

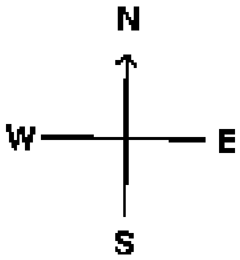

3. पश्चिम में चबूतरा फर्श से ऊंचा होने पर यश, नाम, प्रगति की प्राप्ति होती है।
4. पश्चिमी भाग में चबूतरा पूर्व भाग से नीचा होने पर अशुभ है।

अन्य संकेत

1. पश्चिम में घने ऊंचे वृक्ष शुभ फलदायी होंगे।
2. बाहरी कमरा या सेवक आवास गृह मुख्य मकान से नीचा होने पर अपयश तथा आर्थिक क्षति का संकट आता है।
3. पश्चिमी वायव्य में मार्गारम्भ होने पर उत्तर का भूखण्ड कभी न खरीदें।
4. पूर्व का भूखण्ड खरीदना हो तो बीच की दीवार गिरा दें अथवा पूर्वी ईशान में गेट निकालें।
5. अपने नाम से पश्चिम का भूखण्ड कभी न खरीदें। अपरिहार्य होने पर मकान खाली कर अन्य के नाम कर बाद में भूखण्ड लें। पश्चात मकान को गिरा कर नया मकान पश्चिम की ओर से प्रारम्भ करके बनाएं। अब मकान पुनः मूल स्वामी के नाम करा लेवें।

वायव्य भूखण्ड
North Western Block

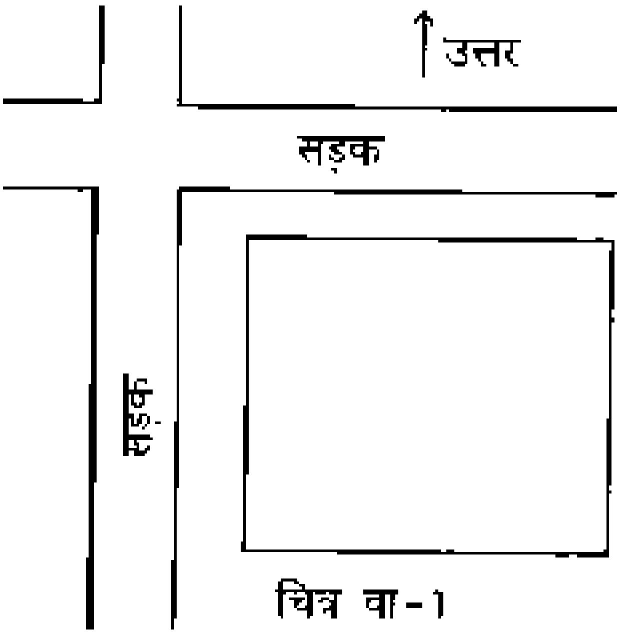

चित्र वा-1

जिस भूखण्ड में पश्चिम एवं उत्तरी पार्श्व में सड़क होती है उन्हें वायव्य भूखण्ड की संज्ञा दी जाती है। इनका विशेष प्रभाव परिवार की महिला सदस्यों तथा तीसरी संतान पर पड़ता है। धनागम का विशेष प्रभाव इस प्रभाग की विशेषता है। इस भूखण्ड में सही वास्तु का निर्माण स्वामी को धनपति बनाता है तो गलत निर्माण धनहीन कर दिवालियापन की स्थिति में ला पटकता है। ऐसे भूखण्ड का विशेष प्रभाव मित्रता-शत्रुता, सफलता-असफलता, मुकदमे की हार-जीत पर पड़ता है। निवासी गृह त्यागी, साधु संन्यासी, दार्शनिक, तपस्वी तक बन जाता है। ऐसे भूखण्ड वास्तु महत्त्व की श्रेणी में तीसरा स्थान रखते हैं। ऐसे प्रभाग में वास्तु निर्माण में निम्नलिखित संकेतों को ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है ताकि अशुभ प्रभावों से बचत भी हो सके तथा शुभ प्रभावों का प्रभावपूर्व लाभ भी प्राप्त हो सके।

प्रवेश की अपेक्षा

1. यदि उत्तर में मुख्य प्रवेश रखा जाये तथा उत्तरी वायव्य में गेट रखा जाये तो यह शुभ नहीं है। (चित्र वा-2)

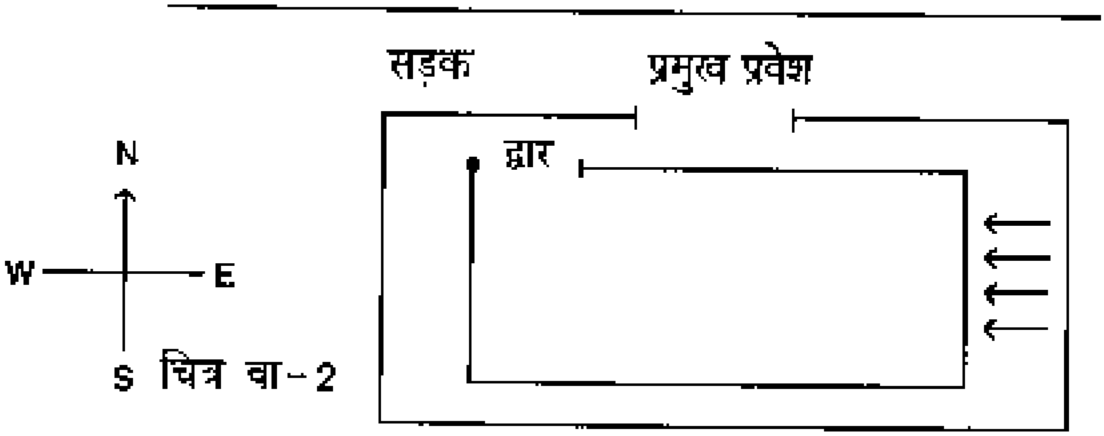

चित्र वा-2

2. यदि उत्तर में मुख्य प्रवेश हो तथा पूर्व की ओर से निर्माण कार्य आरम्भ किया जाये एवं दक्षिण मे उत्तर से अधिक रिक्त स्थान रखा जाये तो इससे पैतृक संपत्ति के स्वामित्व में निरन्तर परिवर्तन होते हैं तथा परेशानियां आती हैं।

3. यदि उत्तर में मुख्य प्रवेश हो, पूर्वी सीमा से निर्माण कार्य प्रारम्भ किया जाये तथा पश्चिमी नैऋत्य में दरवाजा हो तो निरन्तर अस्थिरता के साथ लगातार व्यापार में घाटा होता है, अंततः प्रबन्धन में परिवर्तन की स्थिति बन जाती है। (चित्र वा-3)

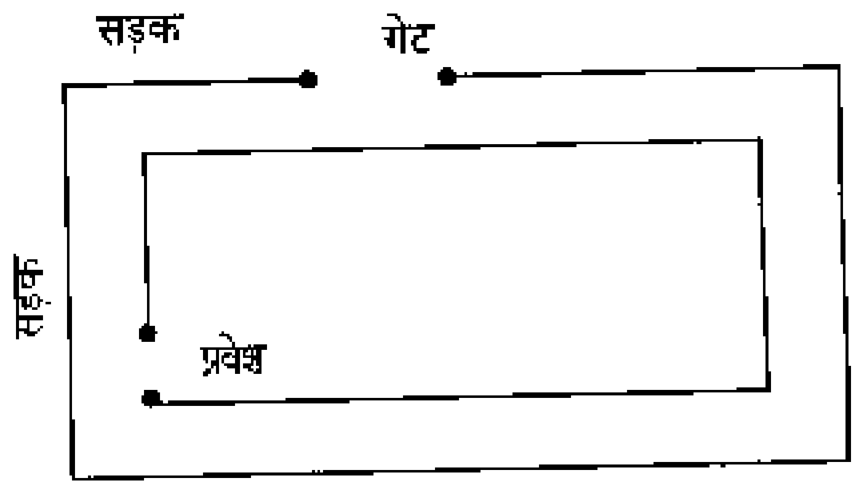

चित्र वा-3

4. उत्तर में मुख्य प्रवेश हो, आग्नेय में बढ़ाव हो वायव्य में भी बढ़ाव हो तथा दक्षिण एवं पश्चिम दिशाओं में दरवाजे हों तो पारिवारिक वैमनस्य, पति-पत्नी, सास-बहू, पिता-पुत्र में मतभेद, घर में कलह, अशांति, अग्निभय, मृत्युभय का दुख भोगना पड़ता है।

5. मुख्य प्रवेश उत्तर में हो तथा पूर्वी सीमा से निर्माण कार्य आरम्भ हो तथा पूर्वी दीवालें अनियमित आकार की हों तो संतान अपाहित होने का दुख होगा।

6. यदि मुख्य प्रवेश उत्तर में ही रखना हो तो मकान पूर्वी पार्श्व के समकक्ष बनाएं, कम न बनाएं।

7. पश्चिम में मुख्य प्रवेश होने पर यदि उत्तरी एवं पूर्वी सीमाओं से निर्माण कार्य आरम्भ किया जाए तो निवासी कर्जदार होंगे तथा मकान नीलाम होने की भी नौबत आ सकती है। (चित्र वा-4)

8. यदि मुख्य प्रवेश पश्चिम की तरफ हो तथा पूर्वी पार्श्व से निर्माण आरम्भ किया गया हो एवं पश्चिम की ओर झुकावदार छपरी अथवा प्रथम मंजिल का तल हो तो पुरुष सदस्यों को पक्षाघात रोग की संभावना रहेगी। यदि इसी प्रकार मुख्य प्रवेश पश्चिम की ओर हो किन्तु निर्माणारम्भ उत्तरी पार्श्व से हो एवं दक्षिण की ओर झुकावदार छपरी या प्रथम मंजिल तल हो तो स्त्री सदस्यों को पक्षाघात रोग होने की संभावना होती है।

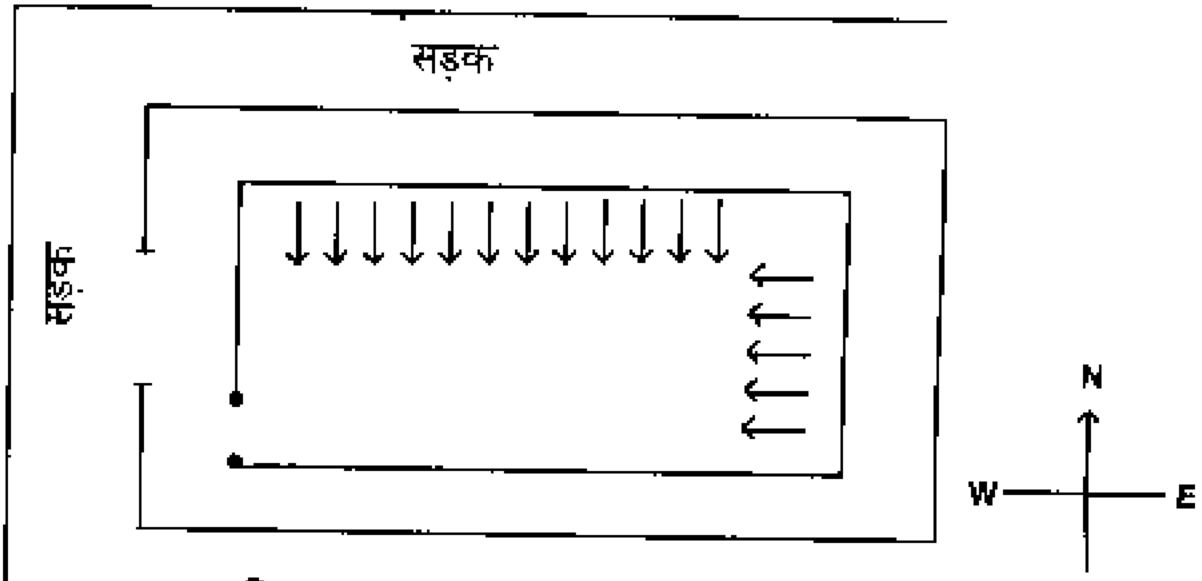

चित्र वा - 4

9. यदि मुख्य प्रवेश पश्चिम से हो तथा पूर्व एवं उत्तर में पश्चिम एवं दक्षिण की अपेक्षा अधिक खाली जगह हो तथा रसोई आग्नेय में होने के साथ ही साथ पूर्वी एवं उत्तरी कम्पाउंड वाल में कोई निर्माण न किया गया हो तो निवासी बुद्धिमान, धनसम्पन्न, न्याय प्रिय, सदाचारी नागरिक होंगे।

10. यदि पश्चिमी पार्श्व की सड़क उत्तरी सड़क से नीची हो तो मकान का मुख उत्तर में रखें। किन्तु यदि उत्तरी वायव्य की ओर 10° से अधिक झुकाव हो तो मुख्य प्रवेश पूर्व में रखकर कम्पाउन्ड वाल का गेट उत्तरी ईशान में रखें तथा उत्तर में एक पृथक दरवाजा रखें। यह शुभफलदायी होगा।

11. यदि पश्चिम में मुख्य प्रवेश हो तथा पश्चिमी पार्श्व की सड़क बढ़कर उत्तरी ईशान को जाती हो तो यह मकान अति शुभफलदायी सिद्ध होगा। (चित्र वा-5)

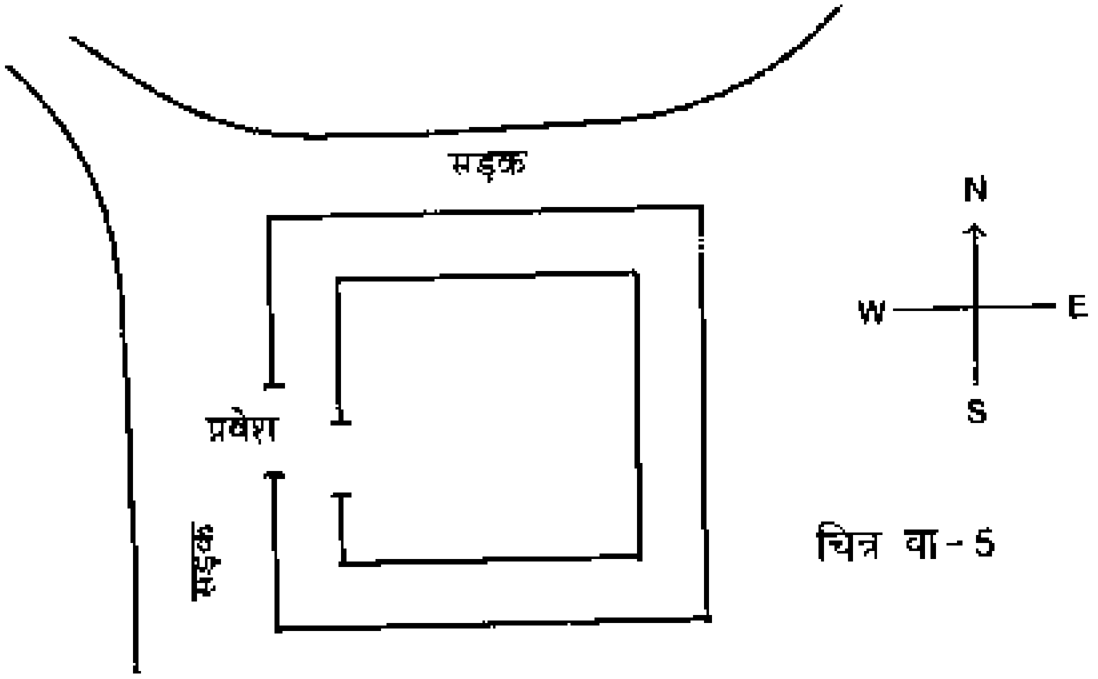

चित्र वा-5

मार्गारम्भ की अपेक्षा

1. पश्चिमी वायव्य में मार्गारम्भ होने से नाम एवं ख्याति की प्राप्ति होती है।
2. उत्तरी वायव्य में मार्गारम्भ होने से महिलाओं को रोग होते हैं।

विस्तार की अपेक्षा

1. वायव्य में किंचित विस्तार अच्छा है यदि उसका आकार वर्गाकार या आयताकार हो। नैऋत्य से वायव्य की ओर कोणात्मक विस्तार न हो।
2. प्राकृतिक रूप से वायव्य कुछ कटा हो तो शुभ है।
3. उत्तरी वायव्य में विस्तार होने से मुकदमे बाजी, डकैती, अग्नि दुर्घटना, मानसिक चिन्ता तथा पुरुष वंश का ह्रास होता है। (चित्र वा-6)
4. यदि उत्तरी वायव्य में विस्तार हो अथवा वायव्य में कुंआ या गड्ढा हो या वायव्य में चढ़ाव हो या बंद कर दिया हो तो दिवालियापन की स्थिति आ सकती है। (चित्र वा-6)
5. वायव्य में विस्तार हो या वायव्य बन्द कर दिया गया हो तो मानसिक असंतुलन, सनकीपन तथा आत्महत्या की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।

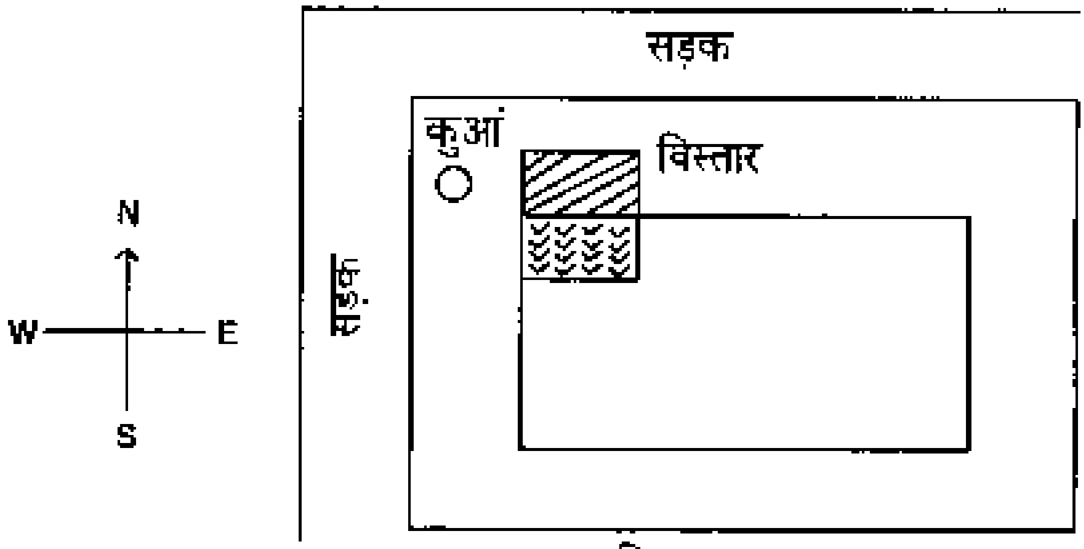

चित्र वा-6

6. वायव्य में विस्तार या वायव्य को बन्द करने के साथ उत्तरी पार्श्व की सड़क के वायव्य से ईशान की ओर जाने से उत्तरी ईशान में कटाव होगा। इसके प्रभाव से धनागम तो होगा किन्तु स्त्री प्रामुख्यता एवं मानसिक चिंता तथा असंतुलन बना रहेगा। (चित्र वा-7)

चबूतरे की अपेक्षा

1. उत्तर में चबूतरा फर्शतल से ऊंचा होने पर दीर्घ असाध्यरोग तथा पुरुषों पर कर्ज का बोझ चढ़ने की स्थिति निर्माण होगी।
2. वायव्य का चबूतरा उत्तर एवं दक्षिण में ग्रिल से ढंका हो तो ग्रिल की आधार दीवाल अन्य दीवालों के समकक्ष रखें, कम बिल्कुल न रखें अन्यथा उत्तरी एवं पश्चिमी वायव्य में विस्तार का परिणाम दृष्टिगोचर होगा जो कि प्रतिकूल है।
3. ईशान की अपेक्षा वायव्य का चबूतरा एवं फर्शतल निम्न तल पर हो तो शत्रुता, स्त्रीरोग तथा अनपेक्षित भय का सामना करना पड़ेगा।

तल एवं कोण की अपेक्षा

1. नैऋत्य से वायव्य भाग नीचा रखें।
2. आग्नेय से ईशान भाग नीचा रखें। (चित्र वा-8)
3. कम्पाउन्ड वाल का वायव्य कोना गोल या कोणाकार बना सकते हैं।
4. वायव्य कोण में सुधार आदि काम वास्तु नियमानुसार ही करें अन्यथा अनपेक्षित घटनाओं का आगमन हो सकता है।
5. वायव्य भाग ईशान से ऊंचा किन्तु आग्नेय से नीचा हो। (चित्र वा-8)

6. आग्नेय कोण से वायव्य कोण की दूरी की अपेक्षा ईशान से नैऋत्य कोण की दूरी अधिक होना अशुभ है। अग्नि भय का संकट बना रहेगा।

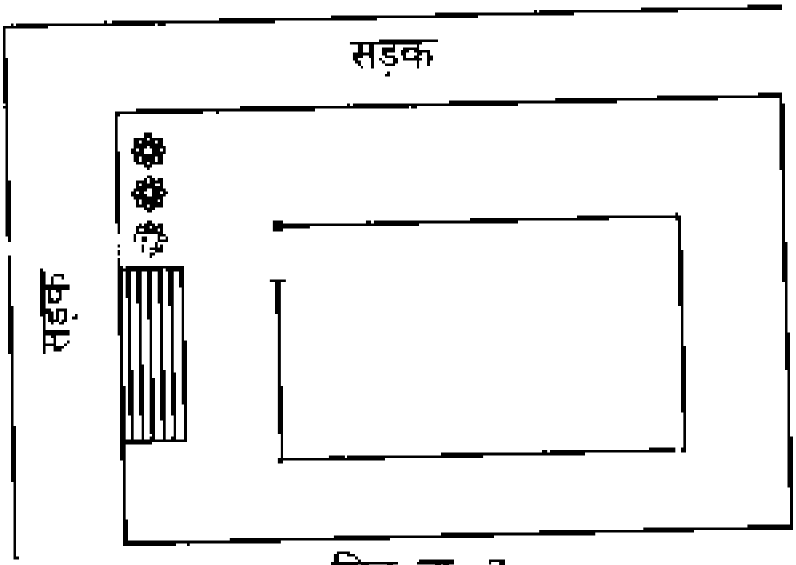

चित्र वा–7

अन्य संकेत

1. यदि वायव्य बंद कर दिया हो तथा उत्तर में खाली जगह न छोड़ते हुए उत्तरी दीवाल से निर्माण कार्य प्रारम्भ किया गया हो तो स्वामी, महिलाएं एवं तृतीय संतान को कष्ट होगा। अशुभ घटनाएं होंगी।
2. वायव्य में रसोई होने पर अतिथियों की संख्या में अतिवृद्धि होने से व्यय में अनपेक्षित वृद्धि होगी।
3. पश्चिम में शौचालय एवं स्नानागार होने पर जल का भूमिगत टैंक या कोई भी गड्ढा मध्य उत्तर में होना उचित है।
4. पशुशाला यदि पश्चिम में बनाएं तो उत्तरी कम्पाउन्ड वाल से लगकर बनाने के बजाय पश्चिमी कम्पाउन्ड वाल से लगकर बनाना अनुकूल है।

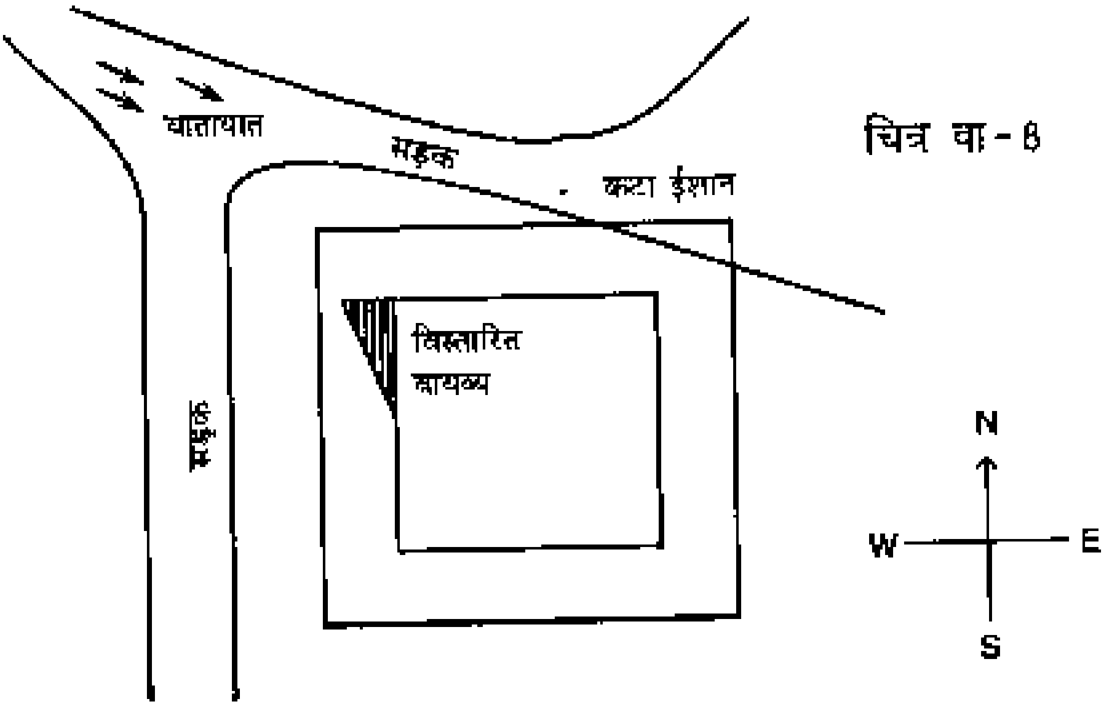

चित्र वा - 8

5. ऊंचे फलदार वृक्ष पश्चिम या वायव्य में लगा सकते हैं।
6. उत्तरी वायव्य में फुलवारी लगा सकते हैं। (चित्र वा-8)
7. पश्चिमी वायव्य की ओर से आवागमन शुभ है। वायव्य से आग्नेय की ओर का आवागमन महाअशुभ है।
8. यदि नैऋत्य में सीढ़ी हो तो शुभ है।

उत्तरी भूखण्ड
Northern Block

ऐसे भूखण्ड जिनमें मात्र उत्तर दिशा में ही सड़क होती है उत्तर भूखण्ड कहे जाते हैं। ऐसे भूखण्डों के विषय में निम्नलिखित विशिष्ट स्मरणीय निर्देशों का अनुपालन स्वामी के लिए हितकारक होगा। वास्तु विज्ञान में ऐसे भूखण्ड उत्तम माने जाते हैं तथा इनका प्रमुख प्रभाव नारी सदस्यों एवं अर्थव्यवस्था पर प्रत्यक्ष पड़ता है।

निम्न बातें ध्यान देने योग्य हैं–

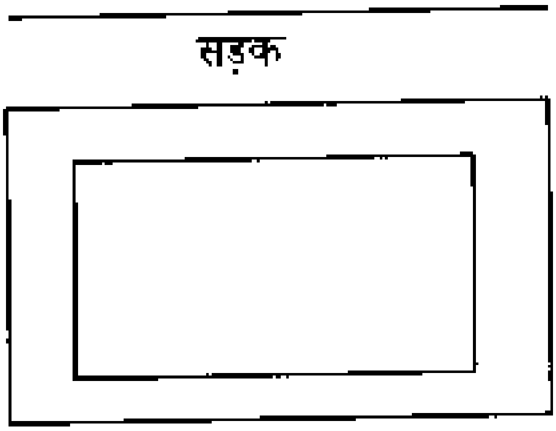

चित्र उ-1

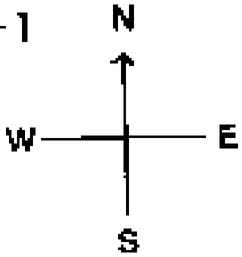

रिक्त स्थानों की अपेक्षा

1. यदि निर्माण कार्य उत्तर से प्रारम्भ करें तथा दक्षिण में अधिक रिक्त स्थान हो तो यह विनाश का कारण होता है तथा मकान का स्वामित्व बदलने की स्थिति आ जाती है। (चित्र उ-2)
2. यदि भूखण्ड के पूर्व में रिक्त स्थान के साथ ही अन्य निर्माण वास्तु नियमानुकूल हो तो सर्वशुभ होता है, कार्यों के सुपरिणाम मिलते हैं।
3. उत्तर में दक्षिण की अपेक्षा रिक्त स्थान होने पर सर्व सुख प्राप्त होते हैं।

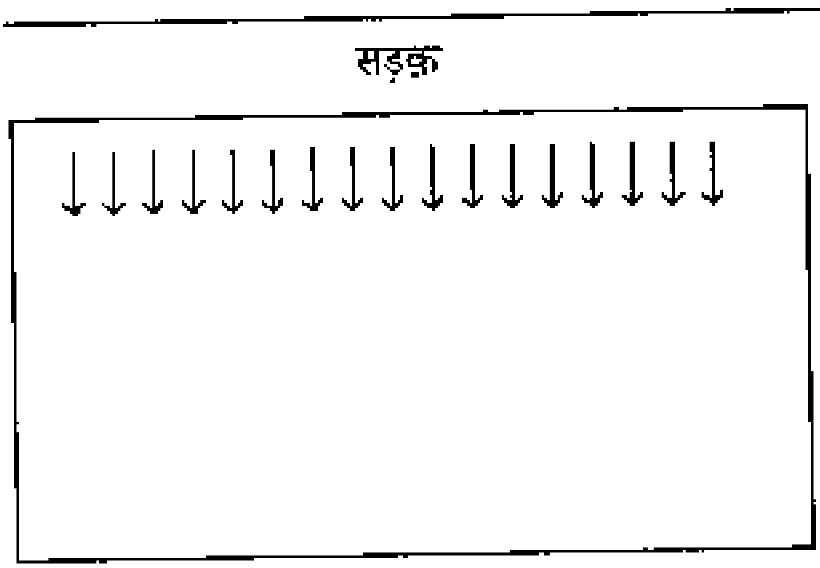

चित्र उ-2

4. उत्तर में रिक्त भूमि क्रय करके प्राप्त होती हो तो अवश्य ही खरीद लेवें। इससे सभी सुख संपदाओं का आगम होता है।
5. उत्तर में अधिक रिक्त स्थान सर्वांगीण प्रगति व पीढ़ियों तक वैभव संपदा को देता है।

प्रवेश एवं दरवाजे की अपेक्षा ध्यातव्य बातें

1. उत्तर से प्रमुख प्रवेश होने पर प्रवेश द्वार कम्पाउन्ड वाल से ऊंचा हो। (चित्र उ-3)
2. उत्तर में दरवाजा शुभफलदायी है। (चित्र उ-3)
3. ईशान में दरवाजा बुद्धिमत्ता, बुद्धिमान संतति तथा प्रगति को देने वाला है। (चित्र उ-4)
4. वायव्य में दरवाजे होने से चौरभय एवं अग्निभय की संभावना रहती है।

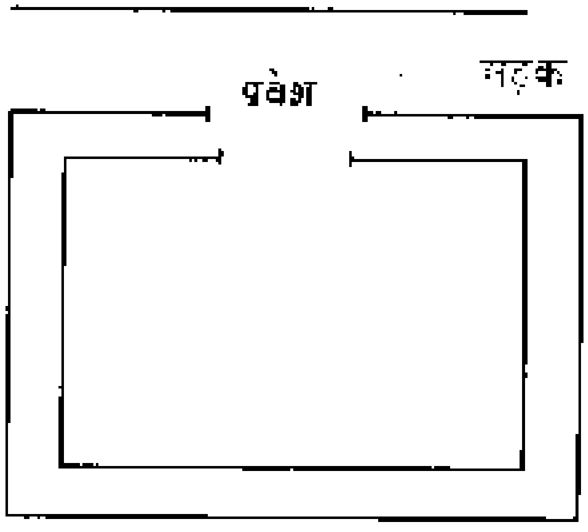

चित्र उ-3

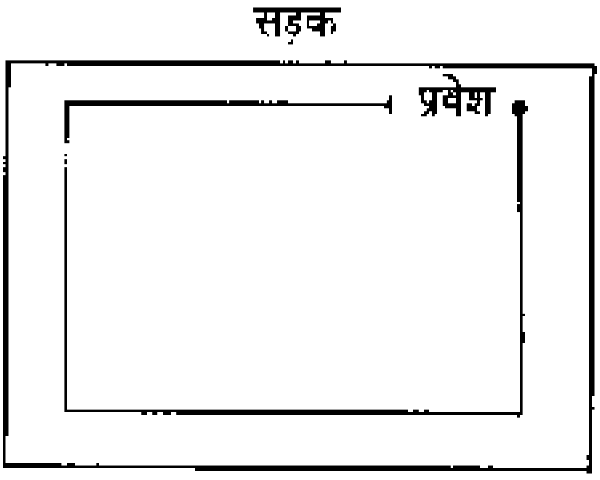

चित्र उ-4

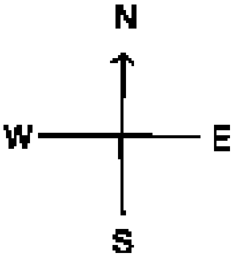

चबूतरा एवं तल

1. उत्तर के कमरे का तल, विस्तार, अपेक्षाकृत कम ऊंचा रखना लाभदायक है।
2. यदि भूतल एवं चबूतरा, मकान के फर्श तल से नीचे हो तो धनागम तथा स्त्री सुख होता है।
3. यदि उत्तर भाग का चबूतरा फर्शतल से ऊंचा हो तो अधिक खर्च, मानसिक असंतुलन तथा कर्जभार होता है।

निर्माण की अपेक्षा

1. उत्तरी भाग की कम्पाउन्ड वाल का निर्माण सबसे अंत में पूरा मकान बन जाने के बाद कराना चाहिये।
2. उत्तर एवं पूर्व में दो-दो फुट की बालकनी रखें। दक्षिण एवं पश्चिम में खाली जगह न रखें।
3. उत्तर में झुकावदार छपरी रखने से महिलाओं को सुख होता है।
4. झुकावदार छपरी की ऊंचाई दक्षिण में उत्तर से अधिक रखें।

किराये की अपेक्षा

1. मकान किराये से देना हो तो पूर्वी आग्नेय, दक्षिणी आग्नेय, दक्षिणी नैऋत्य, पश्चिमी नैऋत्य तथा उत्तरी वायव्य भाग देवें। (चित्र उ-5)
2. किराये से देने योग्य उपरोक्त भागों को खाली न रखें। खाली होने पर दूसरा किरायेदार रखें। अन्यथा मकान मालिक को भयंकर हानि की आशंका होगी।
3. यदि उत्तरी पार्श्व का पड़ोसी अपनी उत्तरी कम्पाउन्ड वाल से लगकर निर्माण आरम्भ करता है तो एक छोटी कम्पाउन्ड वाल अतिरिक्त बनाएं जो कि 4 फुट ऊंची 4 इंच चौड़ी हो व पिछली कम्पाउन्ड वाल से 3 इंच दूर हो।

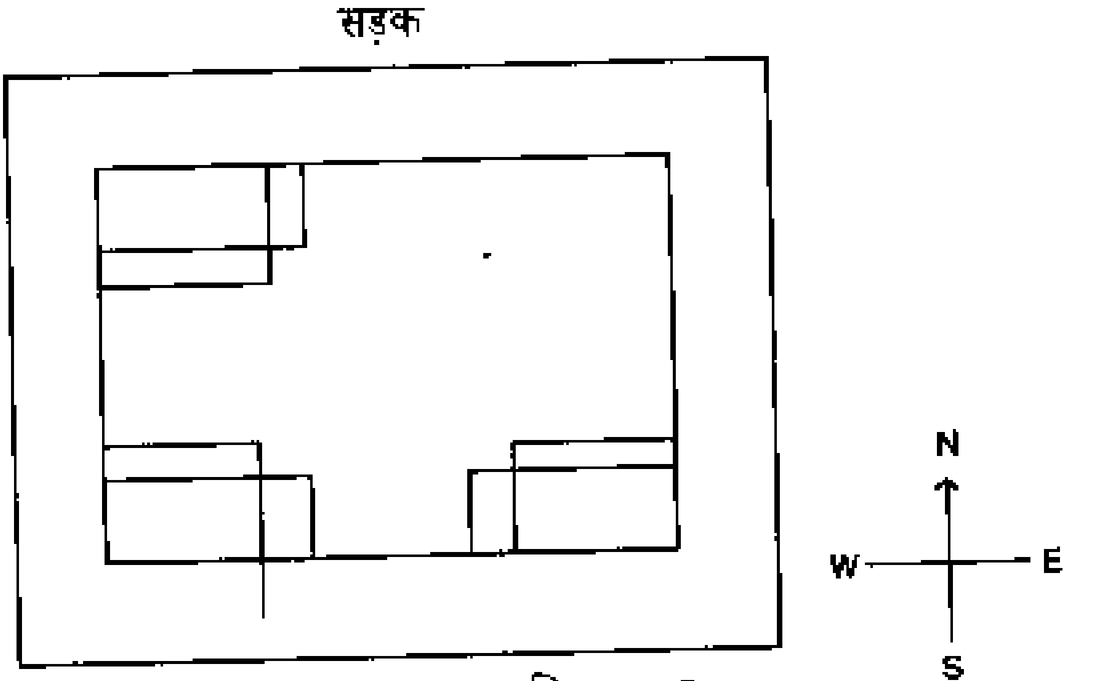

चित्र उ-5

शिल्पकार के सहायक उपकरण

वास्तु निर्माण कार्य करने वाले शिल्पकर्मी को अपनी कला में निपुण होना चाहिए। साथ ही सामग्री का उचित आकलन करने की क्षमता उसमें होनी चाहिए, कितना चूना, सीमेन्ट, लकड़ी, लोहा, पाषाण इत्यादि लगेगा। इसका आकलन इस प्रकार होना चाहिए कि निर्मित वास्तु उपयोगी, मनोरम एवं शक्तिमान हो। सामग्री न तो बीच में कम पड़े, न ही व्यर्थ फेंकी जाए।

शिल्पकार को उपयोग में आने वाले आठ दृष्टि सूत्रों का विवरण शास्त्रकारों ने इस प्रकार बताया है—

सूत्राष्टकं दृष्टि नृ हस्त मौञ्जं, कार्पासकं स्यादवलम्बसञ्ज्ञम्।
काष्ठं च सृष्टयाख्यमतौ विलेख्य मित्यष्टसूत्राणि वदन्ति तज्ज्ञाः।।

सूत्र को जानने वालों ने आठ प्रकार के सूत्र माने हैं—

1. दृष्टि सूत्र—मनुष्य की नेत्र दृष्टि को दृष्टि सूत्र कहते हैं।

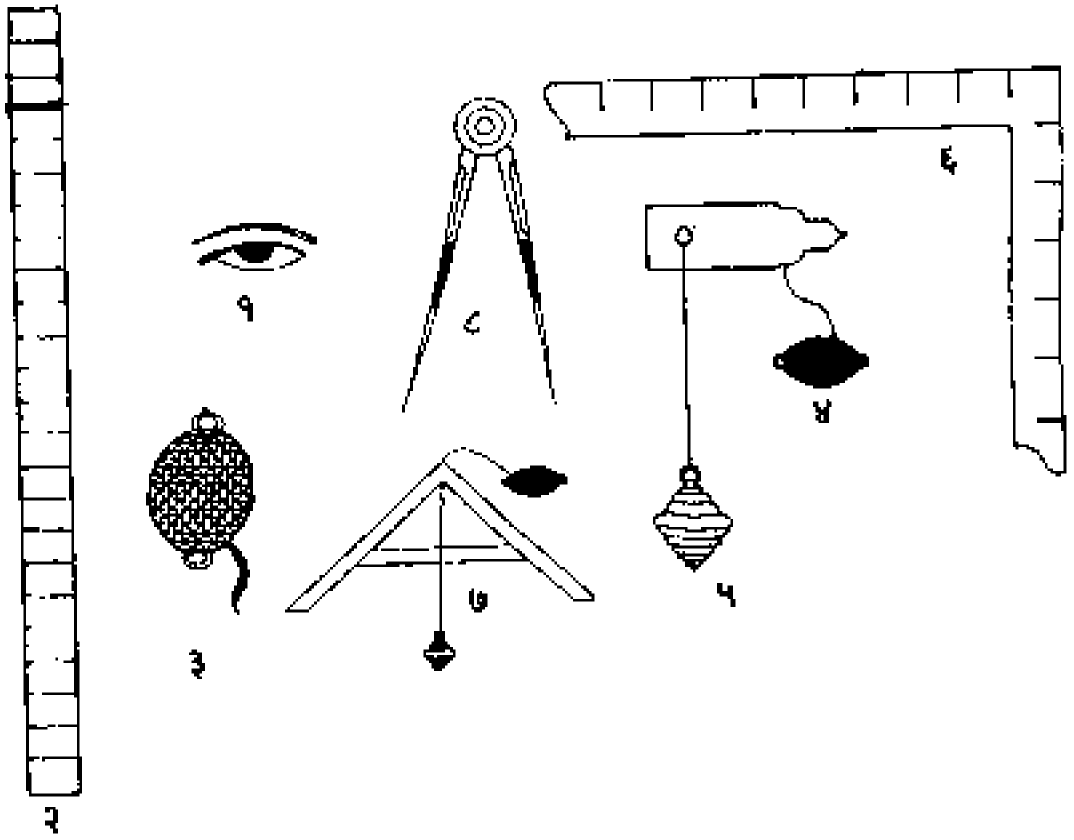

2. गज (हाथ)
3. मूंज की डोरी
4. सूत की डोरी
5. अवलम्ब (भौंरा सरीखी गोल भारी आकृति जो धागे में लटकाकर ऊंचाई की सीध देखते हैं)
6. गुनिया (काठकोना)
7. साधनी (लेवल)-ऊंचाई व समतल नापने का उपकरण
8. विलेख्य (प्रकार-परकार)

गज का स्वरूप समरांगण सूत्रधार में इस प्रकार किया गया है-

पव्वंगुलि चउवीसहिं छत्तीसिं करंगुलेहि कंबिआ।
अट्ठेहिं जवमज्झेहिं पव्वंगुलु इक्कु जाणेह।।

– वास्तुसार प्र. 1 गा. 49

चौबीस पर्व अंगुलियों या छत्तीस कर अंगुलियों का एक कम्बिआ होता है। आठ यवोदर का एक पर्व अंगुल होता है।

(कम्बिआ का मान 24 इंच = 1 गज के मान से लेवें।)
आठ यवोदर का एक अंगुल ऐसे चौबीस अंगुल का एक गज - ज्येष्ठ गज
सात यवोदर का एक अंगुल ऐसे चौबीस अंगुल का एक गज - मध्यम गज
छह यवोदर का एक अंगुल ऐसे चौबीस अंगुल का एक गज - कनिष्ठ गज

वर्तमान में छत्तीस इंच का एक गज माना जाता है तथा इसे ही मानकर सामान्यत: नाप किया जाता है। आधुनिक युग में सारे विश्व में दो ही प्रणालियां प्रामाणिक हैं-

1. ब्रिटिश प्रणाली-इसमें मूल पैमाना फुट है जो 12 इंच में बांटा जाता है। इसके अनुरूप

3 फुट = 1 गज
220 गज = 1 फर्लांग
8 फर्लांग = 1 मील नाप लिया जाता है।

2. मेट्रिक प्रणाली-इसका मूल नाप मीटर है जो 100 सेन्टीमीटर में बांटा जाता है।

10 मि.मी. = 1 से.मी.
100 से.मी. = 1 मीटर
1000 मीटर = 1 किलोमीटर

दोनों प्रणालियों का आपस में परिवर्तनयी मान इस प्रकार है--

1 गज	=	91.44 से.मी. मान होता है।
अथवा 1 इंच	=	2.54 से.मी.
1 फुट	=	30.48 से.मी.

वैज्ञानिक कार्यों में भी इसी प्रणाली का उपयोग किया जाता है। भारत सहित अधिकांश देशों में इसे ही प्रयुक्त किया जाता है।

आधुनिक काल में शिल्पकार अपने साथ मीटर, टेप, गुनिया, स्प्रिट लेवल, मैग्नेटिक कम्पास इत्यादि उपकरण रखते हैं। ये उपकरण मानचित्र के निर्माण से प्रारंभ कर वास्तु निर्माण तक यथावसर प्रयुक्त किये जाते हैं। बिना समुचित उपकरणों के, मात्र अनुमान से निर्मित की गई वास्तु न तो आकर्षक बन पाती है, न ही उपयोगी। अतएव निर्माता को चाहिए कि वह सक्षम शिल्पकार को वास्तु निर्माण के कार्य में लगाये।

द्वार – प्रकरण
Chapter of Gates and Doors

वास्तु निर्माण करते समय सभी भागों का अपना-अपना महत्त्व होता है। अन्य अंगों की भांति दरवाजा या द्वार बनाते समय भी दिशाओं का विचार करना सुफल प्राप्ति के लिए आवश्यक है। निर्माण में दरवाजे एवं खिड़कियां यदि विधि अनुसार सही दिशा में लगाई जाएंगी तो सुफलदायक निश्चित ही होंगी। जैन वास्तु शास्त्रकारों के मत से आवश्यकतानुसार चारों ही दिशाओं में इन्हें लगाया जा सकता है। किन्तु उनके स्थान का निर्धारण आवश्यक है।

पुव्वाइ विजयबारं जमबारं दाहिणाइ नायव्वं।
अवरेण मयरबारं कुबेरबारं उईचीए।।
नामसमं फलमेसिं बारं न कयावि दाहिणे कुज्जा।
जइं होइ कारणेणं ताउ चउदिसि अट्ठभाग कायव्वा।।
सुह बार अंसमज्झे चउसुं पि दिसासु अट्ठभागासु।
चउ तिय दुन्नि छ पण तिय पण तिय पुव्वाइ सुकम्मेण।।

– वास्तुसार प्र. 1 गा. 109 से 111

पूर्वदिशा के द्वार को विजय द्वार, दक्षिण द्वार को यम द्वार, पश्चिम द्वार को मकर द्वार तथा उत्तर द्वार को कुबेर द्वार कहते हैं। ये सभी नामानुसार फलदायी हैं। अतः दक्षिण दिशा में द्वार कभी न बनाना चाहिए। यदि बनाना आवश्यक हो तो मध्य भाग में नहीं बनाएं। पूर्व दिशा के आठ भागों में से तीसरे या चौथे भाग में तथा दक्षिण दिशा में दूसरे या छठवें भाग में द्वार निर्माण उपयुक्त होता है।

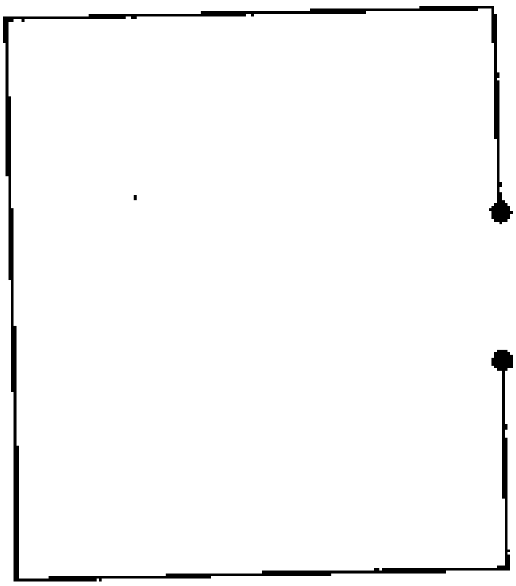

विजय द्वार

पूर्वद्वार– इसे विजय द्वार कहते हैं। यह उत्तम माना जाता है। पूर्व दिशा के आठ भागों में से तीसरे एवं चौथे भाग में द्वार बनवाना चाहिए। प्रातः कालीन रविकिरणों के सरल प्रवेश से शारीरिक

स्वास्थ्य, मानसिक शांति, लौकिक सुख की प्राप्ति तो होती है साथ ही पारमार्थिक श्रद्धा में स्थिरता भी आती है। धन-धान्य, पुत्रादि की प्राप्ति होती है। तृतीय भाग में द्वार से धन प्राप्ति तथा चतुर्थभाग में द्वार से राज सम्मान एवं प्रतिष्ठा की प्राप्ति होती है।

दक्षिण द्वार– इसे यम द्वार कहते हैं। इसे अशुभ माना जाता है। अनायास ही अशुभ घटनाएं यथा वाहन दुर्घटना, व्यसन, बीमारी, आर्थिक हानि आदि इसके कारण होती है। अतः दक्षिण में मुख्य प्रवेश द्वार न बनाएं। यदि द्वार बनाना अपरिहार्य हो तो दूसरे एवं छठवें भाग में बनाना चाहिए।

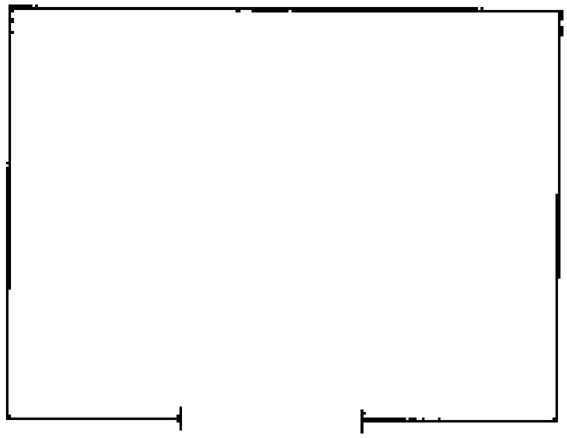

यम द्वार

एक अन्य मतानुसार चतुर्थ, पंचम या षठम भाग में दक्षिण द्वार बना सकते हैं। चतुर्थभाग में पुत्र प्राप्ति, पंचम में धनप्राप्ति तथा षष्ठम में यश प्राप्ति होती है।

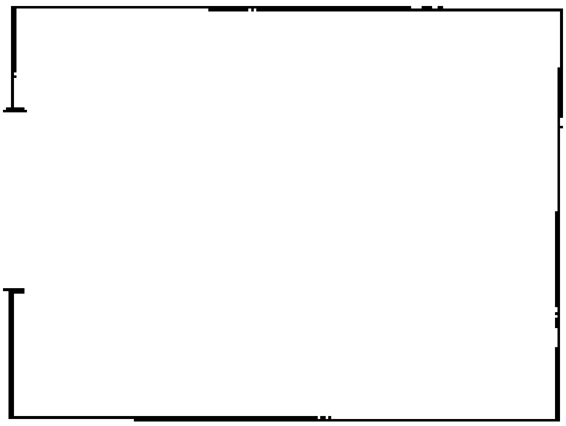

मकर द्वार

पश्चिम द्वार– इसे मकर द्वार कहते हैं। यह मध्यम फल दायक है। इसके कारण शोक, दुख, स्त्रीरोग, कलुषित मनोवृत्ति होती है। अन्यथा रीतियों से धनागमन होने पर भी धन स्थिरता को प्राप्त नहीं होता। पश्चिम में द्वार बनाना अपरिहार्य होने पर तीसरे या पांचवे भाग में बनाना उपयुक्त है।

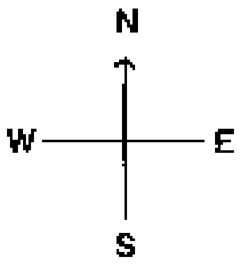

अन्य मतानुसार पश्चिम दिशा के आठ भागों में से तीसरे, चौथे, पांचवें या छठवें भाग में घर बना सकते हैं। तीसरे भाग में दरवाजा बनाने से धनप्राप्ति, चतुर्थ भाग से धनागम, पंचम भाग से सौभाग्य प्राप्ति तथा छठवें भाग से धन लाभ होता है।

उत्तर द्वार– इस द्वार को कुबेर द्वार कहते हैं। इससे व्यापारी वृत्ति, सत्य भाषण, हितमित वचन, व्यवहार, प्रगति एवं धनवृद्धि होती है। इसके तीसरे या पांचवें भाग में द्वार निर्माण उपयुक्त है।

अन्य मतानुसार चौथे, पांचवें या छठवें भाग में द्वार निर्माण करना चाहिए। चतुर्थ भाग में द्वार बनाने से संपत्ति वृद्धि, पांचवें भाग में द्वार होने से सुख प्राप्ति तथा छठवें भाग में द्वार होने से राज प्रतिष्ठा, मान सम्मान की प्राप्ति होती है।

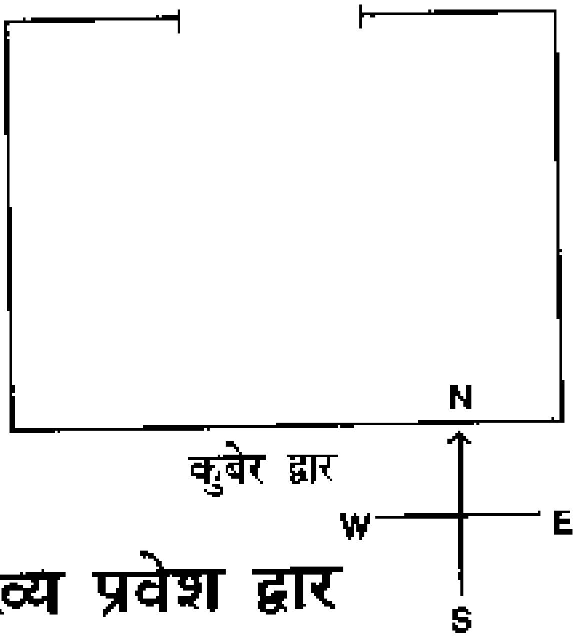

विदिशाओं में मुख्य प्रवेश द्वार

ईशान दिशा में मुख्य प्रवेश द्वार होने से ऐश्वर्य लाभ, वंश वृद्धि, सुसंस्कारित संतान तथा शुभफल प्राप्ति होती है।

आग्नेय दिशा में मुख्य प्रवेश द्वार होने से स्त्री रोग, अग्निभय, आत्मघात आदि की संभावना रहती है।

नैऋत्य दिशा में मुख्य प्रवेश द्वार होने से अकाल मरण, आत्मघात, भूतप्रेतबाधा आदि अशुभ घटनाएं होने की संभावना रहती है।

वायव्य दिशा में मुख्य प्रवेश द्वार होने से वास्तु एक हाथ से दूसरे हाथ में अंतरित हो जाती है। आशा से अधिक धन व्यय तथा मानसिक अशांति होती है।

वास्तु प्रवेश

वास्तु प्रवेश चार प्रकार का होता है–

1. **उत्संग प्रवेश–** वास्तु द्वार अर्थात् मुख्य प्रवेश द्वार तथा प्रवेश द्वार एक ही दिशा में हों तो उसे उत्संग प्रवेश कहते हैं। ऐसा द्वार सौभाग्य कारक, संतान वृद्धि, धन-धान्य एवं विजय का देने वाला होता है।

2. **हीनबाहु या सव्य प्रवेश–** यदि मुख्य प्रवेश द्वार प्रवेश करते समय बायीं ओर हो अर्थात् प्रथम प्रवेश के पश्चात बायीं ओर जाकर मुख्य द्वार में प्रवेश हो तो उसे हीनबाहु प्रवेश कहते हैं। यह अशुभ माना जाता है। ऐसे घर में निवास करने वाले अल्प धन वाले, अल्प मित्र वाले, दरिद्री, स्त्री के अधीन रहने वाले तथा अनेकानेक व्याधियों से पीड़ित रहते हैं।

3. **पूर्णबाहु या अपसव्य प्रवेश–** मुख्य घर का द्वार प्रवेश करते समय दाहिनी ओर हो अर्थात् प्रथम प्रवेश के समय दाहिनी ओर जाकर मुख्य घर में प्रवेश हो तो उसे पूर्ण बाहु प्रवेश कहते हैं। ऐसे मकान में रहने वाले पुत्र-पौत्र, धन-धान्य तथा सुखों को प्राप्त करते हैं।
4. **प्रत्यक्ष या पृष्ठ भंग प्रवेश–** यदि मुख्य घर की दीवार घूमकर घर के मुख्य द्वार में प्रवेश होता हो उसे प्रत्यक्ष या पृष्ठ भंग प्रवेश कहते हैं। ऐसे घर के निवासी भी संतान सुख से वंचित, धन-धान्य हीन तथा दरिद्री होते हैं।

समरांगण सूत्र में इनके लिए निम्न श्लोक हैं–

उत्संग एकदिक्काभ्यां द्वाराभ्यां वास्तुवेश्मनोः।
स सौभाग्य प्रजावृद्धि धन धान्य जयप्रदः।।
यत्र प्रवेशतो वास्तुगृहं भवति वामतः।
तद्धीनबाहुकं वास्तु निन्दितं वास्तु चिन्तकैः।।
तस्मिन् वसन्नल्पवित्तः स्वल्पमित्रोऽपबांधवः।
स्त्रीजितश्च भवेन्नित्यं विविधव्याधि पीड़ितः।।
वास्तु प्रवेशतो यत् तु गृहं दक्षिणतो भवेत्।
प्रदक्षिणप्रवेशात् तद्विद्यात् पूर्ण बाहुकम्।।
तत्र पुत्रांश्च पौत्राश्च धनधान्य सुखानि च।
प्राप्नुवन्ति नरा नित्यं वसन्तो वास्तुनि ध्रुवम्।।
गृहपृष्ठं समाश्रित्य वास्तु द्वारं यदा भवेत्।
प्रत्यक्षायस्त्वसौ निन्द्यो वामावर्त प्रवेशवत्।।

द्वार निर्माण करते समय यह भी ध्यान देने योग्य है कि द्वार से घर में जाने के लिए सृष्टि मार्ग अर्थात् दक्षिण की ओर से प्रवेश हो, ऐसी ही सीढ़ियां एवं दरवाजे बनाना चाहिए।

मुख्य द्वार के बराबर अन्य सब द्वार बनाना चाहिए अर्थात् हरेक द्वार के उत्तरंग समसूत्र में रखना चाहिए। या मुख्य द्वार में आ जाए ऐसा संकरा दरवाजा बनाना चाहिए। यदि मुख्य द्वार के एक ओर खिड़की बनाना हो तो उसे इच्छानुसार निर्मित कर लें। वास्तुसार की निम्न गाथाएं इसी आशय का संकेत देती है–

बारं बारस्स समं अह बारं बारमज्झि कायव्वं।
अह वज्जिऊण बारं कीरइ बारं तहालं च।।126।।

मूलगिहे पच्छिममुहि जो बारइ दुन्निबारा ओयरए।
सो तं गिहं न भुंजइ अह भुंजइ दुक्खिओ हवइ।।33।।
कमलेगि जं दुवारो अहवा कमलेहिं वज्जिओ हवइ।
हिट्टाउ उवरि पिहुलो न ठाइ थिर लच्छि तम्मि गिहे।।34।।

पश्चिम दिशा के द्वार वाले मुख्य घर में दो द्वार और शाला हो तो ऐसे घर में रहने से परिवार जन को दुख होता है।

जिस घर के द्वार एक कमल वाले यानी एक ही पलड़ा हो या बिल्कुल कमलहीन यानी पलड़ा रहित हो तथा द्वार नीचे की अपेक्षा ऊपर की ओर ज्यादा चौड़ा हो तो ऐसा घर लक्ष्मीहीन होता है।

द्वार की ऊंचाई एवं चौड़ाई का विचार
Height & Width of Doors

घर के दरवाजों की ऊंचाई एवं चौड़ाई का विचार करना भी आवश्यक है क्योंकि इनका प्रभाव घर निवासी पर अवश्य ही पड़ता है। राज वल्लभ ग्रंथ में इसका विवेचन निम्न प्रकार है–

> षष्ट्या वाथ शतार्द्धसप्ततियुतैर्व्यासस्य
> हस्तांगुलैर्द्वारस्योदयको भवेच्च भवने मध्यः कनिष्ठोत्तमौ।
> दैर्घ्यार्द्धेन च विस्तरः शशिकला भागोधिकः शस्यते,
> दैर्घ्यात त्र्यंशविहीनमर्धरहितः मध्यं कनिष्ठं क्रमात्।।

घर की चौड़ाई जितने हाथ हो उतने ही अंगुल में साठ अंगुल जोड़ देने पर मध्यम नाप की द्वार की ऊंचाई का मान प्राप्त होगा। यदि पचास अंगुल जोड़ें तो कनिष्ठ मान तथा सत्तर अंगुल जोड़ने पर ज्येष्ठ मान समझना चाहिए।

यदि दरवाजे की ऊंचाई के आधे भाग में सोलहवें भाग को और जोड़ दें तो इतना मान श्रेष्ठ चौड़ाई होगी। दरवाजे की ऊंचाई का 9/16 भाग द्वार की श्रेष्ठ चौड़ाई दर्शाता है।

यदि दरवाजे की ऊंचाई का आधा भाग चौड़ाई हो तो यह मान कनिष्ठ चौड़ाई होगा। दरवाजे की ऊंचाई का 1/2 भाग द्वार की कनिष्ठ चौड़ाई दर्शाता है।

दरवाजे की ऊंचाई का एक तिहाई भाग कम करने पर शेष दो तिहाई भाग का मान मध्यम चौड़ाई का मान-होगा। दरवाजे की ऊंचाई का 2/3 भाग द्वार की मध्यम चौड़ाई दर्शाता है।

उदाहरण के यदि किसी दरवाजे की ऊंचाई 96 इंच है तो चौड़ाई के मान निम्न प्रकार होंगे–

दरवाजे की चौड़ाई 54 इंच हो, यह श्रेष्ठ चौड़ाई होगी
दरवाजे की चौड़ाई 64 इंच हो, यह मध्यम चौड़ाई होगी
दरवाजे की चौड़ाई 48 इंच हो, यह कनिष्ठ चौड़ाई होगी

एक अन्य विवेचन इस प्रकार है-

गृहोत्सेधेन वा त्र्यंशहीनेन स्यात् समुच्छ्रितिः।
तदर्द्धेन तु विस्तारो द्वारस्येत्यपरो विधि।।

घर की ऊंचाई के 2/3 भाग द्वार की ऊंचाई रखें तथा उसका 1/2 भाग द्वार की चौड़ाई रखें। उदाहरण के लिए घर की ऊंचाई-फर्श से छत तक 12 फुट है तो द्वार की ऊंचाई 8 फुट तथा द्वार की चौड़ाई 4 फुट रखना चाहिए।

दरवाजे के लिए कुछ विशेष सिद्धांत

1. दरवाजे की चौड़ाई एवं ऊंचाई शास्त्रानुकूल निर्माण करने से स्वामी को गृह एवं व्यापार कार्यों में कष्ट नहीं होता।
2. दरवाजे एक कतार में होना चाहिए।
3. दरवाजे सीधे न होने से धनहानि होती है।
4. दरवाजे खोलते बन्द करते समय आवाज निकलना अशुभ एवं भय उत्पन्न करता है।
5. दरवाजे बाहर की ओर न खुलकर भीतर की ओर खुलना चाहिए अन्यथा घर में रोग शोक बना रहता है।
6. सामने के दरवाजे की अपेक्षा पीछे का दरवाजा कुछ कम ऊंचाई का होना चाहिए।
7. दरवाजा अपने आप खुलने बंद होने वाला नहीं होना चाहिए अन्यथा कुलक्षय, भय तथा स्वास्थ्य हानि की संभावना है।
8. दरवाजे में चीर या दरार पड़ने से घर में दरिद्रता आती है।
9. दरवाजे पर रंग की पपड़ियां निकलने से बाहर के लोग चर्चा एवं मजाक बनाते हैं।
10. दरवाजे के ऊपर कोई दाग होने से दुख होता है।
11. दरवाजे के बीच का जोड़ अच्छी तरह जुड़ा होना चाहिए अन्यथा परेशानियां आती हैं।
12. चौखट में नीचे की देहली अवश्य ही होनी चाहिए।
13. दरवाजे के ऊपर का भाग टेढ़ा होने से गृहस्वामी को पीड़ा होती है।
14. दरवाजे के अन्दर की ओर झुके हुए होने से घर में किसी की मृत्यु होती है।
15. दरवाजा बाहर की ओर झुका हुआ होने पर अचानक ही गृहस्वामी गृहत्याग कर भाग जाता है। घर में चोरी का भय होता है।

16. एकदम छोटा दरवाजा कुल का नाश करता है।
17. ऊपर की मंजिल के दरवाजे एक के ऊपर एक नहीं होना चाहिए।
18. दरवाजा एक तरफ चौड़ा तथा दूसरी तरफ संकरा होने से भय निर्माण होता है।
19. दरवाजा अत्यधिक ऊंचा या अत्यधिक चौड़ा होने पर घर में भय निर्माण, अकारण चिन्ता, स्वास्थ्य हानि तथा अचानक धनहानि होती है।
20. घर के मुख्य दरवाजे के सामने किसी अन्य का दरवाजा अशुभ होता है।
21. घर में आने जाने का एक ही दरवाजा होने से परेशानियां बढ़ती हैं।
22. घर का मुख्य प्रवेशद्वार सुन्दर एवं सुसज्जित होने पर समृद्धिदायक तथा आनन्दकारी होता है। प्रवेश द्वार के समान अन्य द्वारों की सजावट न करें।
23. पूरी वास्तु निर्माण में दरवाजे सम संख्या में हों किन्तु दशक में न हों अर्थात् 2, 4, 6, 8, 12, 14, 16 हों किन्तु 10, 20, 30 आदि न हों।
24. घर के दरवाजे के सामने पेड़, खंभा, कुंआ न हो अन्यथा घर में निरन्तर परेशानियां बनी रहेंगी।
25. दरवाजा एक ही लकड़ी का बनवाएं। लोहे का दरवाजा हो व लकड़ी की चौखट हो ऐसा न हो। इसी प्रकार लकड़ी का दरवाजा व लोहे की चौखट हो ऐसा भी न हो।
26. बिना द्वार की वास्तु का निर्माण नेत्रहीन करता है।
27. इनके अतिरिक्त वास्तुसार की प्र. 1 गा. 136 में उल्लेख है—

सयमेव जे किवाडा पिहियंति य उग्घडंति ते असुहा।
चित्तकलसाइसोहा सविसेसा मूलदारि सुहा।।

यदि घर के द्वार स्वयमेव खुलें या बंद होवे तो यह अशुभ समझें। घर का मुख्य द्वार कलश आदि से शोभायमान हो तो अति शुभकारी है। गृह का मुख्य द्वार स्वस्तिक, त्रिलोक प्रतीक आदि प्रशस्त चित्रों से शोभायमान हो तो शुभ है।

पथ एवं प्रवेश विचार
Roads and Entrances

जिन भूखण्डों के प्रवेश के समक्ष विदिशाओं में पथ हों उनमें प्रवेश द्वार बनाने के लिए विशेष सजगता रखनी चाहिए। निम्नलिखित सारणी के अनुरूप प्रवेश रखने से विपरीत वास्तु प्रभावों से सुरक्षा होती है तथा सार्थक परिणामों की प्राप्ति होती है–

भूखण्ड से लगी सड़क की दिशा	मुख्य प्रवेश	दोष सुधार के लिए अतिरिक्त प्रवेश
पूर्वी ईशान	पूर्वी आग्नेय	उत्तरी ईशान
पूर्वी आग्नेय	पूर्वी ईशान	–
दक्षिणी आग्नेय	दक्षिणी आग्नेय	उत्तरी ईशान
दक्षिणी नैऋत्य	दक्षिणी आग्नेय	पूर्वी ईशान
पश्चिमी नैऋत्य	पश्चिमी वायव्य	उत्तरी ईशान
पश्चिमी वायव्य	पश्चिमी वायव्य	पूर्वी ईशान
उत्तरी वायव्य	उत्तरी ईशान	–
उत्तरी ईशान	उत्तरी ईशान	पूर्वी ईशान

चौखट एवं देहरी विचार
Door Frames

दरवाजे लगाने के लिए चौखट लगाना आवश्यक होता है। दरवाजे में एक ही लकड़ी की चौखट तैयार करके लगाना चाहिए। वर्तमान में चौखट में नीचे की लकड़ी जिसे देहरी या देहली कहा जाता है, लगाने का प्रचलन कम हो गया है किन्तु वास्तुशास्त्र की धारणा के यह प्रतिकूल है। चौखट में नीचे लकड़ी अर्थात् देहरी न होने से वह तीन लकड़ी की अर्थात् त्रिखट हो जाती है। देहरी विहीन चौखट सफलता में बाधा उत्पन्न करती है।

जिन धर्म में चैत्यालय को भी नव देवताओं में माना गया है तथा चैत्यालय रूप देवताओं को नमस्कार करने के लिए चैत्यालय द्वार की देहरी को श्रद्धापूर्वक स्पर्श कर नमन करना पड़ता है। अतएव चैत्यालय देवता की आराधना के लिए देहरी का अपना पृथक महत्त्व है। इसी परम्परा में गृह द्वार के समक्ष चौक पूरना, रंगोली की चित्रकारी करना तथा देहरी पर कुमकुम हल्दी लगाकर जिनालय की उपासना करना आदि कर्म महिलाओं के द्वारा किये जाते हैं।

देहरी का व्यवहारिक महत्त्व भी है। यह घर की सुरक्षा के लिए भी उपयोगी है। रेंगकर चलने वाले प्राणी सर्प, बिच्छू, गोह, छिपकली आदि अनायास ही प्रवेश नहीं कर पाते। अतएव सभी दृष्टियों को ध्यान में रखकर वास्तु की चौखट एवं देहरी सही तरीके से निर्माण करना उत्तम है।

खिड़कियां
Windows

वास्तु में प्राकृतिक रूप से वायु प्रवाह एवं प्रकाश के लिए खिड़कियां बनाई जाती हैं। दरवाजों की भांति खिड़कियां भी यदि वास्तुशास्त्र के अनुकूल बनाई जाए तो श्रेष्ठ होता है। घर की खिड़कियों का महत्त्व मनुष्य देह में नेत्रों के समान है। जिस भांति नेत्रों से बाहरी परिदृश्य का अवलोकन किया जाता है उसी भांति खिड़कियां भी मकान के बाहरी परिदृश्य का अवलोकन करने का माध्यम है। खिड़कियां सिर्फ वायु के आने जाने का साधन न होकर परिवार में सुख शांति भी बढ़ाती हैं।

पूर्व दिशा में अधिक खिड़कियां बनाने से प्रातः कालीन रवि किरणों का पर्याप्त लाभ होता है। यह घर के शुद्धिकरण, पवित्रता एवं परिवार के स्वास्थ्य की अनुकूलता के लिए निमित्त बनता है। मन की प्रसन्नता, व्यापार की सफलता पारिवारिक सद्भावना, मैत्री का वातावरण निर्मित होता है।

उत्तर दिशा में अधिक खिड़कियां परिवार में धन-धान्य की वृद्धि का हेतु हैं। परिवार में लक्ष्मी का सद्भाव तथा धनपति कुबेर का सहयोग बना रहता है।

पश्चिम एवं दक्षिण में भी यथावश्यक खिड़कियां बनायी जा सकती हैं। मुख्य प्रवेशद्वार को छोड़कर एक ओर यदि खिड़की बनाई जाये तो आवश्यकतानुसार कहीं भी खिड़की बनाना शक्य है।

खिड़कियों के निर्माण में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना उपयोगी है-

1. खिड़कियां सदैव दीवाल में ऊपर नीचे न बनाकर एक ही लाईन में बनाना चाहिए।
2. खिड़कियां अन्दर की ओर खुलने वाली हों न कि बाहर खुलने वाली।
3. खिड़कियों में फूटे कांच न हों।
4. खिड़कियां सदैव सम संख्या में बनाएं।
5. खिड़कियां दो पल्ले की बनाएं। एक या तीन पल्ले की नहीं।
6. खिड़कियों में मुख्य दरवाजे जैसी साज सज्जा न करें। सादा पेंट लगाएं।

7. घर के ऊपर की मंजिल में सुन्दर खिड़कियां बना सकते हैं किन्तु सामने वाले मकान की खिड़की से नीचे के भाग में अपनी खिड़की न बनाएं।
8. यथासंभव घर के पीछे की दीवाल में खिड़की दरवाजे न बनाएं तो बेहतर है।
9. सामने एवं आजू बाजू में खिड़कियां बनाना श्रेष्ठ है।

वास्तु की रंग योजना
Colour Plan of Vaastu

रंगों का मनुष्य के मानसिक एवं शारीरिक दोनों ही पक्षों पर प्रभाव पड़ता है। किसी रंग के कमरे में बैठने से मन प्रफुल्लित होता है तो किसी रंग के कमरे में अत्यंत मलिन विचार आते हैं। जैन शास्त्रों में पंच परमेष्ठी के आध्यात्मिक स्वरूप के अनुरूप रंगों का विवेचन किया गया है। जैन पंचरंगी ध्वज में इसी बात को ध्यान में रखा गया है। विभिन्न पूजा, पाठ, जाप आदि कार्य करते समय वस्त्र, माला, पुष्प आदि के रंगों का स्पष्ट उल्लेख शास्त्रों में मिलता है। अतएव वास्तु की रंग आयोजना भी ऐसी होनी चाहिए जो कि मनोहारी, शुभ एवं शांतिदायक हो।

वास्तु की रंग योजना	परिणाम
आसमानी	शांति, उत्साह
लाल	मध्यम
चाकलेटी	अशुभ, विपरीत प्रभाव
काला	अशुभ
गुलाबी	शुभ
सफेद	शांति, मानसिक स्थिरता
नीला हरा (चूने में मिलाकर)	उत्तम

अतएव ऐसे ही रंगों को चयन करना चाहिए जो शुभ तथा मनोहारी हों।

अंतः सज्जा आयोजना
Interior Decoration Plan

घर की आंतरिक साज-सज्जा दीवालों पर रंग, चित्रकारी तथा मूर्तियां आदि से करने का प्रचलन प्रारम्भ से ही रहा है। मन्दिरों में भी भीतर एवं बाहर इसी प्रकार की सज्जा की जाती है। गृह का वातावरण मन्दिर के वातावरण से भिन्न होता है।

जिन चित्रों से मंगल भावनाओं का निर्माण हो, नेत्रों एवं मन के लिए आनन्दकारी हों तथा शुभ एवं शांतिदायक विचारों का आगमन हो तभी ऐसी सजावट की सार्थकता है। क्रोध, उद्वेग, भय, ग्लानि, आश्चर्य उत्पन्न करने वाले चित्र या मूर्तियां भी नहीं लगानी चाहिए।

जोइणिनडारंभं भारह रामायणं च निवजुद्धं।
रिसिचरिअ देवचरिअ इअ चित्तं गेहि नहु जुत्तं।।
फलियतरु कुसुमवल्ली सरस्सई नवनिहाणजुअलच्छी।
कलसं वद्धावणयं सुमिणावलियाइ सुहचित्तं।।

- वास्तुसार प्र. 1 गा. 138-139।।

योगिनियों के नृत्य, नट, महाभारत एवं रामायण आदि ग्रंथों के युद्धों के चित्र घर में नहीं लगाना चाहिए। ऋषिचरित्र एवं देवचरित्र के चित्र भी महावैराग्यवान होने से घर में लगाना अनुपयुक्त है।

फलदार वृक्ष, पुष्पलता, सरस्वती देवी, नवनिधानयुक्त लक्ष्मीदेवी, कलश, स्वस्तिक इत्यादि मंगलमय चिन्हों तथा सुस्वप्नपंक्ति का चित्रण अत्यंत शुभ है। जिनेन्द्र देव, तीर्थंकरों, मुनियों, तीर्थक्षेत्र, जिनालय आदि की चित्रकारी अथवा तस्वीर या प्रतिकृतियां लगाई जा सकती हैं। किन्तु इन्हें पश्चिम या दक्षिण की दीवाल पर पूर्व या उत्तर की ओर मुख किए हुए लगाना चाहिए।

लगाये गए चित्र यदि कांच के फ्रेम में हों तो यह ध्यान रखें कि कांच फूटा न हो। चित्रों के ऊपर धूल न जमी हो।

वास्तु में प्रेत, राक्षस, कालीदेवी, असुर, व्याघ्र, सिंह, कौआ, उल्लू, रीछ, शूकर, लोमड़ी, लकड़बग्घा, गिद्ध आदि के चित्र कदापि न लगाएं। इनसे मानसिक चंचलता एवं भयोत्पादक भाव उत्पन्न होते हैं।

नट-नटियों के चित्र मानसिक अस्थिरता पैदा करते हैं। युद्धरत सेना के चित्र परिवार में कलह एवं अनबन को पैदा करते हैं।

पुरानी सामग्री प्रयोग का निषेध
Prohibitor of Using Old Materials

जैनाचार्यों ने नवीन वास्तु निर्माण करने के लिए पुरानी वास्तु की बची सामग्री को प्रयोग करने का निषेध किया है। सारी सामग्री नयी ही प्रयोग करना चाहिए।

पासाय कूव वावी मसाण रायमंदिराणं च।
पाहण इट्ठ कट्ठा सरिसवमत्ता वि वज्जिज्जा।।

- वास्तुसार प्र. 1 गा. 152

अपना गृह बनाने के लिए सदैव ध्यान रखें कि देवमन्दिर, कुंआ, श्मशान, मठ, राजप्रासाद आदि के पत्थर, ईंट, लकड़ी आदि को किंचितमात्र भी अपनी वास्तु निर्माण के लिए उपयोग में नहीं लाना चाहिए।

अन्यवास्तुच्युतं द्रव्यमन्यवास्तौ न योजयेत्।
प्रासादे न भवेत् पूजा गृहे च न वसेद् गृही।।

- समरांगण सूत्रधार

दूसरे मकान की गिरी हुई लकड़ी, पाषाण, ईंट, चूना आदि अपने मकान या कोई भी अन्य वास्तु, मन्दिर आदि के निर्माण के काम में नहीं लाया जाना चाहिए। यदि ऐसा किया जाता है तो मन्दिर में पूजा, अर्चना, अभिषेक आदि कार्यों में कमी होती जाती है। मकान में ऐसा किये जाने पर वास्तुस्वामी गृह में टिक नहीं पाता तथा शनैः शनैः उसका वंशक्षय होता है।

विभिन्न लकड़ी काम में लेने का निषेध
Prohibition of Using Certain Woods

आचार्यों ने कुछ प्रकार की लकड़ी वास्तु में न लगाने का उल्लेख किया है।

हल घाजय सगडमई अरहट्ट जंताणि कंटई तह य।
पंचुबुरि खीरतरु एयाण य कट्ठ वज्जिज्जा।।
बिज्जउरि केलि दाडिम जंभीरी दोहलिछ अंबलिया।
बब्बूल बोरमाई कणयमया तह वि नो कुज्जा।।
एयाणं जइ वि जडा पाडिवसा उपविस्सइ अहवा।
छाया वा जम्मि गिहे कुलनासो हवइ तत्थेव।।
सुसुक्क भग्ग दड्ढा मसाण खग निलय खीर चिरदीहा।
निम्ब बहेडय रुक्खा न हु कट्टिज्जंति गिहहेऊ।।

– वास्तुसार प्र. 1 गा. 146 से 149

निम्नलिखित प्रकार की लकड़ी को निर्माण कार्य में प्रयोग करना अनुपयुक्त है–

1. हल
2. गाड़ी
3. कांटे वाले वृक्ष
4. अनार
5. आक
6. बबूल
7. बहेड़ा
8. पीले फूलवाले वृक्ष
9. टूटा हुआ वृक्ष
10. श्मशान के समीप का वृक्ष
11. अतिलम्बा जैसे खजूर आदि
12. उदुंबर (बड़, पीपल, गूलर, पलाश, कठुम्बर)
13. घानी कोल्हू
14. रेहट
15. केला
16. नीबू
17. इमली
18. नीम
19. बीजपूर (बीजोर)
20. अपने आप सूखा हुआ वृक्ष
21. जला हुआ वृक्ष
22. पक्षियों के घोंसले वाला वृक्ष
23. जिनके काटने से दूध निकले

बीजोरा, केला, अनार, नीबू, आक, इमली, बबूल, बेर, पीले फूल के वृक्ष न तो घर में बोना चाहिए न इनकी लकड़ी काम में लेना चाहिए। यदि इन वृक्षों की जड़ घर के समीप या घर में प्रविष्ट हो या जिस घर पर इनकी छाया गिरती हो तो उस घर के कुल का क्षय होता जाता है।

वृक्ष प्रकरण
Surrounding Trees

मकान, मन्दिर या वास्तु इत्यादि के निर्माण करते समय शोभा के लिए अथवा उपयोगी होने के कारण वृक्षारोपण किया जाता है। कुछ वृक्ष पूर्व से ही वहां लगे हुए होते हैं।

घर के समीप यदि कंटीले वृक्ष हों तो शत्रुभय होता है। दूधवाले वृक्ष से लक्ष्मी नाश तथा फलदार वृक्ष संतान हानि करते हैं। इनकी काष्ठ भी घर बनाने में काम न लेवें। यदि ये वृक्ष घर अथवा घर के निकट हों तो घर ही छोड़ देना श्रेयस्कर है। यह संभव न हो तो दोषनिवारण के लिए नागकेशर, अशोक, अरीठा, बकुल, केशर, पनस, शमी या शालि जैसे सुगंध वाले वृक्ष लगा देना उपयोगी है। इसका विवेचन वाराही संहिता में है–

आसन्नाः कण्टकिनो रिपुभयदाः क्षीरिणोऽर्थनाशाय।
फलिनः प्रजाक्षयकरा दारुण्यपि वर्जयेदेषाम्।।
छिन्द्याद् यदि न तरुस्तान् तदन्तरे पूजितान् वपेदन्यान्।
पुन्नागाशोकारिष्टबकुलपनसान् शमी शालौ।।

नीम का वृक्ष या वैसा कोई अन्य वृक्ष द्वार के मध्य में हो तो वह असुरप्रिय होने से मनुष्य वहां न रह पायेंगे। ऐसा घर छोड़ देना चाहिए।

इसके सन्दर्भ में निम्नलिखित श्लोक विचारणीय हैं–

अथ निवासा सन्नतरु शुभाशुभ लक्षणानि।
गृहस्य पूर्व दिग्भागे न्यग्रोधः सर्व कामिकः।।
उदुम्बरस्तथा याम्ये वारुण्यां पिप्पलः शुभः।
प्लक्षश्चोत्तरतोधन्योविपरीतांस्तुवर्जयेत्।।

वर्जयेत्पूर्वतोश्वत्थं प्लक्षः दक्षिणतो गृहात्।
पश्चिमेचैव न्यग्रोधस्तथोंदुम्बरमुत्तरे।।
देवदानवगंधर्वा किन्नरोरगराक्षसाः।
पशुपक्षि मनुष्याश्चसंश्रयन्ति सदा तरुन्।।

विभिन्न वृक्षों के अलग-अलग स्थानों पर रहने के फल निम्नानुसार हैं--

क्र.	वृक्ष का नाम	दिशा	परिणाम
1	पीपल	पूर्व	भय
2	पाकर	दक्षिण	पराभव
3	बड़	पश्चिम	राजकीय परेशानियां
4	उदुम्बर	उत्तर	नेत्ररोग
5	बड़	पूर्व	शुभ, मनोरथ पूरक
6	उदुम्बर	दक्षिण	शुभ
7	पीपल	पश्चिम, दक्षिण	शुभ
8	पाकर	उत्तर	शुभ, धन-धान्य प्राप्ति
9	पुष्प वाटिका	आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य	कलह, मानसिक संताप
10	पुष्प वाटिका	पश्चिम, उत्तर, पूर्व	पुत्र, धन-धान्य वृद्धि

सर्वासांवृक्षजातिनांच्छाया वर्ज्या गृहे सदा।
अपि सौवर्णिकोवृक्षो गृह द्वारे न रोपयेत्।।
बदरी कदली चैव दाड़िमं बीजपूरकम्।
प्ररोहति गृहे यस्य तद्गृहं न प्ररोहति।।
पलाशा कांचनाराश्च तथा श्लेष्मातकार्जुनाः।
करंजाश्चेत्यमी वृक्षाः न रोप्याः सुखिना गृहे।।
असनाः कंटकिनोरिपुभयदाः क्षीरीणोऽर्थ नाशाय।
फलिनः प्रजाक्षयकराः दारुण्यपिवर्जयेदेषाम्।।

नीलां हरिद्रांच नरः स दोह्या।
पुत्रैर्धनैश्च क्षायमप्युपेयात्।।
यः कुर्याद्याम्य नैऋत्याग्नेय कोणेषु वाटिकाम्।
अन्यथा कलहोद्वेगौ कष्टवा लभते कृते।।
तस्माद्राज्ञाहिं शुभदं पुत्र पौत्रादि वर्धनम्।
पश्चिमोत्तर पूर्वेषु भवेदुपवने कृते।।
वर्जयेत् पूर्वतोऽश्वत्थं प्लक्षं दक्षिणेतथा।
न्यग्रोधं पश्चिमेभागे उत्तरे चाप्युदुम्बरम्।।
अश्वत्थे तु भयं ब्रूयात! प्लक्षे ब्रूयात्पराभवम्।
न्यग्रोधे राजतः पीड़ा नेत्रात्रयमुदम्बरे।।
वटः पुरस्ताद्धनयः स्याद्दक्षिणे चाप्युदुम्बरम्।
अश्वत्थं पश्चिमे भागे प्लक्षस्तुत्तरतो भवेत्।।

वृक्ष लगाने का उपयुक्त नक्षत्र

यदि घर में कोई बगीचा या वृक्षारोपण करना हो तो मृग, रेवती, चित्रा, अनुराधा, विशाखा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, रोहिणी, शततारका, उत्तराभाद्रपदा और उत्तराषाढ़ा आदि शुभ नक्षत्रों में लगाना चाहिए।

विशेष संकेत

1. जिन भूखण्डों के पश्चिम में सड़क हो तथा पश्चिम में घने वृक्ष हों वे शुभ एवं सुफलदायी होते हैं। उत्तरी वायव्य में पुष्प वाटिका भी लगाना उत्तम है।
2. पश्चिम एवं दक्षिणी भागों में सड़क वाले भूखण्डों के सन्दर्भ में नैऋत्य भाग में ऊंचे घने वृक्ष लगाना शुभफलदायक है।
3. पश्चिमी पार्श्व में सड़क वाले भूखण्डों में पश्चिमी ओर घने वृक्ष उत्तम फलदायी होते हैं।
4. यदि दक्षिणी एवं पूर्वी पार्श्व में सड़क वाले भूखण्ड हों तो यह आवश्यक है कि वृक्ष दक्षिणी भाग में अर्थात् दक्षिणी आग्नेय एवं दक्षिणी नैऋत्य के मध्य भाग में लगायें। नारियल आदि के वृक्ष लगाये जा सकते हैं।

गृह अपशकुन विचार
Bad Omens

षण्मासं मधुच्छत्रजातं शाकं मासत्रयानुलुकम्।
गृध्रं वायस क्रूर जंतु सहिते गत्वा सुमासार्धकम्।।
पक्षं वर्ज्यं कपोत गोधवसते दोषंतु ये मन्दिरम्।
वर्ज्यं तद्मितिर्दिनेत्पुनःहलंकारः प्रवेशांतिकृत्।।

मधुमक्खी का छत्ता; कुकुरमुत्ता, खरगोश घर में प्रवेश करने के छह मास तक दोष रहता है। गोह घर में प्रवेश करने पर तीन माह तक दोषकारक होता है। गृद्धपक्षी, कौआ, उल्लू और चमगादड़ घर में प्रवेश करने के पंद्रह दिन तक दोषकारक होते हैं। इन कारणों में से किसी के उपस्थित होने पर गृहशुद्धि करके शांति विधान अवश्य कर लेना चाहिए।

इसके अतिरिक्त यह भी कहा है कि–

श्वानं च यमदिग्भागे तद्गृहं दुख संभवम्।

वास्तु की दक्षिणी दीवाल पर यदि कुत्ता आ जाता है तो घर में कष्ट होने की संभावना होती है।

रसोई घर (चौका)
Kitchen

रसोई घर में परिवार के लिए भोजन निर्माण किया जाता है। भोजन सिर्फ उदर पूर्ति हेतु न होकर शुद्ध एवं सात्विक होना आवश्यक है। ऐसा भोजन तन तथा मन दोनों को पवित्र बनाता है। प्राचीन समय से लेकर आज तक प्रचलित भाषा में रसोई घर को चौका कहा जाता है। चौका का अर्थ है चार। चार प्रकार की शुद्धि पूर्वक जो आहार बनाया जाये, वही आहार मुनि आदिक संयमी अतिथियों के लिए योग्य होता है। ऐसे चौके में बना आहार मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, प्रतिमाधारी श्रावक, ब्रह्मचारीगण आदि के लिए भक्ति पूर्वक दिया जाए तो उसे आहार दान कहा जाता है। आहार दान

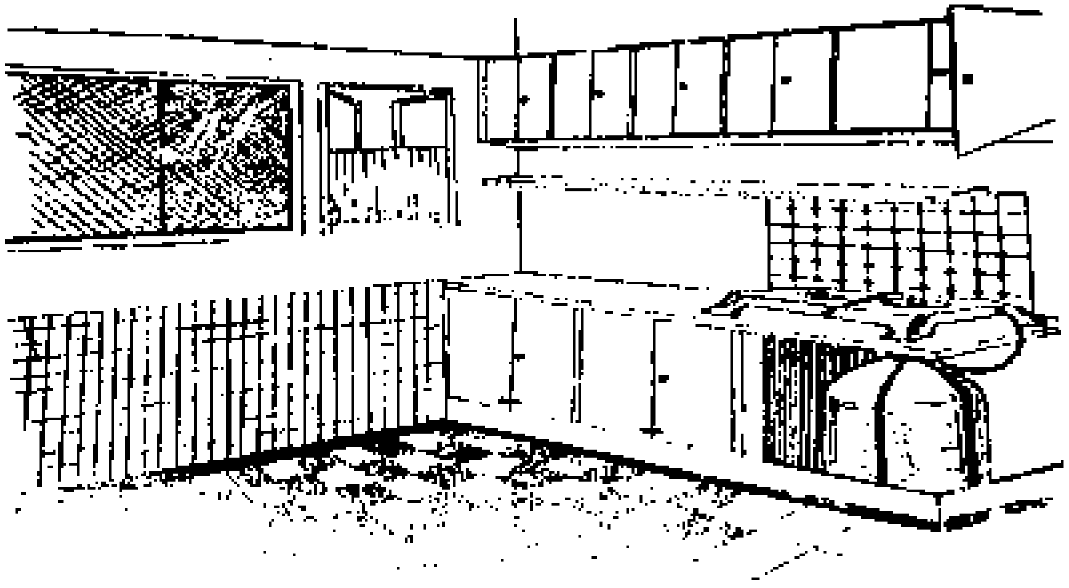

श्रावक के दैनिक कर्तव्यों में से एक है। दान पूजा ही श्रावक का प्रमुख धर्म है। अतएव निवास में रसोई घर या चौका वास्तुशास्त्र के अनुकूल दिशाओं की अपेक्षा रखकर ही निर्माण करना चाहिए। रसोईघर या चौका ऐसा होना चाहिए कि वहां पर मुनि दान परम्परा का भली प्रकार निर्वाह हो सके।

रसोई घर के लिए सर्वश्रेष्ठ दिशा आग्नेय मानी गई है। आग्नेय दिशा में अग्नि तत्व माना जाता है। अशुभ घटनाओं का अग्नि निवारण करती है। अग्नि का कार्य है जलाना या भस्म करना। नियमित रूपेण अग्नि या रसोई घर को आग्नेय दिशा में रखने से घर की सभी आपत्तियां भस्म होती हैं। पृथक

रुपेण आग्नेय दिशा में निर्मित कक्ष में चूल्हा, सिगड़ी, स्टोव आदि भी आग्नेय दिशा में ही रखना चाहिए।

विभिन्न दिशाओं में रसोई घर के निर्माण का निम्न फल होता है।

क्र.	दिशा	फल	विशेष
1	ईशान	अशुभ	प्रगति अवरोध
2	आग्नेय	सर्वश्रेष्ठ	सर्वसुख, संपदा, समाधान
3	नैऋत्य	अशुभ	चोरी का भय
4	वायव्य	अशुभ	धन नाश का भय
5	पूर्व	मध्यम	परेशानियों में वृद्धि
6	पश्चिम	अशुभ	कष्ट, शोक, अशांति, नीरस खाद्य
7	उत्तर	कलह	कलह, वाद-विवाद, अशांति
8	दक्षिण	अशुभ	अपयश, मृत्युभय

महत्त्वपूर्ण संकेत

1. रसोई बनाते समय स्त्रियों का मुख पूर्व की ओर होना चाहिए। यह आरोग्य वर्धक है।
2. बाहर के द्वार से चूल्हा नहीं दिखना चाहिए। ऐसा होने पर परिवार को पूर्ण हानि होने की संभावना है।
3. रसोई घर में उससे सम्बन्धित सामग्री, यंत्र यथा ग्राइंडर, मिक्सर, खल बट्टा, ओखली आदि वहीं रखना चाहिए। यह सुख समाधान दायक होता है।
4. रसोई घर में निरर्थक वार्तालाप करना अनिष्टकर होता है। अश्लील वार्तालाप आदि रसोई घर में करने से वहां का वातावरण दूषित होता है।
5. ऐसे भूखण्ड जिनमें उत्तर एवं पूर्व में सड़क हैं, उनमें ईशान में पाकशाला (रसोई घर) बनाने से पारिवारिक कलह तथा धन हानि का संताप भोगना पड़ता है।

6. यदि पूर्व एवं दक्षिण में सड़क है तथा आग्नेय में रसोई घर है तो अतिउत्तम होता है।
7. यदि भूखण्ड के उत्तर में सड़क हो तथा मकान में उत्तर में रसोई घर बनाया जाए तो यह अशुभ तथा विपरीत फलदायक होता है।
8. यदि भूखण्ड के दक्षिण एवं पश्चिम में सड़क हो तथा किसी कारण आग्नेय में रसोई घर बनाना संभव न हो तो इसका निर्माण नैऋत्य अथवा वायव्य कमरे के आग्नेय भाग में किया जा सकता है।
9. यदि भूखण्ड के दक्षिणी भाग में सड़क हो तो वायव्य में रसोई घर बनायें तथा कमरे के आग्नेय भाग में रसोई का प्लेटफार्म बनाएं।
10. यदि भूखण्ड के उत्तरी एवं पश्चिमी भाग में सड़क हो तथा वायव्य भाग में रसोई घर बनाया जाए तो इसके विलक्षण परिणाम होंगे। अतिथियों की संख्या में बढ़ोत्तरी होने से घर में रौनक तो रहेगी किन्तु खर्च अधिक होने से गृहिणी के चेहरे की रौनक ज़रूर फीकी पड़ जायेगी।

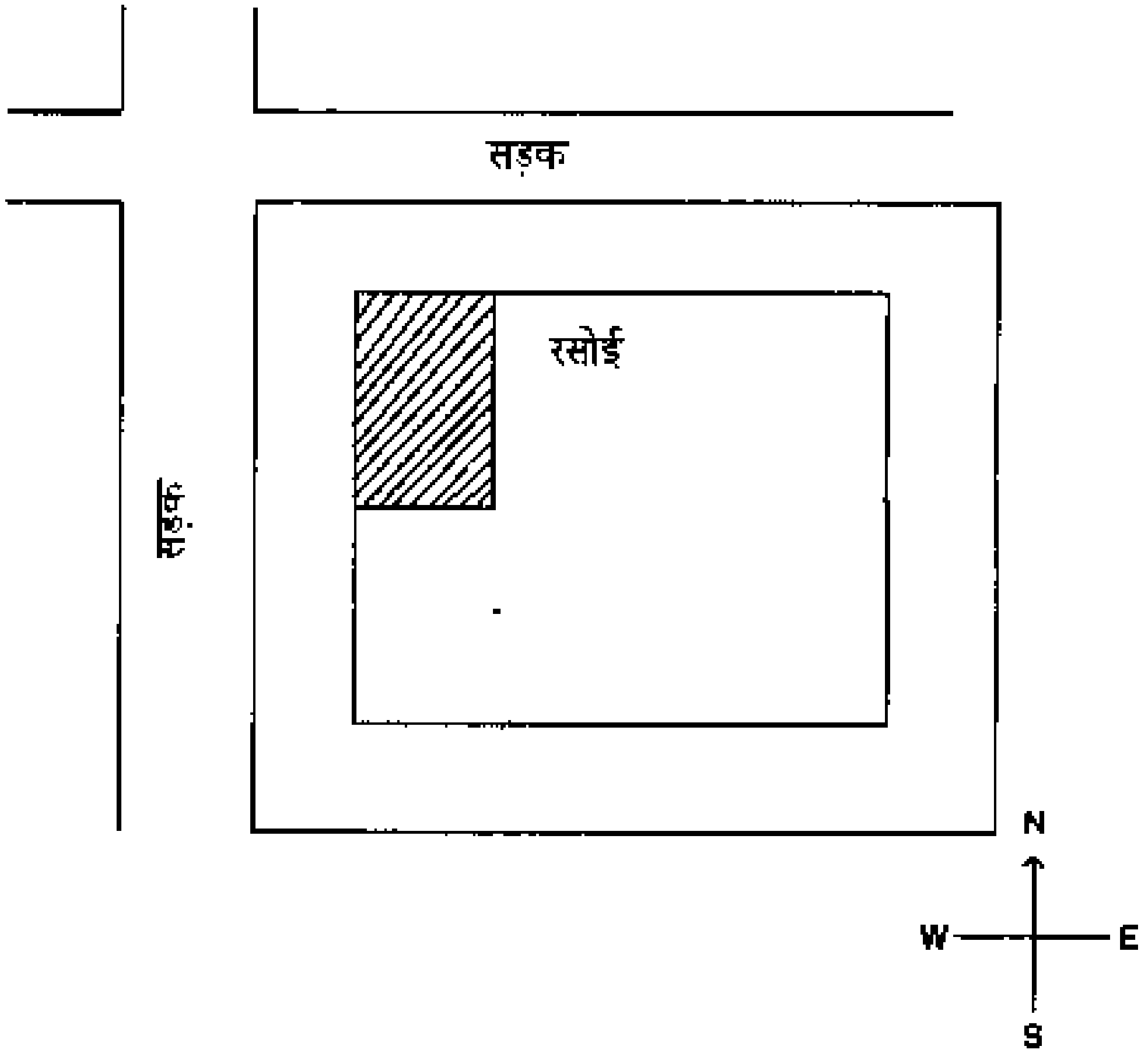

शयन कक्ष
Bed Rooms

वास्तु रचना में शयन कक्ष की रचना अलग से करना चाहिए। शांत मन होकर पूर्ण निद्रा ले सकने के लिए यह आवश्यक है। शयन कक्ष में निरर्थक वार्तालाप, गपशप आदि करने से कक्ष का वातावरण दूषित होता है जिसका प्रभाव शयन कक्ष उपयोगकर्ता पर होता है। शयन कक्ष वास्तु शास्त्र के अनुकूल दिशाओं का ध्यान रखकर ही बनाना चाहिए। ऐसा न होने पर शयन करने वालों को दुःस्वप्न आते हैं अथवा ठीक से नींद नहीं आती। मन अशांत एवं अस्थिर हो जाता है। शारीरिक स्वास्थ्य भी उत्तम नहीं रहता है। ठीक से नींद न आने से प्रातः ताजगी महसूस नहीं होती। फलतः धर्माराधना तथा अन्य कार्यों का सम्पादन भली प्रकार नहीं हो पाता।

शयन की उपयुक्त दिशा

वास्तु पुरुष मण्डल में पुरुष का स्थान नैऋत्य में है अतः शयन के लिए यही स्थान सर्वोत्तम है। गृहस्वामी का शयन कक्ष नैऋत्य दिशा में ही बनाना उपयुक्त है। संतान प्राप्ति का योग भी इससे रहता है। दक्षिण दिशा में भी शयन कक्ष का निर्माण किया जा सकता है। शयन कक्ष में शैय्या दक्षिण या नैऋत्य में रखना चाहिए। पूर्व या उत्तर का भाग रिक्त रखना चाहिए।

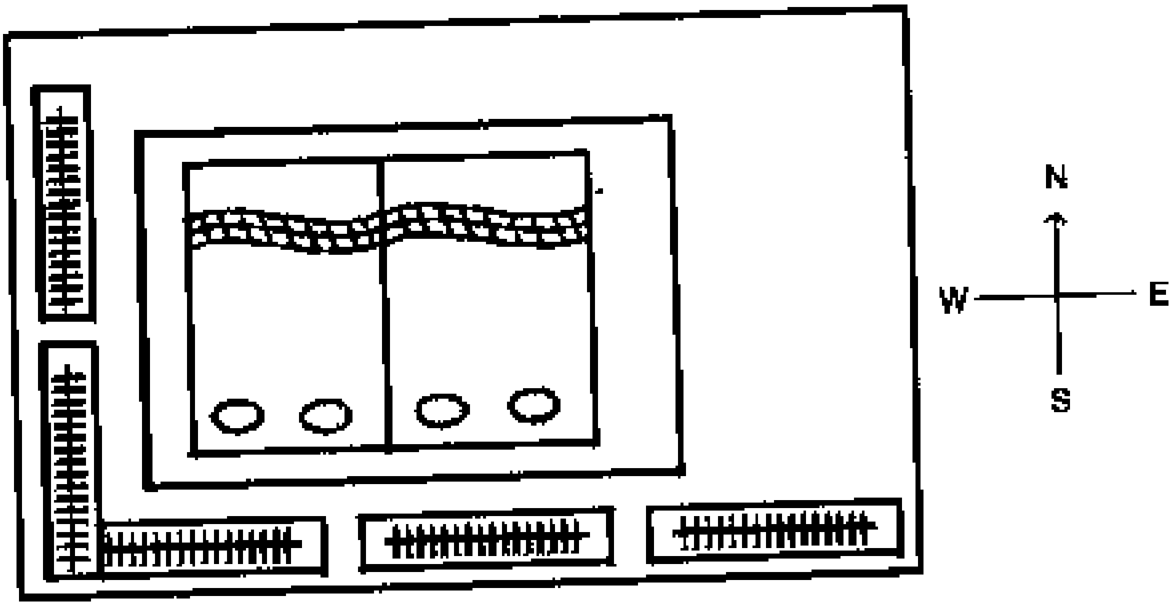

सौम्यंप्रत्यक्छिरोमृत्युर्वंशाद्यारुक्सुतार्तिदा।
आक्छिराः शयनेविंद्यादक्षिसुखसंपदः।।
पश्चिमेप्रबलाचिन्ताहानिंमृत्युतथोत्तरे।
स्वगेहेप्राक्छिराः सुप्याच्छ्वाश्रेदक्षिणाशिराः।।
प्रत्यक्छिराः प्रवासेतुनोदक्सुप्यात्कदाचनः।।

अक्षय वास्तु पृ. 72

दक्षिण दिशा की ओर पांव करके नहीं सोना चाहिए। दक्षिण दिशा यम की दिशा मानी जाती है। दक्षिण की ओर पांव करके सोना अर्थात् उत्तर की ओर सिर करके सोना मृत्यु को स्वतः आमन्त्रण देने जैसा है। दक्षिण की ओर पांव करके सोने से दुःस्वप्न तथा ठीक से नींद न आने की परेशानी होती है। मृत्यु तुल्य कष्ट होता है। परिवार में व्याधि का आगमन होता है। मानसिक तनाव एवं चिन्ताएं बढ़ती हैं।

भारतीय परंपरा में शव को उत्तर की ओर सिर करके लिटाया जाता है। जीवित मनुष्य के लिए यह सर्वथा वर्जित माना जाता है।

पूर्व दिशा का स्वामी इन्द्र माना जाता है। सूर्योदय की दिशा पूर्व की तरफ पांव करके शयन करने से प्रातः कालीन सूर्य किरणों का लाभ मिलता है। ऊर्जा मिलने से चित्त प्रसन्न तथा मस्तिष्क शांत रहता है। अतः यह सर्वश्रेष्ठ दिशा है। विशेषकर विद्यार्थियों को तो इसी तरह सोना चाहिए।

पश्चिम दिशा वरुण की मानी जाती है। पश्चिम वायु प्रवाह की दिशा है। यह आध्यात्मिक चिंतन, ध्यान साधना के लिए शुभ होती है। पश्चिम दिशा में पैर रखकर शयन करने से अच्छा निद्रा आती है। वृद्धजनों के लिए यह उपयुक्त है।

उत्तर दिशा का स्वामी कुबेर माना जाता है। कुबेर धन का प्रतीक है। अतः उत्तर दिशा में पांव करके शयन करना शुभ है। उत्तर दिशा में विदेह क्षेत्र में विद्यमान बीस तीर्थंकरों का स्मरण महामंत्र णमोकार का जाप, चौबीस तीर्थंकरों का नामस्मरण प्रातः उठते ही उत्तर की ओर मुख करके ही किया जाता है अतएव दक्षिण की तरफ सिर करके सोने से उठते ही उत्तर दिशा में मुख हो जाता है।

णमोकार मंत्र

णमोअरिहंताणं, णमो सिद्धाणं,
णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्व साहूणं।

शयन करने के पूर्व हाथ पांव मुंह धोकर णमोकार मंत्र का जप करके शुभ विचार करते हुए शयन करना चाहिए।

घर में दरवाजे पर, खाली जमीन पर, जूंठन वाली जगह पर शयन नहीं करना चाहिए।

शयन करने की दिशा के विषय में एक लोकोक्ति के अनुसार स्वगृह में पूर्व की तरफ, श्वसुरगृह में दक्षिण की तरफ तथा तीर्थयात्रा एवं मार्ग में पश्चिम की तरफ सिर करके सोना उत्तम है।

शयन कक्ष के लिए संकेत

यदि मकान के ऊपर एक और मंजिल हो तो नीचे के शयन कक्ष को छोड़कर ऊपर की मंजिल में उसी दिशा में शयन कक्ष करना चाहिए। उसमें स्वयं गृहस्वामी को या उसके ज्येष्ठ पुत्र को शयन करना चाहिए। यदि शयन न करना हो तो पलंग लगाकर स्थान रिक्त रखना चाहिए। अन्यत्र सुलाने से विकल्प एवं कलह में वृद्धि होगी।

मकान में कम स्थान होने पर अन्य कमरों में भी दक्षिण व नैऋत्य दिशा में बिस्तर लगाए जा सकते हैं।

शयन कक्ष की दीवालों का रंग हरा, नीला आदि होना चाहिए। वहां बिछाए गए चादर आदि भी इसी प्रकार के रंगों के होना चाहिए। लाल रंग बेचैनी को बढ़ता है। अतः लाल जैसे तेज रंगों का प्रयोग शयनकक्ष में नहीं करना चाहिए। ऐसे चित्र भी शयन कक्ष में न लगाएं जो भयावह, विकराल, वीभत्स अथवा घृणास्पद हों। मनो विभ्रम करने वाले चित्र भी न लगाएं। चित्र मनोहारी एवं सुरुचिपूर्ण हों। शयन कक्ष की आंतरिक सजावट कलापूर्ण हो। शयन कक्ष में शय्या कोमल होना चाहिए।

शयन कक्ष में खिड़कियां अवश्य बनवाएं ताकि वातावरण में ताजगी रहे तथा घुटन महसूस न हो।

भारी सामान कक्ष
Lumber Room

घर में एक कमरा ऐसा बनाना आवश्यक होता है, जिसमें भारी सामान रखा जा सके। घरों में ऐसा काफी सामान होता है जो आवश्यक भी नहीं है किन्तु त्याज्य भी नहीं है। ऐसे सामान की कभी-कभार आवश्यकता होती है। ऐसा भारी, निरर्थक अथवा अतिरिक्त सामान नैऋत्य दिशा में रखा जाना चाहिए। अस्त्र-शस्त्र आदि आयुध भी इसी दिशा में रखना चाहिए। भारी सामान नैऋत्य के अतिरिक्त किसी अन्य दिशा में रखने से गृहस्वामी पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। घर में कभी-कभी उपयोग आने वाले औजार तथा गृहनिर्माण सामग्री (जैसे फावड़ा, गेंती, कुदाल आदि) का नियत स्थान है नैऋत्य दिशा। स्वभावतः जितना अधिक वजनदार सामान नैऋत्य में रखा जायेगा उतना ही शुभ है। लोहे का भारी सामान भी नैऋत्य में ही रखना चाहिए। निरुपयोगी विविध सामान भी नैऋत्य में ही रखना चाहिए। ऐसे करने से मानसिक स्थिरता प्राप्त होती है।

विभिन्न दिशाओं में निरर्थक वजनदार सामान आदि रखने का परिणाम

क्रं.	दिशा	परिणाम
1	पूर्व	भ्रम एवं परेशानियां
2	आग्नेय	बाधाएं, परेशानियां
3	दक्षिण	मध्यम
4	नैऋत्य	परेशानियों का निवारण
5	पश्चिम	मध्यम
6	वायव्य	मध्यम
7	उत्तर	अत्यधिक परेशानियां
8.	ईशान	प्रगति बाधा

सोपान (सीढ़ी)
Stair Case

सीढ़ियों की आवश्यकता प्रत्येक आवासगृह में होती है। सीढ़ियों का निर्माण या तो घर के भीतरी भाग में किसी कमरे में किया जाता है अथवा बाहरी भाग में। आजकल सर्पिलाकृति सीढ़ियां भी बनाई जाती हैं।

घर के बहुमंजिला होने पर नीचे से ऊपर जाने के लिए सीढ़ियां बनाना आवश्यक होता है। घर में प्रवेश करते समय भी सीढ़ियों का प्रयोग करना होता है। सीढ़ियों के निर्माण के लिए आग्नेय, वायव्य, उत्तर या नैऋत्य दिशा उत्तम होती है। सीढ़ियां दक्षिणावर्त होनी चाहिए। सीढ़ियां ईशान दिशा में नहीं होनी चाहिए। हां, लिफ्ट लगाने के लिए ईशान दिशा उपयुक्त होगी क्योंकि उसमें नीचे गहरा स्थान होता है।

सीढ़ियों के विषय में यदि निम्न लिखित संकेतों का ध्यान रखा जाए तो स्वामी के लिए हितकारी परिणाम प्राप्त होते हैं–

अ. भीतरी सीढ़ियां

1. ईशान कक्ष में कतई न बनाएं।
2. उत्तरी या पूर्वी दीवाल से न छूकर कम से कम तीन इंच दूर बनाएं।
3. दक्षिणी या पश्चिमी दीवाल से लगकर बना सकते हैं।
4. पश्चिमी दीवाल से लगकर पूर्व से पश्चिम की ओर चढ़ते हुए बनाएं।
5. दक्षिणी दीवाल से लगकर उत्तर से दक्षिण की ओर चढ़ते हुए बनाएं।

ब. बाहरी सीढ़ियां (सीधी)

मकान का मुख	सीढ़ी की दिशा	दीवाल से लगकर	अग्रेसर चढ़ाव
पूर्व	उत्तरी ईशान	उत्तरी	पूर्व से पश्चिम
पश्चिम	दक्षिणी आग्नेय	दक्षिणी	पूर्व से पश्चिम
उत्तर	पूर्वी ईशान	पूर्वी	उत्तर से दक्षिण
दक्षिण	पश्चिमी वायव्य	पश्चिमी	उत्तर से दक्षिण

उपरोक्त सभी प्रकरणों में फर्श पर चढ़ने पर अनुकूल दिशा में प्रवेश करें।

स. गोल सीढ़ियां

सीढ़ी का स्थान	सीढ़ी का प्रवेश	प्रवेश दिशा
पूर्व	पूर्वी बालकनी	पूर्वी आग्नेय
पश्चिम	पश्चिमी बालकनी	पश्चिमी नैऋत्य
उत्तर	उत्तरी बालकनी	वायव्य
दक्षिण	दक्षिणी बालकनी	दक्षिणी नैऋत्य

नोट– गोल सीढ़ियां ईशान में न बनाएं। नैऋत्य में बनाना हो तो गड्ढा न रखें। गड्ढा रखना अपरिहार्य हो तो नैऋत्य कोण से कुछ हटकर सीढ़ियां निर्माण करना उपयुक्त है।

द. सोपान स्थान के अनुसार संकेत

सीढ़ी का स्थान	चढ़ाव	फर्श पर प्रवेश	बालकनी आवश्यक	बालकनी वांछनीय
पूर्वी आग्नेय	उत्तर से दक्षिण	पूर्वी भाग	उत्तर	–
दक्षिणी नैऋत्य	पूर्व से पश्चिम	दक्षिणी आग्नेय	उत्तर	पूर्व
पश्चिमी नैऋत्य	उत्तर से दक्षिण	पश्चिमी वायव्य	उत्तर	पूर्व
उत्तरी वायव्य	पूर्व से पश्चिम	उत्तरी ईशान	उत्तर	पूर्व

इ. दो दीवालें जो समकोण बनाती हों उनके लिए सीढ़ियां

दीवाल	चढ़ाव	फर्श पर प्रवेश	निषेध
पूर्व एवं उत्तर	उत्तर से दक्षिण	अनुकूल दिशा में	पूर्वी दीवाल से दूर
पूर्व एवं दक्षिण	पूर्व से पश्चिम	नैऋत्य में घूमकर अनुकूल दिशा में	–
पश्चिम एवं दक्षिण	उत्तर से दक्षिण	नैऋत्य में घूमकर अनुकूल दिशा में	–
उत्तर एवं पश्चिम	पूर्व से पश्चिम	वायव्य में घूमकर अनुकूल दिशा में	उत्तरी दीवाल से दूर

फ. यदि दो मकानों के मध्य स्थान में संयुक्त उपयोग की सीढ़ियां आवश्यक हों तो वे इस तरह बनाएं कि वे पूर्व से पश्चिम की ओर चढ़ाव वाली हों अथवा उत्तर से दक्षिण की ओर चढ़ाव हो। पूर्व एवं उत्तर में बालकनी बनाकर उनमें से किसी में प्रवेश करते हुए सीढ़ियां होना उत्तम है।

ग. सीढ़ियों के नीचे कोई महत्त्वपूर्ण कार्य करना उपयुक्त नहीं माना जाता।

घ. सीढ़ियों की संख्या में 3 का भाग देकर शेष दो बचे तो उत्तम होता है।

ङ. द्वार से घर जाने के लिए दायीं ओर से प्रवेश शुभ रहता है। घर में ऊपर चढ़ने के लिए भी सीढ़ियां चढ़ते हुए दायीं ओर घर रहना शुभ रहता है।

सीढ़ियों के विषय में प्रकरणों के अनुरूप स्थान पर संकेत दिए गए हैं उनका पालन करना गृहस्वामी के लिए हितकारी होगा।

लिफ्ट

वर्तमान में ऊंचे भवनों में लिफ्ट लगाने का चलन हो गया है। लिफ्ट कभी भी मध्य में न लगाएं, न ही दक्षिणी या नैऋत्य भाग में लगाएं। लिफ्ट के लगाने के लिए गहरा गड्ढा होना आवश्यक है। अतएव इसका निर्माण उत्तर, ईशान अथवा पूर्व में ही होना चाहिए। ताकि वास्तु नियमों के अनुरूप गड्ढे की स्थिति बन सके।

आलमारी तथा शोकेस रखने का स्थान

Place for Keeping Showcases & Almirah

घर में जो आलमारि, तिजोरि, फर्नीचर आदि रखना हो अथवा शोकेस लगाना हो तो उसे घर के दक्षिण एवं पश्चिम भाग की तरफ लगाना चाहिए जिनका मुख उत्तर या पूर्व की ओर होना चाहिए। आलमारी अत्यधिक छोटी या अत्यधिक बड़ी न हो, कक्ष के माप के अनुपात में ही आलमारी आदि शोभा पाती हैं। विषम बेडौल माप का फर्नीचर अशोभनीय लगता है। आलमारी या तिजोरी सीधी रखी जाना आवश्यक है। इन्हें सामने या पीछे की ओर झुका कर न रखें, तिरछा भी न रखें। ऐसा करने पर घर में अनायास ही निरर्थक वाद-विवाद होने लगते हैं।

औषधि कक्ष

Medicine Cell

घर में अनायास ही किसी सदस्य के अस्वस्थ होने पर औषधियों की आवश्यकता होती है। अतः घर में कुछ दवाइयां सदैव रखना आवश्यक होता है। ऐसी औषधियां यहां वहां न रखकर ईशान दिशा में एक निश्चित स्थान पर रखना उपयुक्त है। प्रातः कालीन सूर्य किरणें औषधियों पर पड़कर उनके गुणधर्म में विकास करती हैं। प्रातः के उपरांत सूर्य दक्षिण मार्गी होकर पश्चिम में अस्त होता है उसकी तीव्र संताप युक्त किरणें औषधियों पर नहीं पड़ती। अतएव वास्तु शास्त्र में औषधियां रखने का स्थान ईशान दिशा में निर्धारित किया गया है। औषधि ग्रहण करते समय रोगी को उत्तर मुख होकर औषधि लेना उपयुक्त है।

गृहिणी प्रकरण

Chapter for Housewife

बिना गृहिणी के गृह दीवारों की रचना मात्र है। गृहिणी द्वारा परिवार की सुविधा की दृष्टि से सुनियोजित गृह ही वास्तव में गृह कहा जाता है। सामान्यतः पुरुष वर्ग जीविकोपार्जन के लिए दिन में घर में नहीं रह पाते हैं। दिवस का अधिकतर समय महिलाएं घर में ही व्यतीत करती हैं। रसोई घर का कार्य भी सामान्यतः महिलाएं ही करती हैं। इस प्रकरण में कुछ विशेष उल्लेख उनके संदर्भ में ही किया गया है।

रसोई घर में चूल्हा या सिगड़ी आदि पूर्वी आग्नेय भाग में रखना सर्वोत्तम है। गृहणि भोजन निमार्ण करते समय पूर्वाभिमुख हो। पूर्वी दीवाल पर शेल्फ लगाकर चूल्हा जमाने से पूर्वी आग्नेय कोण के भाग में वृद्धि हो जाती है जो ठीक नहीं है। रसोई घर से पानी निकलने की दिशा पूर्व या उत्तर की ओर हो।

चक्की, मिक्सी आदि भारी उपकरण दक्षिणी, पश्चिमी या नैऋत्य भाग में दीवाल से लगाकर रखना उचित है। दीवाल से लगाकर रखना शक्य न होने पर नैऋत्य भाग में रखना उचित है।

लम्बी झाडू, लकड़ी आदि ऊंचे या लम्बे सामान पूर्वी या पूर्वोत्तर भाग में रखना उचित नहीं है। इन्हें नैऋत्य में ही रखना चाहिए।

पीने के पानी के बर्तन पूर्व या उत्तर में नीचे स्थान पर रखें, ऊंचा करके ईशान में न रखें। ऊंचा रखना हो तो नैऋत्य में रखें।

आलमारी, कपाट आदि नैऋत्य में पूर्व या उत्तराभिमुखी रखें। फ्रिज, भोजन-मेज सोफा आदि दक्षिणी या पश्चिमी कमरों में दीवाल से लगाकर रखें।

शयनकक्ष में शैय्या ऐसी बिछाएं कि कक्ष में पूर्व एवं उत्तर में अधिक रिक्त स्थान रखा जाए। फोल्डिंग पलंग दक्षिणी या पश्चिमी दीवाल पर खड़े करके रखे जा सकते हैं। शयनकर्ता का सिर दक्षिण की ओर हो, उत्तर की ओर नहीं।

कमरों की सजावट इस तरह की जाए कि कमरों में उत्तर एवं पूर्व का अधिक भाग खाली हो बजाए दक्षिण एवं पश्चिम के।

उपरोक्त बातों का ध्यान महिलाएं रखें तो उनके गृहों में निरन्तर सुख शांति का प्रवाह आयेगा। वास्तु शास्त्र में वर्णित दिशाओं का विचार करके यदि

घर की समायोजना की जाए तो वह न केवल गृहिणी के बल्कि सारे परिवार के लिए समाधान कारक होगी।

दही मथने का स्थान
Room for Grinding Curd

रसोई घर के पूर्व वाली जगह में दही मथने के लिए स्थान रखना उचित है। एक स्तम्भ में रस्सी बांधकर दही बिलोने से नवनीत (मक्खन) प्राप्त होता है। इसके लिए पर्याप्त जगह की आवश्यकता होती है जो कि रसोई घर में कभी-कभी नहीं हो पाती। आग्नेय दिशा से लगकर यह स्थान बनाने से वहां अग्नि की उष्णता के कारण जीवोत्पत्ति भी कम होती है।

घी, तेल, गुड़ आदि दक्षिण आग्नेय दिशा में रखना चाहिए। घर में मिक्सी, ग्राइंडर आदि यंत्र यदि हों तो वे भी इसी दिशा में रखना उचित है। इससे सुपरिणाम प्राप्त होते हैं।

प्रसूति कक्ष
Delivery Room

वर्तमान युग में प्रसव के लिए नारियां अस्पताल जाना सर्वोत्तम समझती हैं। किन्तु प्राचीन काल में यह सुलभ नहीं था। वर्तमान में भी अनेकों बार, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में प्रसव कार्य घर में ही संपादित कराना पड़ता है। अतः प्रसव के लिए एक पृथक कक्ष नैऋत्य दिशा में बनाया जाता था। नैऋत्य दिशा गूढ़ दिशा होने से इस उद्देश्य के लिए उत्तम है। नवजात शिशु एवं प्रसूता को अतिशीत, अतिग्रीष्म तथा बाह्य वातावरण के प्रदूषण से दूर रखना आवश्यक है। इस कारण अत्यंत कोमल एवं संवेदनशील नवजात शिशु एवं प्रसूता को नैऋत्य दिशा में रखा जाता है। यह दिशा शिशु को वैसा ही संरक्षण देती है जैसा माता गर्भस्थ शिशु को। इसी कारण जैनाचार्यों ने प्रसूतिगृह कक्ष के लिए नैऋत्य दिशा को सर्वश्रेष्ठ बताया है।

अन्य वास्तु शास्त्रियों ने इस कार्य के लिए पूर्व दिशा भी उपयुक्त मानी है। पूर्वी ईशान की दिशा में प्रातः कालीन रविकिरणें नवजात शिशु एवं प्रसूता को शक्ति वर्धक होती हैं। चिकित्सक भी आजकल प्रसूतिकक्ष इसी दिशा में बनवाना श्रेष्ठतर समझते हैं।

पाले गये पशु रखने का स्थान
Place for Domestic Animals

सामान्यतः ग्रामीण अंचल में परिवारों में पशु रखने की परम्परा है। ये पशु वाहन, कृषि तथा दुग्ध आपूर्ति के लिए रखे जाते हैं। सदैव दुधारु किस्म के पशु ही रखना चाहिए। हिंसक प्रवृत्ति के पशुओं को नहीं पालना चाहिए। गौ, बैल, अश्व आदि पालतू पशुओं को वायव्य दिशा में रखना वास्तु शास्त्र की सम्मति के अनुरूप है। वास्तुसार में विवेचन है कि–

गो वसह सगडठाणं दाहिणए वामए तुरंगाणं।
गिहबाहिर भूमीए संलग्गा सालए ठाणं।।

- वास्तुसार प्र. 1 गा. 157

गौ, बैल और गाड़ी रखने का स्थान दाहिनी ओर तथा अश्व का स्थान बायीं ओर भूमि में बनवाई गई शाला में रखना चाहिए।

धन संपत्ति कक्ष
Room for Keeping Wealth

गृहस्थों को अपने जीवन यापन एवं सुरक्षा के लिए धन तथा बहुमूल्य धातुओं के आभूषणों की आवश्यकता होती है। उत्तर दिशा का अधिपति कुबेर माना गया है। अतएव धन, संपत्ति रखने के लिए सर्वोत्तम दिशा उत्तर दिशा ही है। अपने महत्त्वपूर्ण बहुमूल्य कागजात भी यहीं रखना चाहिए। कुबेर की दिशा में धन रखने से घर में धनागम का स्रोत बना रहता है, धन स्थिर होता है तथा व्यापार में सहायता मिलती है।

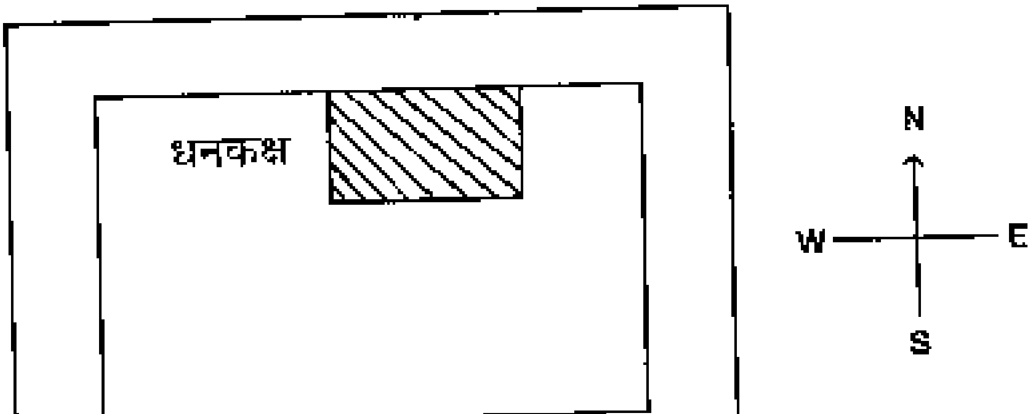

शोक संवेदना कक्ष

Room for condolence

पारिवारिक जीवन में यदा कदा ऐसे अवसर आते हैं जब व्यक्ति का मन दुख से व्याकुल हो जाता है। अनेकों विकल्प मन में जन्म लेते हैं। ऐसे समय के अतिरिक्त इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग के कारण भी मन दुखी हो जाता है। ऐसे समय सांत्वना की आवश्यकता होती है। ऐसे अवसर के लिए पश्चिम एवं वायव्य दिशा के मध्य एक कक्ष होना चाहिए। ऐसे स्थल पर मन को शांति मिलती है। कई बार अचानक निर्णय लेने की स्थिति में मन में उथल-पुथल मच जाती है। समय का अत्यंत अभाव होने की स्थिति में यदि ऐसे स्थल पर मनन किया जाए तो समुचित निर्णयात्मक समाधान मिलने की संभावना रहती है। शनि, चंद्र एवं केतु ग्रहों का प्रभाव इस दिशा में होने से मानसिक उथल-पुथल में समाधान मिलता है।

स्नानगृह

Bathrooms

गृहस्थों को अपने षट् आवश्यक धार्मिक कृत्यों को करने के अतिरिक्त प्रतिदिन प्रातः स्नान करना भी अत्यंत आवश्यक है। दैनिक व्यापारिक, व्यवहारिक कार्यों में रत रहने, विलासिता आदि में रहने तथा पंचेंद्रियों के विषयों के अधीन रहने के कारण गृहस्थों की शारीरिक शुचिता का अपना पृथक महत्त्व है। शारीरिक अशुचिता से मानसिक अशुचिता में वृद्धि होती है तथा मन धार्मिक कार्यों में प्रवृत्त नहीं होता है। देव पूजा, स्वाध्याय, मुनियों के लिए आहार दान आदि कार्यों में शारीरिक शुचिता अपरिहार्य है। आहार दान एवं देव पूजा के पूर्व में छने हुए शुद्ध प्रासुक जल से स्नान कर शुद्ध धुले हुए वस्त्र पहनना आवश्यक होता है। अतएव यह आवश्यक है कि गृह में स्नानकक्ष उपयुक्त स्थान पर निर्मित किया जाए। वह वास्तुशास्त्र के अनुरूप हो तथा शारिरिक, मानसिक शुचिता में कारण बने। अनुपयुक्त दिशा में मकान बनाना तथा स्नान करना स्नान से मिले फल को निरर्थक कर देता है। अतः स्नानगृह बनाते समय दिशाओं का ध्यान रखना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

स्नानगृह निर्माण करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त दिशा पूर्व होती है। पूर्व दिशा में स्नानगृह होने से उदीयमान सूर्य की किरणें स्नानकर्ता पर पड़कर उसे ऊर्जा देती हैं। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जल का प्रवाह उत्तर, ईशान अथवा पूर्व की ओर हो। यह उत्तम तथा शुभ है।

आधुनिक वास्तुशास्त्रियों के अनुसार संलग्न स्नानगृह वाले कक्षों को पूर्व या उत्तर की ओर बनाना चाहिए।

महत्त्वपूर्ण संकेत

1. यदि दो कमरों में समानांतर स्नानगृह बनाना हो तो एक दूसरे से लगकर बनाएं।
2. यदि ईशान में स्नानगृह बनाना हो तो यह ध्यान रहे कि ईशान कोण बन्द न हो जाए।
3. स्नानगृह के ईशान कोण में कभी भी बायलर नहीं लगाना चाहिए।
4. यदि मकान का मुख पश्चिम की ओर हो तो स्नानगृह पूर्व अथवा वायव्य में बनाना चाहिए।
5. यदि मकान का मुख दक्षिण की ओर हो तो स्नानगृह वायव्य में बनाना चाहिए। किन्तु मुख्य गृह की तथा परिकर दीवार के बीच की दूरी से कम दूरी रखकर मुख्य गृह से अलग करते हुए बनाना चाहिए।
6. पूर्व की ओर मुख वाले मकानों में स्नानगृह पूर्वी आग्नेय में बनाना चाहिए।
7. उत्तर की ओर मुख वाले मकानों में स्नानगृह उत्तरी वायव्य की ओर बनाया जा सकता है।

सभी वास्तुशास्त्रों की मूल धारणा यही है कि स्नानगृह पूर्व में बनवाना सर्वाधिक उपयुक्त है।

स्नानगृह का विभिन्न दिशाओं में बनाने का फल

क्रं.	दिशा	परिणाम
1	पूर्व	सर्वकार्य साधक, आर्थिक उन्नति
2	आग्नेय	स्त्री रोग, आरोग्य नाश
3	दक्षिण	रोग, अर्थ संकट
4	नैऋत्य	भूत बाधा
5	पश्चिम	पुरुषों को रोग, भ्रम, आपसी गलतफहमी
6	वायव्य	मध्यम
7	उत्तर	धन-धान्य, संपत्ति लाभ
8	ईशान	आर्थिक संपन्नता

स्नान करते समय भी दिशा का ध्यान रखना उचित है। उमास्वामी श्रावकाचार में उल्लेख हैं-

स्नानं पूर्व मुखी भूय प्रतीच्यां दन्तधावनम्।
उदीच्यां श्वेतवस्त्राणि पूजा पूर्वोत्तर मुखी।।97।।

पूर्व दिशा की ओर मुख करके स्नान करना चाहिए। पश्चिम दिशा की ओर मुख करके दातौन करना चाहिए। उत्तर दिशा की ओर मुख करके श्वेत वस्त्र धारण करना चाहिए तथा पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके पूजा करना चाहिए।

शौचालय एवं शौच कूप
Lavatory Toilet & Septic Tank

प्राचीन शास्त्रों में एक उक्ति है-

'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्'

इस लोकोक्ति के अनुसार धर्म का साधन करने के लिए शरीर का आश्रय आवश्यक है। शरीर की स्वास्थ्य रक्षा के लिए शुचिता आवश्यक है। आहार विहार का प्रभाव आचार-विचार पर निश्चित रूप से पड़ता है। अतः आहार विहार की पवित्रता अत्यंत आवश्यक है। शौचादि क्रियाओं के लिए प्राचीन काल में ग्राम के बाहर खुले स्थान में जाया जाता था। इससे मनुष्य का प्रकृति के साथ सम्बन्ध बना रहता था। वर्तमान भौतिक युग में यह साधारणतः सम्भव नहीं है कि शौचादि क्रियाओं के लिए बाहर जाया जा सके। अतएव मकान में ही शौचालय की व्यवस्था की जाती है। वास्तुशास्त्र में दिशाओं के प्रभाव के अनुकूल शयन कक्ष, पूजा कक्ष, सामान कक्ष की भांति शौचालय का निर्माण करने का भी विवरण है। दिशाओं के प्रभावों के अनुरूप शौचालय की स्थिति भी अनुकूल प्रतिकूल फलदायी होती है। यह जीवन में यश अपयश, हानि-लाभ, स्वास्थ्य-रोग, आदि का कारण बनता है।

वास्तु शास्त्र के अनुसार पश्चिमी वायव्य या दक्षिणी आग्नेय दिशा में शौचालय बनवाना चाहिए। यह नैऋत्य में कभी नहीं बनाना चाहिए। शौचालय का दरवाजा पूर्व या आग्नेय की तरफ खुलने वाला होना चाहिए। शौचालय में बैठते समय मुख उत्तर की ओर होना चाहिए एवं मुख पूर्व की ओर कभी नहीं होना चाहिए। वास्तु से दो तीन फुट का अंतर रखकर शौचालय बनाया जाए तो उत्तम है। प्राचीन वास्तुकार नैऋत्य दिशा में भी शौचालय को उपयुक्त मानते थे किन्तु उनमें शौचकूप (सैप्टिक टैंक) नहीं होता था। बाहर से सफाई

की जाती थी। वर्तमान आधुनिक शौचालयों को दक्षिणी आग्नेय अथवा पश्चिमी वायव्य में ही निर्माण करना उचित है। यदि दक्षिणी आग्नेय दिशा में शौचालय बनाना हो तो उसे घर की दीवाल छोड़कर परकोटे की दीवार से लगकर बनवाना चाहिए।

अथ मूत्र पुरीषोत्सर्गत विधि–

दिवासंध्यायोरुदगमुखो रात्रौ दक्षिणामुखो
मौनी अनुपानत्कआसिनो मूत्रपुरीषोत्सर्गम् कुर्यात्।

दिन में तथा संध्या काल यानी प्रातः एवं संध्या समय में उत्तराभिमुख तथा रात्रि में दक्षिणाभिमुख होकर मलमूत्र विसर्जन करना श्रेयस्कर है। विसर्जन करते समय दोनों पांव में समतल रखना चाहिए, ऊपर नीचे नहीं। सूर्य के सम्मुख बैठ कर मल विसर्जन न करें।

दिशानुसार शौचालय बनाने का फल

क्रं.	दिशा	परिणाम
1	पूर्व	द्यूत व्यसन, शारीरिक रोग
2	आग्नेय	अधिकार प्राप्ति, राज सम्मान, यश
3	दक्षिण	मानसिक अस्थिरता, चंचल बुद्धि, रक्तवाहिनी नसों में दोष
4	नैऋत्य	मध्यम, कदाचित आत्मघात घटना
5	पश्चिम	स्त्रियों में चंचल वृत्ति
6	वायव्य	आरोग्य, सुख, कदाचित चौर भय
7	उत्तर	आर्थिक हानि, दरिद्रता
8	ईशान	वंशनाश, गर्भपात, मानसिक चिन्ता, अपयश

शौचालय निर्माण में महत्त्वपूर्ण संकेत

ऐसे भूखण्ड जिनमें पश्चिम एवं उत्तर में सड़क हो, उन पर निर्मित मकानों में यदि पश्चिम में शौचालय अथवा स्नानगृह बनाना अपरिहार्य हो तो उसका भूमिगत जल संग्रह मध्य उत्तरी भाग में रखें।

जिन भूखण्डों में पूर्व या उत्तर में सड़क हों उन पर निर्मित मकानों में ईशान में शौचालय निर्माण करना अत्यंत घातक है। ऐसी स्थिति में पारिवारिक अशांति, असाध्य रोग तथा सदस्यों में अपराधी प्रवृत्ति का उदय देखा जाता है।

जिन भूखण्डों में पश्चिम एवं दक्षिण में सड़क हों उनमें निर्मित मकानों में नैऋत्य में भूमिगत जल संचय (Under grand water tank) कदापि न रखें अन्यथा भीषण परिणाम हो सकते हैं।

जिन भूखण्डों में दक्षिण एवं पूर्व में सड़क हों उनमें निर्मित मकान में आग्नेय में शौचालय बनाना आवश्यक होने पर भी यह ध्यान रखें कि स्नानगृह पूर्व में ही हो।

यदि उद्योग में शौचालय आग्नेय दिशा में बनाना हो तो इसे पूर्वी कम्पाउंड वाल से एक मीटर दूर बनाएं। शौचालय का निर्माण कम्पाउंड वाल से स्पर्श करता हुआ न हो।

शौच कूप
Septic Tank

शौच कूप दक्षिण एवं पश्चिम की तरफ नहीं बनाना चाहिए क्योंकि इस दिशा में गड्ढे बनाने का निषेध किया गया है। उत्तर या पूर्व की ओर इसे निर्माण करना उपयुक्त है। उत्तर या पूर्व की ओर जल का बहाव रहना उत्तम माना जाता है।

यदि पूर्व दिशा में शौचकूप बनाया जाता है तो सम्पूर्ण पूर्व दिशा के परकोटे को नापकर उसके आधे भाग से आगे अर्थात् पूर्व और आग्नेय दिशा के मध्य में बनाना चाहिए।

इसी प्रकार यदि उत्तर दिशा में शौचकूप बनाया जाता है तो सम्पूर्ण उत्तर दिशा के परकोटे को नापकर उसके आधे भाग से आगे अर्थात् उत्तर और वायव्य दिशा के मध्य बनाना चाहिए।

शौचकूप नैऋत्य, आग्नेय, पश्चिम, वायव्य, ईशान तथा दक्षिण दिशा में नहीं बनाना चाहिए। ऐसा करने से घर में रोग, मृत्युभय, द्रव्य नाश की संभावना रहती है। पूर्व और उत्तर दिशा का अधिकांश भाग खाली तथा साफ रखना चाहिए। आवश्यक हो तो शौचकूप पूर्व और आग्नेय के मध्य या उत्तर और वायव्य के मध्य बनवाना चाहिए।

चौक

घर के मध्य की खाली जगह चौक कहलाती है। मध्य में चौक रहने से पारिवारिक वातावरण अच्छा रहता है। घर में प्राकृतिक प्रकाश भी आता है। ऊपर से इसे एकदम खुला न छोड़ें, छत या कम से कम ढंका हुआ अवश्य हो। इससे परिवार में आपसी प्रेम वृद्धिगत होता है। ऐसा न होने से आपसी प्रेम में कमी आती है।

भोजन कक्ष

Dining Room

वास्तु शास्त्र के अनुसार भोजनकक्ष पश्चिम दिशा में होना सर्वश्रेष्ठ है। पश्चिम दिशा में भोजन शाला होने से भोजन करने में जितनी शांति, सुख, संतोष मिलता है वह अन्यत्र नहीं मिलता। ऐसा भी कहा जाता है कि अतृप्त भूतादि आत्माएं पश्चिम में भोजन शाला रहने से शान्त एवं तृप्त होती हैं। यदि पश्चिम में भोजन शाला बनाई जाती है तो वास्तु में सुख शांति की प्राप्ति होती है।

धन धान्य भंडार कक्ष

Room for Grantay

धन-धान्य का भण्डार यदि जमीन के नीचे रखा जाना हो तो वायव्य दिशा में बनाना चाहिए। यदि तल से ऊपर बनाना हो तो नैऋत्य दिशा सर्वोत्तम है क्योंकि इस दिशा में अधिकाधिक भारी वस्तुएं रखने का विधान है।

यदि मकान का मुख दक्षिण या पश्चिम की ओर है तो भूमिगत अन्न भंडार सामने के हिस्से में नहीं बनाना चाहिए।

पूर्व मुख वाले मकान में अथवा उत्तर मुख वाले मकान में भी भूमिगत अन्न भंडार उत्तरी ईशान या पूर्वी ईशान में बनाना चाहिए।

कुछ अन्य वास्तु शास्त्रज्ञ यह मानते हैं कि भंडार गृह वायव्य में ही बनाना चाहिए। यह धन-धान्य की वृद्धि तथा सुख, समाधान, शांति प्रदान करता है। थोड़ा सा भंडार भी परिवार के लिए सुख का कारण होता है। भंडार हमेशा भरा रहता है।

बैठक कक्ष
Living Room

बैठक कक्ष भवन का ऐसा कक्ष होता है जहां बैठकर व्यापार-व्यवसाय एवं अन्य महत्त्वपूर्ण चर्चाएं की जाती हैं। रिक्त समय में गपशप करने का भी यही स्थान होता है। इसके लिए उत्तर दिशा में बैठक कक्ष बनाना चाहिए। इससे चर्चाएं सार्थक होती हैं तथा प्रश्नों का उत्तर मिलने की आशा होती है।

विभिन्न दिशाओं में बैठक कक्ष बनाने के फल

क्रं.	दिशा	परिणाम
1	पूर्व	उत्तम वार्तालाप, आपसी विश्वास में वृद्धि
2	आग्नेय	निरर्थक वार्तालाप
3	दक्षिण	मतभेद, वैमनस्य
4	नैऋत्य	विचार शैथिल्य एवं अश्लील भावना
5	पश्चिम	उत्साहवर्धक नहीं
6	वायव्य	आपसी नाराजगी, भ्रम
7	उत्तर	सर्वोत्तम, शांतिपूर्वक वार्तालाप, समाधान प्राप्ति
8	ईशान	उत्तम चर्चा

वास्तु में रिक्त स्थान का महत्त्व
Importance of open space in Vaastu

वास्तु निर्माण करते समय यह समझ लेना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि रिक्त स्थान जितना अधिक उत्तर या पूर्व की ओर रखा जायेगा तथा दक्षिण और पश्चिम की ओर जितना कम रखा जाएगा, उतना ही उत्तम माना जाता है। यदि दक्षिण या पश्चिम में रिक्त स्थान हो तो वहां नया वास्तु कार्य कर लेने से दोष कम हो जाते हैं।

विभिन्न दिशाओं में रिक्त स्थान रहने का फल

क्रं.	दिशा	परिणाम
1	पूर्व	कार्य सम्पादन के लिए शक्ति प्राप्ति
2	आग्नेय	महिलाओं को स्वास्थ्य हानि
3	दक्षिण	सर्वत्र कुफल
4	नैऋत्य	अशुभ
5	पश्चिम	अशुभ
6	वायव्य	मध्यम
7	उत्तर	ऐश्वर्य लाभ
8	ईशान	उत्तम, पुत्र प्राप्ति, विद्या लाभ

तलघर
Basement

वर्तमान युग में भूमि की कमी को पूरा करने की दृष्टि से तलघर की रचना होने लगी है। लोग उसका उपयोग निरर्थक भारी सामान अथवा दुकान का माल रखने के लिए करते हैं। तलघर का निर्माण यदि अनुकूल दिशा में किया गया तो इसका सीधा प्रभाव वास्तु निर्माता को भोगना पड़ता है। यदि सही योजना बनाकर निर्माण नहीं किया जाता तो वास्तु के निर्माण में बाधा

आती हैं, और कार्य सम्पन्न नहीं हो पाता। अनेकों ऐसे उदाहरण प्रत्यक्ष देखने में आते हैं। वास्तु से संबंधित कई लोगों की मृत्यु हो जाती है, बीमारी घेरे रहती है, अथवा आर्थिक क्षति आदि उठानी पड़ जाती है। निर्माण कार्य दसों साल तक अवरुद्ध रहता है। वास्तु निर्माणकर्ता कम से कम भूमि में अधिकाधिक जगह निकालने हेतु दिशाओं का ध्यान रखे बिना वास्तु निर्माण कार्य तथा तलघर आदि का निर्माण कराते हैं। वे सोचते हैं कि अतिरिक्त सामान या निरर्थक सामान तलघर में भर देंगे, अथवा तलघर खाली पड़ा रहने देंगे। किन्तु वे सुपरिणाम के स्थान पर दुष्परिणाम पाते हैं। अतएव यह अपेक्षित है कि किसी भी वास्तु का निर्माण पूरे सोच-विचार के साथ वास्तु शास्त्र के अनुकूल करना चाहिए। जगह का लोभ नहीं करना चाहिए। अत्यधिक आवश्यकता होने पर ही तलघर बनाना चाहिए।

वास्तु शास्त्र के अनुकूल बना तलघर वास्तु को शक्तिमान बनाता है। तलघर केवल ईशान, पूर्व या उत्तर दिशा में ही बनाना चाहिए। यदि उपयुक्त स्थान पर तलघर बनाना संभव न हो तो इसके निर्माण का विचार ही त्याग देना श्रेयस्कर है।

तलघर निर्माण करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है –

1. वास्तु की दक्षिण दिशा में तलघर बनाने से स्वामी को अत्यंत दुख सहन करना पड़ता है तथा पश्चिम दिशा का तलघर भी काफी कष्टदायक होता है।
2. यदि वास्तु के दक्षिण दिशा में तलघर बनाकर उसमें दुकान खोली जाए तो अपेक्षा के अनुकूल न तो व्यापार होता है न ही लाभ, लगातार परेशानियां व संकट बने रहते हैं।
3. उत्तर, पूर्व एवं ईशान का तलघर शुभफल देता है।
4. नैऋत्य दिशा में तलघर होने पर उसका उपयोग भारी सामान भरने या गैरेज के लिए लेना चाहिए। सम्पूर्ण वास्तु के नीचे तलघर कभी न बनवाएं।

पिछवाड़ा-सेवक गृह

सेवकों के लिए पिछवाड़े में पृथक गृह निर्मित करना आवश्यक होता है। भंडार कक्ष अथवा पशुशाला के लिए भी ऐसा करना पड़ता है। इसे दक्षिणी या

पश्चिमी भाग में दीवाल से सटकर बनाना चाहिए। उत्तर या पूर्व में यदि बनाना आवश्यक हो तो दीवाल से दूर हटकर बनाएं। कभी-कभी वास्तु दोषों को निवारण करने के लिए ऐसा करना आवश्यक हो जाता है। इसके लिए निम्न संकेत महत्त्वपूर्ण हैं-

1. भूखण्ड का विस्तार यदि उत्तर से दक्षिण को ओर हो तथा वास्तु निर्माण उत्तरी भाग में किया गया हो एवं दक्षिणी भाग रिक्त रखा गया हो तो दोष निवारण हेतु नैऋत्य में पिछवाड़े में सेवक का आवास गृह बनाए। इसका फर्श मूल वास्तु निर्माण से ऊंचा हो तथा इसका दरवाजा दक्षिण एवं पश्चिम में कदापि न हो। (चित्र सं-1)

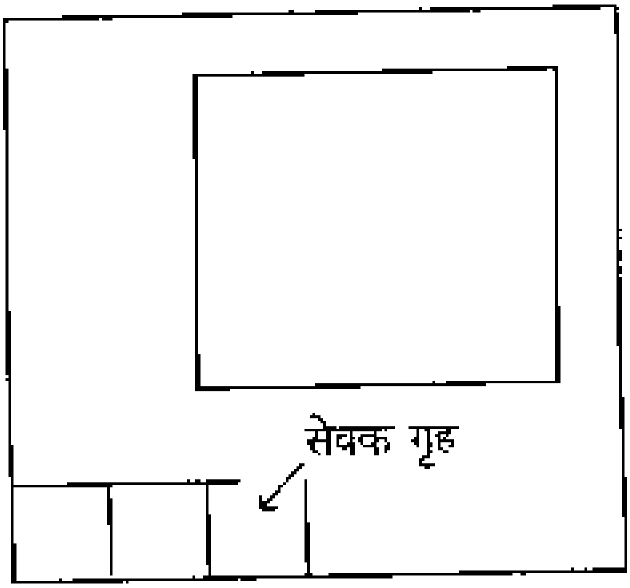

2. भूखण्ड का विस्तार यदि पश्चिम से पूर्व की ओर हो तथा वास्तु निर्माण पूर्वी भाग में किया गया हो तथा पश्चिमी भाग रिक्त रखा गया हो तो दोष निवारण हेतु नैऋत्य में पिछवाड़े में सेवक का आवास गृह बनवायें। उक्त सेवक गृह का फर्श मूल गृह के फर्श से नीचा न हो तथा दक्षिण में द्वार न हो। (चित्र सं-2)

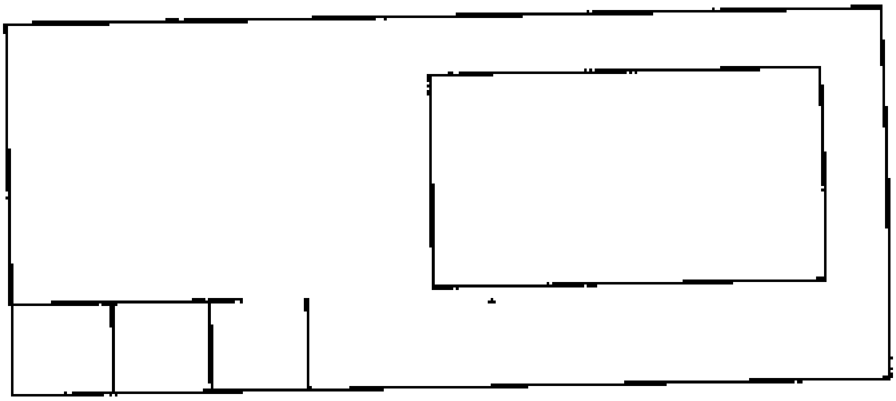

चित्र सं-2

3. भूखण्ड का विस्तार यदि उत्तर से दक्षिण की ओर हो तथा सड़क सिर्फ उत्तर की ओर हो और वास्तु निर्माण उत्तरी सीमा पर दक्षिणी भाग को रिक्त रखते हुए किया गया हो तो दोष निवारण के लिए कुछ उत्तरी भाग

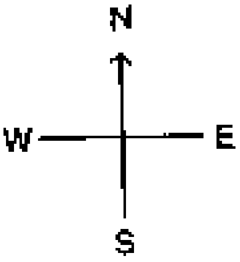

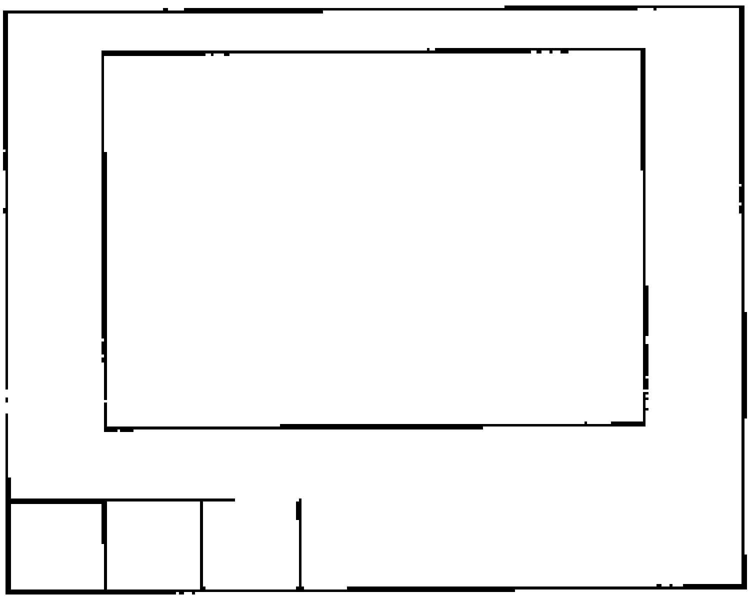

चित्र सं-3

को तुड़वा दीजिए तथा दक्षिणी कम्पाउन्ड दीवाल से लगकर सेवक गृह बनाएं। (चित्र सं-3)

यदि पूर्व में रिक्त स्थान न हो तो ईशान का कुछ भाग तुड़वा दीजिए। अन्यथा नैऋत्य निर्माण निरर्थक हो जाएगा।

कम्पाउन्ड दीवाल में द्वार न हो, यदि हो तो उसे बन्द कर दें। साथ ही सेवकगृह के पश्चिम में रिक्त स्थान न हो।

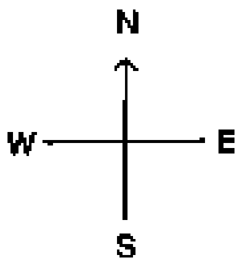

कचरा घर

दैनंदिन जीवन में स्वच्छता के लिए घर की सफाई करके कचरा निकालना आवश्यक है। घर में मलिन वस्तुएं एकत्र होने से निवासी जनों के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। मन में कुविचारों का आगमन होता है। कचरा कभी भी मुख्य द्वार के सामने एकत्र नहीं करना चाहिए। कचरा घर ऐसा हो जहां से हवा के साथ कचरा उड़कर वापस घर में प्रवेश न करे। स्वच्छ घर में रहने वालों को स्वाभाविक रूप से प्रसन्नता एवं यश की प्राप्ति होती है।

यदि भूखण्ड के उत्तर एवं पूर्व में सड़क हो तथा ईशान में दीवाल से लगकर कचरा, कोयला या पत्थरों का ढेर हो तो यह अशुभ है। इससे शत्रुता, अकालमृत्यु, अपराधी मानसिकता का विकास इत्यादि परिणाम दृष्टिगोचर होते हैं। (चित्र क-1)

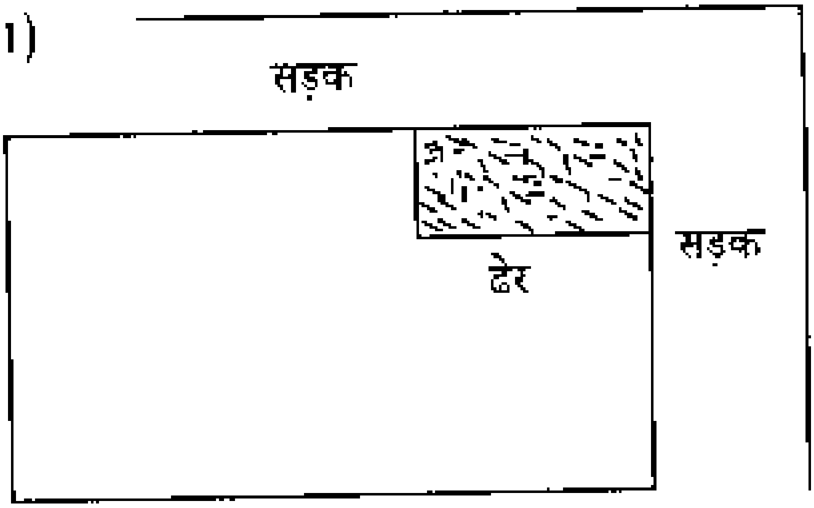

चित्र क-1

यदि भूखण्ड में पूर्व की ओर सड़क हो तो पूर्व की ओर कम्पाउन्ड वाल से लगकर पत्थरों का ढेर लगा होना धन हानि, संतति नाश का कारण है। (चित्र क-2)

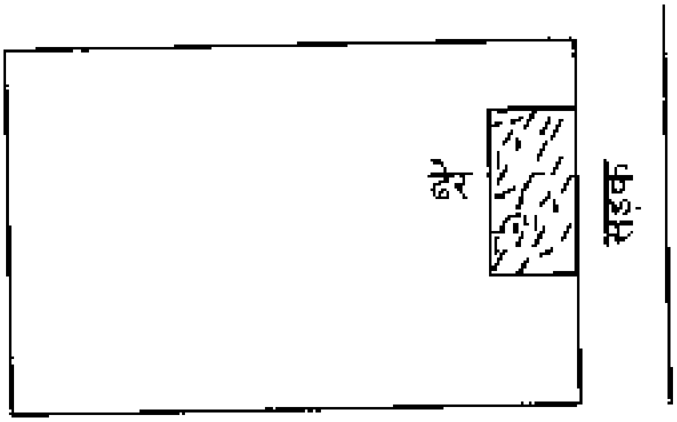

चित्र क-2

भूखण्ड के उत्तर की ओर सड़क होने पर उत्तर की ओर ऐसा ढेर होना धन हानि का कारण है।

दक्षिण की ओर सड़क वाले भूखण्ड में दक्षिण दीवाल से लगकर ऐसा ढेर सुख वैभव प्रदाता है। (चित्र क-3)

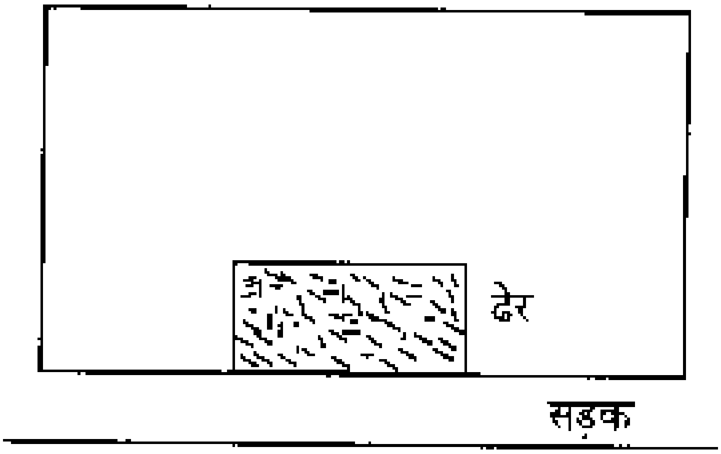

चित्र क-3

यदि ऐसा ढेर पश्चिम की ओर सड़क वाले भूखण्ड में पश्चिम में ही दीवाल से लगकर हो तो धनलाभ होता है। (चित्र क-4)

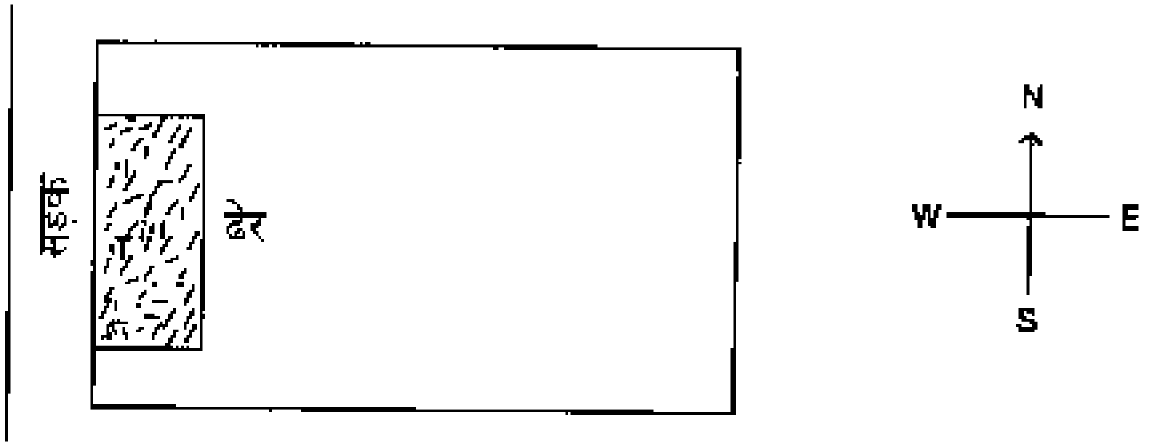

चित्र क-4

यदि भूखण्ड के दक्षिण एवं पश्चिम दोनों ओर सड़क हो तथा ऐसा ढेर नैऋत्य में लगाया हो तो शुभ है।

जल एवं जलकूप विचार
Provision for Water & Borewells

जल प्रत्येक प्राणी की अनिवार्य आवश्यकता है। जल के बिना जीवन संभव नहीं है। मनुष्यों को अपने दैनिक उपयोग के लिए जल की आवश्यकता होती है। यह कुएं, नलकूप, हैण्डपम्प अथवा नल प्रणाली से प्राप्त किया जाता है। यदि नल प्रणाली न हो अथवा अतिरिक्त जल की आवश्यकता पड़ती हो तो ऐसी स्थिति में जल के लिए अतिरिक्त व्यवस्था के रूप में कुएं अथवा नलकूप या हैण्ड पम्प का आश्रय लिया जाता है। वास्तु निर्माण करते समय यह अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिए कि नलकूप या कुआ कहां खोदा जाए।

कुंआ खोदने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त दिशा पूर्व, उत्तर या ईशान होती है। अन्य दिशाओं में कुंआ खोदना विपरीत फलदायक होता है। कुएं से पानी निकालते समय मुख उत्तर या पूर्व की ओर होना चाहिए।

साधारणत: 40 हाथ से कम गहरे एवं 4 हाथ से कम चौड़े कुएं को कूपिका कहते हैं। कुएं 40 हाथ से 400 हाथ तक के भी खोदे जा सकते हैं। कुंआ जितना गहरा होगा तथा उसमें जितना अधिक पानी होगा वह उतना ही श्रेष्ठ माना जाता है।

वर्तमान में जल एकत्र करने के लिए भूमिगत टांके बनाए जाते हैं। ये टांके भी ईशान दिशा अथवा उत्तर या पूर्व में बनाना चाहिए। कुंए या जल टांका बनाते समय यह ध्यान रखें कि यह मुख्य दरवाजे के सामने न हो।

कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाशस्तैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्य वृद्धिः।
सूयोर्नाशः स्त्रीविनाशो मृतिश्चसम्पतपीड़ा शत्रुतः स्याच्च सौख्यम्।।

- विश्वकर्मा प्रकाश

विभिन्न दिशाओं में कुंआ खोदने का फल

क्रं.	दिशा	परिणाम
1	पूर्व	धन वृद्धि, ऐश्वर्य वृद्धि
2	आग्नेय	पुत्र मरण
3	दक्षिण	स्त्री मरण
4	नैऋत्य	गृहस्वामी मरण
5	पश्चिम	धन लाभ
6	वायव्य	शत्रुओं से अकारण पीड़ा
7	उत्तर	सुख समाधान की प्राप्ति
8	ईशान	गृहपति को तुष्टि पुष्टि
9	मध्यभाग	सम्पूर्ण धन नाश

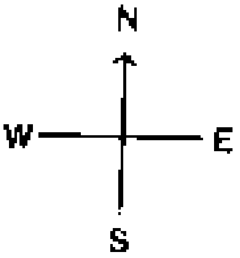

दिशाओं की अपेक्षा जलकूप विचार

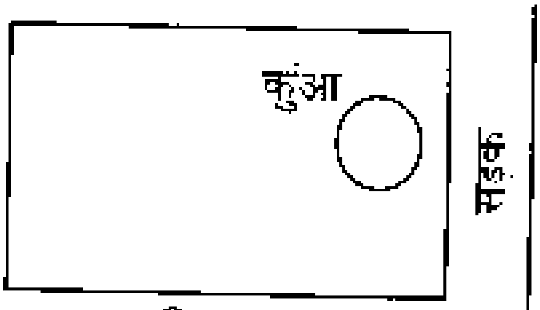

चित्र क-1

यदि भूखण्ड के पूर्व में सड़क हो तो पूर्व में ही जलकूप, कुंआ या बोर वेल आदि खुदवाना शुभ होता है। (चित्र क-1)

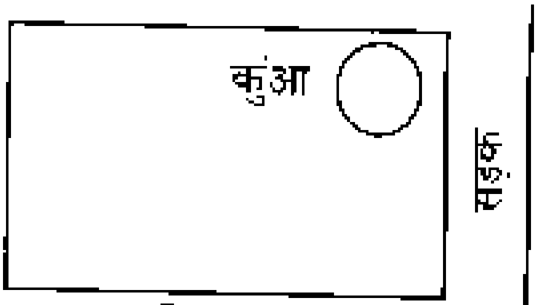

चित्र क-2

यदि सड़क भूखण्ड के पूर्व एवं उत्तर दोनों तरफ हो तो ईशान दिशा में कुंआ होना लाभदायक है। यह सर्व सुख एवं संतति सुख को प्रदान करता है। ईशान के अतिरिक्त कहीं भी कुंआ न खुदाए। यह हानिकारक सिद्ध होगा। (चित्र क-2)

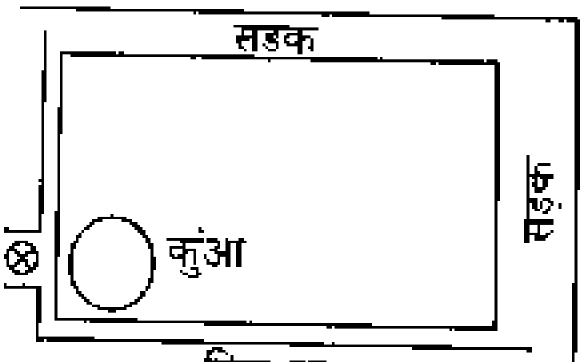

चित्र क-3

यदि भूखण्ड के दक्षिण एवं पश्चिम में सड़क हो तथा पश्चिमी नैऋत्य में मार्गारम्भ तथा कुंआ हो तो यह अत्यंत भयावह फल देता है। पुरुषों को दीर्घ रोग, आत्महत्या, अकालमृत्यु की

संभावना बनी रहती है। ऐसे भूखण्ड में नैऋत्य में कुंआ धनहानि, दीर्घ रोग के साथ उन्मादीपने को उत्पन्न करता है। (चित्र क-3)

यदि भूखण्ड के पश्चिम एवं उत्तर में सड़क हो तो वायव्य में कुंआ या गड्ढा कतई न खुदाएं। यदि ऐसे भूखण्ड में ईशान दिशा से वायव्य दिशा नीची हो तथा वायव्य में गड्ढे हों तो मुकदमेबाजी एवं दीर्घरोग की संभावना रहेगी। दिवालियापने का खतरा रहेगा। मकान बिकने की हालत भी बन सकती हैं। (चित्र क-4)

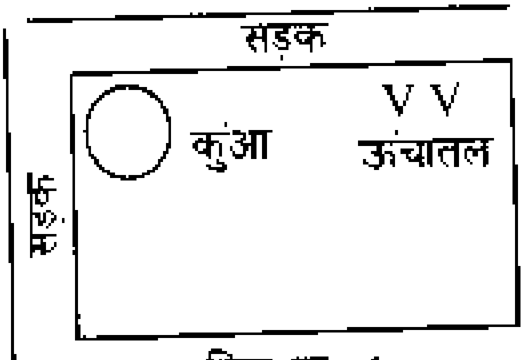

चित्र क-4

यदि भूखण्ड के दक्षिण में सड़क हो तो दक्षिण में कुंआ या बोरवेल बनाना अत्यंत अशुभ है व धनहानि के साथ ही दुर्घटना में मृत्यु होने की संभावना है। (चित्र क-5)

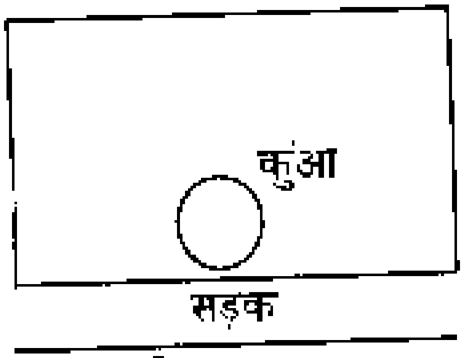

चित्र क-5

यदि भूखण्ड के पूर्व एवं दक्षिण में सड़क हो तथा मुख्य प्रवेश दक्षिण में हो एवं वास्तु का निर्माण कार्य दक्षिण एवं पश्चिमी सीमा से प्रारम्भ किया जाए एवं पूर्व तथा उत्तर में अपेक्षाकृत नीचा तल हो तथा ईशान में कुंआ या बोरवेल हो तो ऐसा मकान निवासी के लिए वैभवदायी होगा। ऐसे भूखण्ड में यदि आग्नेय में कुंआ हो तो महिलाओं एवं बच्चों को रोग, पारिवारिक कलह तथा दूसरी संतान की मृत्यु होना शक्य है। निवासी को अदालती चक्कर, अग्निभय, डकैती, अनैतिक चरित्र तथा कर्ज का सामना करना पड़ सकता है। पुरुषसंतति का अभाव होने से मकान लावारिस हो सकता है। मकान बिकने की हालत आ सकती है।

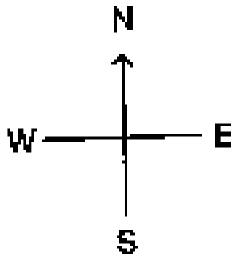

भूमि जल शोधन विधि

नल कूप या कुंआ खोदना सार्थक हो इस हेतु भूमि जल शोधन विधि से जल मिलने की संभावना ज्ञात कर लेना उचित है। इनके कुछ तरीके इस प्रकार है–

1. जिस जमीन में वृक्ष, गुल्म, लता, कमल, गोखरु, खस आदि वनोषधि गुल्म सहित हो अथवा कुश, दूर्वा या हरी घास जहां हमेशा बनी रहती है अथवा जामुन, बहेड़ा, अर्जुन, नागकेशर या मैनफल का पेड़ हो उसके पास ही 30 फुट की गहराई पर पानी की झिरें होती हैं।
2. पहाड़ी के ऊपर एक और पहाड़ी होने पर दूसरी पहाड़ी की तलहटी में 30 फुट पर निश्चित ही पानी मिलता है।
3. जहां पर गुंज, काश, कुशयुक्त जमीन हो या नीले रंग की मिट्टी या रेत हो तो वहां मीठा पानी मिलता है।
4. बालू सहित लाल रंग की जमीन होने पर वहां पानी कसैला होता है।
5. ब्राउन (भूरा मटमैला) रंग की जमीन में पानी खारा होता है।
6. अग्नि, भस्म, ऊंट, गधे के समान रंग वाली जमीन निर्जल होती है।
7. जमीन में चमकदार काले मेघों के समान रंग वाले पत्थर हों, वहां बहुत पानी होता है।
8. स्फटिक, मोती, स्वर्ण, नीले या सूर्यसम तेजस्वी जमीन होने पर निश्चित ही पानी मिलता है।
9. कबूतर के रंग के समान पत्थर हो या सोमलता वृक्ष हो, वहां निश्चित ही पानी होता है।

पानी की टांकी

यदि भूमिगत पानी की टांकी बनाना हो तो उसे उत्तर, पूर्व अथवा ईशान में बनाना सर्वश्रेष्ठ है। यदि भूमि के ऊपर ओवर हैड टैंक पानी के संचय के लिए बनाना हो तो उसे वायव्य अथवा उत्तर दिशा में बनाना चाहिए। आग्नेय दिशा में कभी भी पानी की टांकी नहीं बनाना चाहिए। अन्य दिशाओं में जल संचय करने से विविध परेशानियां उत्पन्न होती हैं।

जल निकास विचार
Chapter for Water Drainage

आवास गृहों तथा अन्य वास्तु संरचनाओं में जल प्रवाह एवं जल निकास की व्यवस्था करना आवश्यक होता है। घर में उपयोग के उपरान्त व्यर्थ जल के निकास के लिए नाली की व्यवस्था की जाती है। वर्षा जल के प्रवाह के लिए भी यह अत्यंत आवश्यक है।

साधारणतः जल प्रवाह की व्यवस्था निवासगृह के धरातल के अनुरूप अथवा सार्वजनिक नाली व्यवस्था के अनुरूप ही की जाती है। वास्तु निर्माण के समय यदि जल निकास की व्यवस्था दिशा शास्त्र के अनुकूल रखी जाएगी तो निश्चित ही इसके परिणाम निवासकर्ता के लिए शुभफलदायक होंगे।

जिन मकानों के उत्तर में सड़क हो उन्हें व्यर्थ जल प्रवाह ईशान दिशा की तरफ रखना चाहिए।

यदि मकान के उत्तर एवं पूर्व दोनों में सड़क हो तो भी ईशान में जलप्रवाह रखना श्रेयस्कर है। ऐसा करना श्रेष्ठ, वैभव वृद्धि तथा वंशानुक्रम निरन्तरता में सहायक है।

यदि सिर्फ पूर्व दिशा में सड़क वाला मकान हो तो पूर्व की ओर भी जलप्रवाह उत्तम है। यह स्वास्थ्य वर्धक तथा घर के पुरुष सदस्यों के लिए शुभ माना जाता है।

यदि मकान के दक्षिण में सड़क हो तथा पूर्व या पश्चिम में सड़क हो तो ऐसी दशा में क्रमशः आग्नेय अथवा नैऋत्य में जलनिकास व्यवस्था का प्रभाव आवासकर्ता के लिए विपरीत फलदायी होता है।

यदि मकान के सिर्फ दक्षिण दिशा में सड़क हो तो जलप्रवाह उत्तर की ओर रखा जाना चाहिए। उत्तर दिशा मातृदिशा मानी गई है अतः इससे महिलाओं को आरोग्य प्राप्ति होती है।

यदि जलप्रवाह पूर्व की ओर घुमाया जाए तो घर के पुरुष सदस्यों के लिए आरोग्य प्रदाता तो होता ही है साथ ही नाम, यश, कीर्ति की भी प्राप्ति होती है।

यदि किसी कारण दक्षिण दिशा में ही जल निकास करना आवश्यक हो तो प्रथमतः जल प्रवाह ईशान की ओर ले जाकर पश्चात् पूर्वी कम्पाउन्ड वाल से

लगाकर ढकी नाली से दक्षिण में ले जाना चाहिए। तथा नाली को एक छोटी पृथक कम्पाउन्ड वाल से पृथक कर देवें। ऐसा करने से दक्षिण जल प्रवाह का दोष शमन हो जाता है।

यदि मकान के पश्चिम और उत्तर दोनों ओर सड़क हो तो उत्तरी वायव्य दिशा से जल निकास करना अशुभफलदायी है।

यदि मकान के पश्चिम में ही सड़क हो तो जल निकास पूर्व अथवा उत्तरी ईशान में करना अत्यंत श्रेयस्कर है। यदि जल निकास दक्षिणाभिमुखी करना अपरिहार्य हो तो प्रथमतः जल निकास ईशान की ओर करके पश्चात् उत्तरी दीवाल से लगकर नाली बनाएं तथा इसे नैऋत्य में ले जाएं। नाली को पृथक करते हुए अतिरिक्त कम्पाउन्ड वाल बनाएं। यदि पश्चिम में जल निकास किया जाएगा तो पुरुषों के लिए दीर्घ रोग का कारण होगा।

धरातल प्रकरण
Floor Level

वास्तु शास्त्र की मान्यता के अनुसार धरातल का स्वाभाविक उतार पूर्व दिशा अथवा उत्तर दिशा की ओर होना श्रेष्ठ माना जाता है। घर के सामने का भाग भी नीचा हो तथा पीछे उत्तरोत्तर ऊंचा होना जाना चाहिए। धरातल पर जो फर्श बनाया जाता है वह फर्श भी इसी अनुसार उतार वाला बनाया जाना चाहिए। निर्माण का मुख उत्तर या पूर्व की ओर होने पर तो फर्श या तल का उतार अवश्य ही उत्तर या पूर्व की ओर होना चाहिए। यह आशानुकूल परिणाम देता है। घर में आपसी मेल मिलाप, सूझबूझ तथा सुख शान्ति के लिए यह आवश्यक है।

दक्षिण या पश्चिम दिशा की ओर उतार होने पर स्वामी को धनहानि एवं परेशानियां निरंतर बनी रहती हैं। अतएव निर्माण कार्य में तल के उतार का ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है।

यह भी स्मरणीय है कि स्नानगृह का निकला हुआ जल प्रवाह तथा वर्षा का एकत्र जल भी नैसर्गिक या निर्माण किए हुए तल से उत्तर या पूर्व की ओर ही प्रवाहित हो। यह जल सामने कीचड़ के रूप में एकत्र न हो यह भी आवश्यक है। यह जल न तो जमाव बनाए, न ही अपने घर से बहकर अन्य के घर में जाकर एकत्र हो या बहे। अन्यथा अशुभ, धनहानि, वादविवाद, गृहकलह तथा आपसी विश्वास की हानि जैसे परिणाम समक्ष में आते हैं।

दूसरे के घर का पानी अपने घर में आना हानिकारक होता है। अपने घर का पानी उत्तर, पूर्व या ईशान दिशा में प्रवाहित होता है तो शुभ फलदायक है। आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य दिशा में जल बहने से मृत्यु, दुख, रोग, क्लेशादि होता है। शत्रु, संताप, धननाश, अग्निभय भी होने की संभावना है। घर का पानी बाहर न जाकर अपने वास्तु में ही रूक जाना भी अशुभ है।

तल के उतार एवं जल बहाव की दिशा का फल

क्र.	दिशा	परिणाम
1.	पूर्व	आयु, बल वृद्धि, ऐश्वर्य लाभ, राज सम्मान, पारिवारिक सुख समृद्धि
2.	आग्नेय	स्त्री रोग, अग्निभय, शत्रु संताप, क्लेश, दुख
3.	दक्षिण	धनहानि, मृत्युभय, रोग
4.	नैऋत्य	चोरभय, धननाश, रोग, जनहानि
5.	पश्चिम	धन-धान्य हानि, रोग, शोक, संताप
6.	वायव्य	कुलनाश, स्त्री मृत्यु, शत्रुवृद्धि, चिन्तावृद्धि
7.	उत्तर	पुत्र, धन, भोग, व्यापार, सुख में वृद्धि
8.	ईशान	सुख, सौभाग्य, धन, ऐश्वर्य लाभ, वंशवृद्धि, धर्मवृद्धि

इस प्रकार वास्तु निर्माण के समय तल एवं जल बहाव की दिशाओं का ध्यान रखना अति महत्त्वपूर्ण है।

पंचम शिल्प रत्नाकर ग्रंथ में उल्लेख है–

अलिन्दाश्चैवलिन्दाश्च वामतन्त्रानुसारत:।
वाह्य द्वारं तु कर्तव्यं किंचिन्न्यूनाधिकं भवेत्।।

- पंचम शिल्प रत्नाकर गा. 166

घर के कमरे से उसके आगे का दालान नीचे की ओर होना चाहिए तथा उस दालान से आगे का परसाल नीचा करना चाहिए। इसी प्रकार आगे जितने भी कमरे या खंड हों वे नीचे ही करने चाहिए, ऊंचे नहीं।

धरातल के शुभाशुभ परिणामों का विचार करने के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न दिशाओं में उनके आपेक्षिक चढ़ाव एवं उतार का विचार किया जाए। अष्ट दिशाओं में चढ़ाव का परिणाम विभिन्न दिशाओं में निम्न सारणी के अनुरूप शुभाशुभ होता है–

क्रं.	चढ़ाव दिशा	अपेक्षा	परिणाम
1	ईशान	–	आर्थिक विपन्नता, दिवालियापन
2	आग्नेय	नैऋत्य से ऊंचा	अशुभ
3.	आग्नेय	वायव्य व ईशान से ऊंचा	धन लाभ
4	नैऋत्य	–	प्रतिष्ठा
5	वायव्य	–	धन हानि
6	पूर्व	–	वंशक्षय
7.	पश्चिम	–	प्रतिष्ठा, वंश वृद्धि
8	उत्तर	–	धन हानि, स्त्री दुख, दीर्घरोग
9	दक्षिण	–	प्रगति, स्वास्थ्य लाभ

इसी प्रकार अष्ट दिशाओं में उतार या ढलान का प्रभाव भी निम्नलिखित सारणी से स्पष्ट हो जाएगा–

क्रं.	उतार दिशा	अपेक्षा	परिणाम
1	ईशान	–	सर्वत्र से धनागम
2	आग्नेय	नैऋत्य से नीचा	उत्तम
3	आग्नेय	वायव्य व ईशान से नीचा	अग्निभय, शत्रुभय, अपराधी मानसिकता
4	नैऋत्य	–	विपत्ति, दीर्घरोग, अकाल मृत्यु
5	वायव्य	ईशान से नीचा	शत्रुता, रोग
6	वायव्य	आग्नेय व नैऋत्य से नीचा	शुभ
7	पूर्व	–	धन, आयु, प्रतिष्ठा प्राप्ति
8	पश्चिम	–	वंशक्षय, रोग
9	उत्तर	–	धनागम
10	दक्षिण	–	रोग, धन संकट

गृह चैत्यालय
Worship Place at Home

जैनाचार्यों ने श्रावक के छह आवश्यक कर्तव्य कहे हैं। वे इस प्रकार हैं-
1. देव पूजा 2. गुरु उपासना 3. स्वाध्याय 4. संयम 5. तप 6. दान

इनमें भी देवपूजा एवं दान को सर्वाधिक उपयोगिता वाला माना गया है। श्रावकों को अपने आवश्यक कर्तव्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक है कि वे अपनी धार्मिक क्रियाओं को पूरा करने के लिए अनुकूल चैत्यालय आदि में जा सकें। साधारणतः नगरों में एवं ग्रामों में भी जिन मंदिरों में जाकर पूजनादि कार्य किए जाते है किन्तु अनेकों स्थानों पर या तो मंदिर नहीं है अथवा श्रावक के निवास से इतनी दूर हैं कि वह मन्दिर तक दैनिक रूप से नहीं जा पाता। श्रावक के व्यवसाय अथवा सेवारत होने पर भी कई बार यह संभव नहीं हो पाता है।

नगर या ग्राम में मन्दिर हो या न हो, प्रत्येक श्रावक को अपने निवास में एक पृथक् चैत्यालय अवश्य ही बनवाना चाहिए ताकि परिवार की धर्मसाधना तथा बालकों में धार्मिक संस्कारों का आरोपण हो सके। यदि गृह चैत्यालय में जिन प्रतिमा स्थापित करना शक्य न हो तो एक कक्ष में जिनेन्द्र देव, तीर्थक्षेत्रों तथा मुनियों के अच्छे चित्र अवश्य ही स्थापित करना चाहिए। अपनी धर्माराधना, भजन, स्तुति, आरती आदि वहां पर अवश्य करनी चाहिए। वास्तु शास्त्र के नियमों को ध्यान में रखते हुए यदि गृह चैत्यालय की स्थापना की जाएगी अर्थात् दिशाओं का समुचित ध्यान रखा जाएगा तो निश्चय ही वहां पर किए गए पूजा-पाठ, आरती, स्वाध्याय, जप, उपासना आदि शुभ कार्य हमारे लिए शुभ फल दाता होंगे; पुण्यास्रव का कारण बनेंगे तथा पारिवारिक सुख-शांति, धन-धान्य वृद्धि, समृद्धि आदि प्राप्त होगी।

वास्तु शास्त्रों में देव पूजा के लिये ईशान दिशा सर्वाधिक उपयुक्त मानी गई है। इस दिशा में गृह चैत्यालय स्थापित करने से इच्छित फल की प्राप्ति होती है। परिवार में सभी को सुख-शांति एवं समृद्धि की प्राप्ति होती है। ईशान दिशा का महत्त्व इसलिए अधिक है क्योंकि यह दोनों उत्तम दिशाओं यानि पूर्व एवं उत्तर के मध्य में स्थित है। दोनों दिशाओं का सुप्रभाव इस दिशा में प्राप्त होता है। जैनेतर परंपराओं में भी ईशान दिशा को ईश्वर या परमात्मा की दिशा माना जाता है तथा इसे ही ईश्वर पूजा के लिए उपयुक्त माना गया है।

गृह चैत्यालयों को विभिन्न दिशाओं में बनाने के परिणाम

क्रं.	दिशा	परिणाम
1	पूर्व	ऐश्वर्य लाभ, मान सम्मान, प्रतिष्ठा प्राप्ति
2	आग्नेय	पूजा, आराधना निष्फल
3	दक्षिण	शत्रु बाधा में वृद्धि
4	नैऋत्य	भूत पिशाच बाधा में वृद्धि
5	पश्चिम	ऐश्वर्य हानि, धन नाश
6	वायव्य	रोग उत्पत्ति
7	उत्तर	धन लाभ, ऐश्वर्य प्राप्ति
8	ईशान	सुख, शांति, सर्वकार्य सफलता

इस प्रकार दिशाओं का ध्यान रखकर समुचित आगमानुकूल माप से वेदी का निर्माण शुभ फलदायक दिशा में करना चाहिए।

भित्ति संलग्नबिम्बश्च पुरुषः सर्वथाऽशुभः।
चित्रमयाश्च नागाद्या भित्तौ चैव शुभावहा।।

- द्वादश रत्न, शिल्प रत्नाकर 205

दीवाल से स्पर्श कर स्थापित की हुई मूर्ति सर्वथा अशुभ फल देने वाली होती है, किन्तु चित्र बने हुए नागादि देव दीवाल पर बनाए जाएं तो शुभ फल देने वाले होते हैं। दीवाल में बने हुए आले अथवा आलमारी, कपाट आदि में स्थापित की हुई प्रतिमा शुभफल नहीं देती हैं। अतः घर में माप के अनुसार शुभ आय से सहित वेदी बनाकर प्रतिमा की स्थापना करना चाहिए।

स्थिरं न स्थापयेद् गेहे गृहीणां दुख कृद्धयत।

- शिल्पस्मृति वास्तुविद्यायाम् 130

गृह चैत्यालय में कभी भी स्थिर प्रतिमा स्थापित नहीं करना चाहिए। यह गृहस्थ के लिए दुख का कारण होती है।

गिह देवालं कीरइ दारुमय विमाणपुप्फयं नाम।
उववीढ पीठ फरिसं जहुत्त चउरंस तस्सुवरिं।।

- वास्तुसार प्र. 3 गा. 63

गृह चैत्यालय में पुष्पक विमान के समान आकार का काष्ठ का मन्दिर बनाना चाहिए। उस चैत्यालय में पीठ, उपपीठ तथा उस पर समचौरस (वर्गाकार) फर्श बनाना चाहिए। चारों कोणों पर चार स्तम्भ, चारों दिशाओं में चार द्वार, चारों ओर तोरण, चारों ओर ध्वजा, ऊपर कनेर के पुष्प के सरीखे पांच शिखर (चारों कोनों पर चार गुमटी तथा बीच में गुम्बज) बनाना चाहिए।

कुछ अन्य शास्त्रों के अनुसार गृह चैत्यालय एक, दो या तीन द्वार का तथा एक ही गुमटी या शिखर वाला भी बनाया जा सकता है।

गर्भगृह से छज्जा का विस्तार 5:4 या 4:3 अथवा 3:2 होना चाहिए। गर्भगृह के विस्तार से उदय सवाया तथा निर्गम आधा बनाना चाहिए।

शिखर बद्ध लकड़ी का मन्दिर गृह चैत्यालय में बनाना, पूजना या रखना उपयुक्त नहीं है। किन्तु तीर्थयात्रा के समय मार्ग में जिनबिम्ब दर्शन हेतु साथ में ले जाना उचित है।

गिह देवालय सिहरे धयदंडं नो करिज्जइ कयावि।
आमलसारं कलसं कीरइ इअ भणिय सत्थेहिं।।

- वास्तुसार प्र. 3 गा. 68

गृह चैत्यालय के ऊपर ध्वजदंड कभी नहीं चढ़ाना चाहिए। किन्तु आमलसार कलश ही करना चाहिए (कदाचित् कलश चढ़ा सकते हैं)।

आमलसार

गृह चैत्यालय की पीठ वास्तु की ओर नहीं आना चाहिए। यह दोष परिवार को तन-मन-धन तथा जन की हानि कराता है।

गृह चैत्यालय में स्थापित की जाने वाली तीर्थंकर की मूर्ति गृहपति की राशि के अनुकूल होना चाहिए।

दीवाल और छज्जा सहित गृह चैत्यालय ध्वज, वृषभ या गज आय के अनुकूल ही बनाना चाहिए।

आय का ज्ञान और नाम

गिहसामिणो करेणं भित्तिविणा मिणसु वित्थरं दीहं।
गुणि अट्टेहि विहत्तं सेस धयाई भवे आया।।
धय धूम सीह साणा विस खर गय धंख अट्ट आय इमे।
पूव्वाइ-धयाइ-ठिई फलं च नामाणुसारेण।।

- वास्तुसार प्र. 1 गा. 51-52

चारों तरफ नींव की भूमि को अर्थात् दीवार करने की भूमि को छोड़कर मध्य में जो लम्बी और चौड़ी भूमि हो उसको गृहस्वामी के हाथ से नाप कर जो लम्बाई चौड़ाई आवे, उनका आपस में गुणा कर क्षेत्रफल निकालें। उसे 8 से भाग देने पर जो शेष आए उसे आय जानना चाहिए।

आय की सारणी

शेष	1	2	3	4	5	6	7	8
आय	ध्वज	धूम्र	सिंह	श्वान	वृष	खर	गज	ध्वांक्ष
दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान

इनमें विषम अंक वाली आय शुभ तथा सम अंक वाली अशुभ हैं।

गृह चैत्यालय प्रतिमा प्रकरण

प्रतिमा काष्ठ लेपाश्म दन्त चित्रायसा गृहे।
मानाधिका परिवार रहिता नैव पूज्यते।।

- शिल्प रत्नाकर 19

काष्ठ, पाषाण, लेप, हाथीदांत, लौह और रंग से चित्रित कर बनाई गयी प्रतिमा तथा ग्यारह अंगुल से बड़ी प्रतिमा अपने गृह चैत्यालय में नहीं रखना चाहिए।

इसके अतिरिक्त बिना परिकर की अर्थात् सिद्धों की प्रतिमा भी गृह चैत्यालय में नहीं रखना चाहिए। मल्लिनाथ, नेमिनाथ तथा वीरप्रभु की प्रतिमाएं भी गृह चैत्यालय में न रखें, शेष इक्कीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएं रखना चाहिए। इन तीन तीर्थंकरों की प्रतिमाएं बालयति होने के कारण अतिवैराग्यकर होने से गृहस्थ के गृह चैत्यालय में रखना अनुपयुक्त माना जाता है। इस बारे में श्री सकलचंद्रोपाध्याय कृत प्रतिष्ठाकल्प में उल्लेख है–

मल्ली नेमी वीरो गिह भवेण सावए ण पूइज्जइ।
इगवीसं तित्थयरा संतिगरा पूइया वन्दे।।

इसी प्रकार एक अन्य श्लोक है–

नेमिनाथो वीर मल्लीनाथो वैराग्य कारकः।
त्रयो वै भवने स्थाप्या न गृहे शुभदायकाः।।

– वास्तुसार पृ. 98

उमास्वामी श्रावकाचार में प्रतिमाओं के आकार के बारे में भी उल्लेख किया गया है। एक से ग्यारह अंगुलों की प्रतिमाओं में से विषमांगुलों की प्रतिमा इच्छित फल दायक होती हैं।

उमास्वामी श्रावकाचार में कहा है–

अथातः संप्रवक्ष्यामि गृह बिम्बस्य लक्षणं।
एकांगुलं भवेत् श्रेष्ठं द्वयंगुलं धननाशनं।।
त्र्यंगुले जायते वृद्धिः पीड़ास्याच्चतुरंगुले।
पंचांगुले सुबुद्धिस्यादुद्वेगस्तु षडंगुले।।
सप्तांगुले गवांवृद्धे बुद्धि हानिरष्टांगुले।
नवांगुले पुत्रवृद्धि धननाशो दशांगुले।।
एकादशांगुलबिम्बं सर्वकामार्थ साधनं।
एतत्प्रमाणमाख्यातम् तं ऊर्ध्वं न कारयेत।।

क्रं.	प्रतिमा आकार	परिणाम
1	एक अंगुल	श्रेष्ठ कारक
2	दो अंगुल	धननाश कारक
3	तीन अंगुल	धन धान्य वृद्धि कारक
4	चार अंगुल	रोग पीडाकारक
5	पांच अंगुल	उत्तम बुद्धि, ज्ञान वृद्धि कारक
6	छह अंगुल	उद्वेग कारक
7	सात अंगुल	धन धान्य व परिवार उन्नतिकारक
8	आठ अंगुल	बुद्धि क्षीणकारक
9	नौ अंगुल	संतान दायक
10	दस अंगुल	धनहानि कारक
11	ग्यारह अंगुल	सर्वार्थसिद्धिकारक

गृह चैत्यालय एवं जिनालय में सदोष प्रतिमा का फल

क्र.	प्रतिमा में दोष	परिणाम
1	दायीं या बायीं ओर तिरछी दृष्टि	धननाश, विरोध, भयोत्पत्ति, शिल्पी व आचार्य का नाश
2	नीची दृष्टि	पुत्र, धन व पूजकों को हानि, भय
3	ऊर्ध्व दृष्टि	राजा, राज्य, स्त्री व पुत्र नाश
4	स्तब्ध दृष्टि	शोक, उद्वेग, संताप, धननाश
5	रौद्र रूप	प्रतिमाकर्ता का मरण
6	कृश काय	धनक्षय
7	छोटा कद	यजमान का नाश
8	छोटा मुख	शोभा एवं कांतिक्षय
9	दीर्घ उदर	रोगोत्पत्ति
10	कृश उदर	दुर्भिक्ष
11	कृश हृदय	महोदर, हृदयरोग
12	नीचा कंधा	भ्रातृ मरण
13	नाभि लम्बी	कुलक्षय
14	कांख लम्बी	इष्ट वियोग
15	पतली कमर	प्रतिमा निर्माता का घात
16	आसन विषम	व्याधि
17	कमर के नीचे का भाग पतला	शिल्पियों का सुख नाश
18	नाक, मुख, पैर टेढ़े	कुल नाश
19	हाथ, भाल, नख, मुख पतले	कुल नाश

क्र.	प्रतिमा में दोष	परिणाम
20	अधिक मोटी या अधिक लम्बी	संपत्ति नाश
21	हंसती या रोती हुई	कर्ता की हानि
22	गर्व से भरे अंग वाली	कर्ता की हानि
23	नख भंग	शत्रुभय
24	अंगुली भंग	देश में विप्लव
25	नासिका भंग	कुल नाश
26	बाहु भंग	बंधन
27	पैर क्षय	द्रव्य क्षय
28	पाद पीठ भंग	स्वजन नाश
29	चिन्ह भंग	वाहन नाश
30	परिकर भंग	सेवक नाश
31	छत्र भंग	लक्ष्मी नाश
32	श्रीवत्स भंग	सुख नाश
33	आसन भंग	ऋद्धि नाश

पूजा करने की दिशा का फल

पश्चिमाभिमुखः कुर्यात् पूजा चेच्छ्रीजिनेशिनाम्।
तदास्यात्संततिच्छेदो दक्षिणस्यामसन्ततिः।।
आग्नेयां च कृता पूजा धनहानि दिनेदिने।
वायव्यां संततिर्नैव नैऋत्यां तु कुलक्षयः।।
ईशान्यां नैव कर्तव्या पूजा सौभाग्यहारिणी।
पूर्वस्यां शान्तिकर्त्री स्यादुत्तरस्यां धनाप्तये।।

क्र.	दिशा	परिणाम
1	ईशान	सौभाग्य हानि
2	आग्नेय	धन हानि
3	नैऋत्य	कुल क्षय
4	वायव्य	संतान अभाव
5	पूर्व	सुख, शांति, समाधान प्राप्ति
6	पश्चिम	संतति मरण
7	उत्तर	धन-धान्य, वैभव, प्रतिष्ठा प्राप्ति
8	दक्षिण	संतान अभाव

एक विशेष बात ध्यान में अवश्य रखना चाहिए कि पूजा करने वाले को चंदन से नौ अंगों में तिलक लगाकर ही पूजा करनी चाहिए अन्यथा इष्ट कार्य की सिद्धि नहीं होती।

देवस्थान विचार

गृहे प्रविशता वामे भागे शल्य वर्जिते।
देवतावसरं कुर्यात्सार्ध हस्तोर्ध्व भूमिके।।98।।
नीचैर्भूमि स्थितं कुर्यात् देवतावसरं यदि।
नीचैर्नीचैस्ततोवश्यं संतत्यापि समं भवेत्।।99।।

- उमास्वामी श्रावकाचार

देवस्थान बनाते समय इस बात को ध्यान में रखें कि उसे गृह प्रवेश करते हुए वाम भाग में शल्य रहित डेढ़ हाथ ऊंची भूमि पर देवस्थान (वेदी) बनाना चाहिए। यदि देवस्थान नीची भूमि पर बनाया जाएगा तो गृहस्थ अवश्य ही सन्तान हानि के साथ उत्तरोत्तर हीन अवस्था को प्राप्त होता जायेगा।

वास्तु विस्तार प्रकरण
Extension of Vaastu

कभी-कभी ऐसा अवसर आता है कि अपनी वास्तु से लगी हुई रिक्त भूमि या वास्तु विक्रयार्थ उपलब्ध होती है। ऐसी रिक्त भूमि या वास्तु खरीदकर अपनी पूर्व वास्तु में सम्मिलित करने से वास्तु की स्थिति बदल जाती है। इसका वास्तुशास्त्र की अपेक्षा से परिणाम का अध्ययन करने के उपरांत ही ऐसी भूमि या वास्तु का क्रय करना उचित है।

गेहाउवामदाहिण अग्गिम भूमी गहिज्ज जइ कज्जं।
पच्छा कहावि न लिज्जइ इअ भणियं पुव्वणाणीहिं।।

- वास्तुसार प्र. 1 गा. 158

यदि किसी विशेष कार्य से अधिक भूमि लेना पड़े तो घर के बायीं, सामने अथवा दाहिनी ओर की भूमि लेना चाहिए किन्तु घर के पीछे की भूमि कभी नहीं लेना चाहिए। यह पूर्वाचार्यों ने कहा है।

अन्य वास्तु शास्त्रियों के मतानुसार जमीन के पूर्व, उत्तर या ईशान दिशा में कोई जमीन मिलती है तो उसे अवश्य लेना चाहिए। उत्तरपूर्व में विस्तार होने के कारण यह गृहस्वामी के लिए यश, प्रतिष्ठा एवं समृद्धि का कारण बनती है। दक्षिण एवं पश्चिम की जमीन बिना मूल्य भी मिलती हो तो नहीं लेना चाहिए।

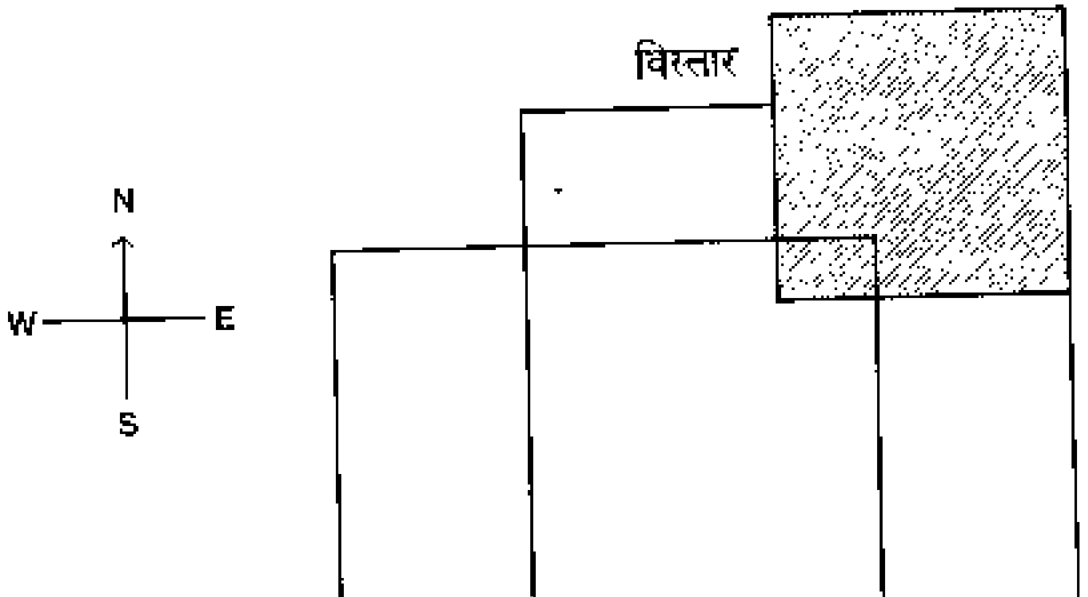

तैयार वास्तु का क्रय विचार
Purchase of Ready Built Vaastu

अनेकों अवसरों पर गृह स्वामी अपनी तैयार वास्तु को बेचने का इच्छुक होता है। आजकल अनेकों गृहनिर्माण संस्थाएं भी भवन तैयार करके बेचती हैं। ऐसे समय में हड़बड़ी में कोई भी वास्तु नहीं खरीदना चाहिए। वास्तु शास्त्र की व्याख्या के अनुरूप ही वास्तु बनी होने पर क्रय करना उचित है। यदि वास्तुशास्त्रज्ञ से परामर्श करके वास्तु क्रय की जाये तो उत्कृष्ट परिणाम प्राप्त होते हैं।

तैयार गृहों को बेचने का प्रसंग गृहस्वामी की आर्थिक या पारिवारिक परेशानियों के कारण भी आता है। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। मसलन वास्तु की ईशान दिशा की दीवाल कमजोर हो गई हो अथवा ईशान दिशा में शौचालय या रसोईघर हो। ईशान दिशा में सबसे ऊंचा भाग हो या ईशान दिशा का भाग कटा हो तो वास्तु बिकने के प्रसंग आ जाते हैं। यदि उपरोक्त वास्तु दोषों को सुधार लिया जाए तो परेशानियों से मुक्ति मिल जाती है।

दोषपूर्ण वास्तु नहीं खरीदनी चाहिए। निर्दोष वास्तु ही क्रेता के लिए लाभकारक हो सकती है। निर्दोष वास्तु हो तथा उसके पूर्व या उत्तर दिशा की ओर से आने जाने का मुख्य मार्ग हो तो उसे निःसंकोच क्रय किया जा सकता है।

वास्तु किराये पर देना
Leasing / Renting of Vaastu

कुछ लोगों का मत यह है कि यदि वास्तु किराये से दी जाएगी तो स्वामी को उसका शुभाशुभ फल नहीं होगा किन्तु वास्तु का स्वामित्व होने से वास्तु का परिणाम वास्तु स्वामी को अवश्य ही मिलता है। किरायेदार को भी वास्तु के प्रयोग करने के कारण उसके शुभाशुभ परिणामों को झेलना पड़ता है। किराये की राशि स्वामी के द्वारा ग्रहण किए जाने के कारण भी वह वास्तु के शुभाशुभ परिणामों का प्रभाव अवश्य ही पाता है।

यदि अपनी वास्तु किराये से देना है अथवा उसका कुछ भाग देना है तो उत्तर एवं पूर्व का भाग स्वयं के लिए रखना चाहिए तथा दक्षिण एवं पश्चिम का भाग किराये पर देना चाहिए।

मकान का ईशान भाग कभी भी किराये से न देवें। विशेषकर ऐसे भूखण्ड में जिनमें उत्तर एवं पूर्व में सड़क हो। यदि भूखण्ड के पूर्व में सड़क हो तथा मकान में ऐसा निर्माण किया गया हो कि एक भाग में रहना हो तथा दूसरा किराये से देना हो तो स्वयं पूर्वी या उत्तरी भाग में रहना चाहिए तथा दक्षिणी या पश्चिमी भाग किराये से देना चाहिए किन्तु वह भाग खाली रहने पर उस भाग में रहने आ जाएं। उसे खाली रखना ठीक नहीं है। इससे विविध परेशानियों का सामना करना पड़ सकता है। उत्तरी एवं पूर्वी दिशा में भार रखकर दक्षिणी एवं पश्चिमी दिशा खाली रखना अनुकूल नहीं है।

वास्तु दोषों का जितना प्रभाव स्वामी पर पड़ता है, उतना ही किरायेदार पर भी होता है। अतएव किराये से मकान लेते समय पूर्ण रूप से सजग रहना चाहिए, ताकि वास्तु दोषों के दुष्प्रभाव से प्रभावित न हों।

जिस मकान में उत्तर में सड़क हो वे पूर्वी एवं दक्षिणी आग्नेय, पश्चिमी एवं दक्षिणी नैऋत्य एवं उत्तरी वायव्य भाग किराये से दे सकते हैं। किराये से दिया गया मकान खाली न रखें, उसमें दूसरा किरायेदार रखें अन्यथा भयंकर हानि की आशंका निर्मित होती है।

दुकान एवं व्यापारिक भवन प्रकरण

वास्तु का निर्माण निवास, व्यापार, कार्यालय, उद्योग, देवालय आदि कई उद्देश्यों के लिए किया जाता है। उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर किया गया वास्तु निर्माण शास्त्रानुकूल होने पर अपेक्षित परिणाम प्रदान करता है। दुकान के दृष्टि कोण से भी वास्तु का विचार आवश्यक है।

भूखण्ड पर वास्तु का निर्माण सिर्फ निवास के लिए नहीं होता वरन् व्यापार, उद्योग एवं अन्य कार्यों के निमित्त से भी होता है। दुकानें ऐसी ही वास्तु हैं। यहीं पर निवासी अपनी आजीविका हेतु अर्थोपार्जन करता है। निवास के लिए कैसा भी भवन हो किन्तु यदि आजीविका का स्थान आय प्रदाता नहीं होगा तो निवास का वैभव निरर्थक हो जाएगा तथा उसके समाप्त होने की स्थिति निर्मित हो जायेगी। अतएव यह परमावश्यक है कि दुकान एवं व्यापारिक भवनों के निर्माण में वास्तु शास्त्र के सिद्धान्तों का अनुपालन किया जाए।

जिस वास्तु का मुख पूर्व की ओर हो उस वास्तु में दुकान का मुख भी पूर्व की ओर ही होना चाहिए। उसमें रखा गया व्यवहारोपयोगी सामान दक्षिण, नैऋत्य एवं पश्चिम दिशा की ओर रखें। अपने बैठने का आसन नैऋत्य कोने में रखें। अपना मुख उत्तर या पूर्व की ओर रखें। माल दक्षिण नैऋत्य या पश्चिम नैऋत्य में रखना चाहिए। दुकान के उत्तर भाग में दीवाल में बनी आलमारी या कपाट में विक्रय धनराशि रखना चाहिए। उपयोगी कागजात, बिल बुक आदि नैऋत्य दिशा में रखें। तिजोरी भी इसी दिशा में रखें।

यदि पृथक से कार्यालय बनाना है तो ईशान में बनाएं। उसमें आसन दक्षिण नैऋत्य या पश्चिम नैऋत्य में रखें तथा बैठने में मुख पूर्व या उत्तर में हो।

दुकान यदि स्वतंत्र रूप से निर्माण की गई हो तो कुछ बातों का विशेष ध्यान रखें–

सगडमुहा वग्गोहा कायव्वा तह य हट्ट वग्घमुहा।
बाराउ गिहकमुच्चा हट्टुच्चा पुरउ मज्झ समा।।

- वास्तुसार प्र. 1 गा. 113

घर के आगे का भाग गाड़ी के अग्रभाग के समान संकरा तथा पीछे चौड़ा बनाना चाहिए। दुकान के आगे का भाग सिंह मुख अर्थात् चौड़ा बनाना

चाहिए। घर के द्वार भाग से पीछे का भाग ऊंचा होना चाहिए जबकि दुकान के आगे का भाग ऊंचा तथा मध्य में समान होना अच्छा है।

कुछ और उल्लेखनीय बातें इस प्रकार हैं—

दुकान के ईशान कोण को एकदम खाली रखें तथा साफ एवं स्वच्छ रखें। ईशान कोने में जिनेन्द्र प्रभु या जिनगुरुओं के चित्र लगाएं।

पीने के पानी का घड़ा या बर्तन ईशान दिशा में रखें किन्तु दुकान का सामान इस तरफ न रखें।

दुकान में ग्राहक को देखने हेतु अपना मुख उत्तर या पूर्व की ओर करके बैठें। दुकान में कूलर, पंखा, हीटर, फ्रिज आदि आग्नेय दिशा में रखें। यथासंभव शोकेस, बाक्स, भरी पेटियां, स्टैण्ड, माल, बोरे किसी भी स्थिति में ईशान में न रखें। तराजू दक्षिण या पश्चिमी दीवाल की ओर स्तम्भ पर रखें।

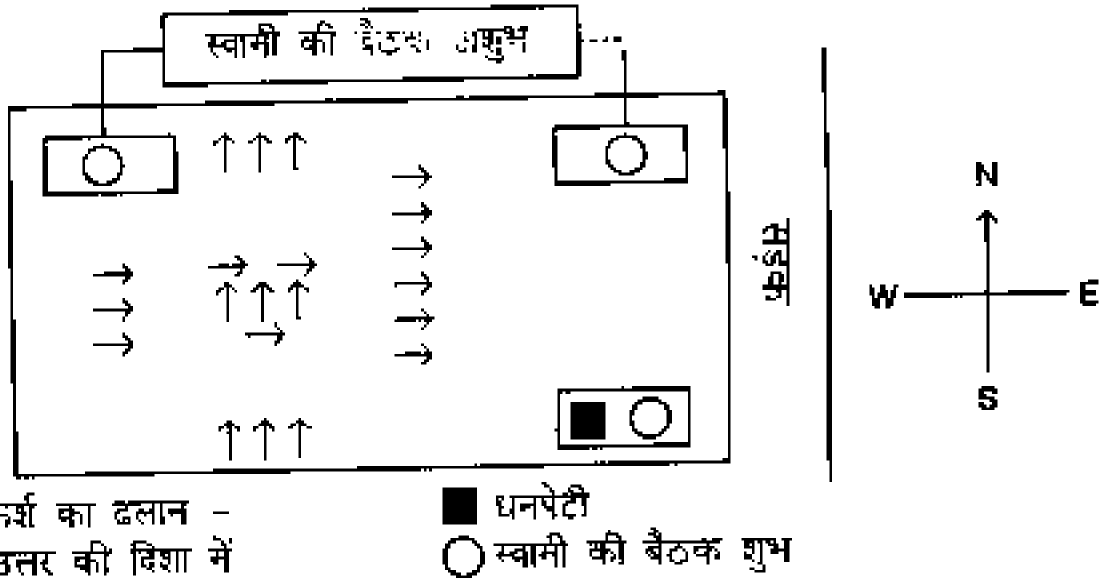

यदि मालिक का कक्ष अलग से बनाना हो तो मालिक, प्रबन्धक, व्यवस्थापक आदि के कक्ष नैऋत्य दिशा में बनाएं तथा उसमें बैठक ऐसी रखें कि मुख उत्तर या पूर्व की ओर हो। कक्षों का प्रवेश ईशान, पूर्व या उत्तर की ओर रखना श्रेयस्कर है। कक्ष का द्वार आग्नेय अथवा वायव्य में नहीं रखना चाहिए।

व्यापारिक भवन की लम्बाई चौड़ाई में थोड़ा सा विस्तार भी उसके फल को प्रभावित करता है। अतएव व्यापारिक कक्ष या दुकान की लम्बाई चौड़ाई में सदैव ध्यान रखें कि ईशान कोण की ओर कुछ वृद्धि या बढ़ाव हो। ईशान से वायव्य कोण की लम्बाई की अपेक्षा आग्नेय से नैऋत्य कोण की लम्बाई कुछ अल्प होना आवश्यक है। इसी भांति यह भी ध्यान रखें कि ईशान कोण से आग्नेय कोण की लम्बाई कुछ अल्प होना चाहिए।

दुकान के मुख की अपेक्षा से निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। अन्यथा विपरीत परिणाम मिलेंगे। श्रम के अनुरूप कार्य में सफलता नहीं मिलेगी।

क्र.	अभिमुख दिशा	मालिक की बैठक	मालिक का मुख	कैश बाक्स रखने का स्थान	कैश बाक्स रखने का निषेध	बैठक का निषेध
1	पूर्व	आग्नेय	उत्तर	मालिक के बायीं ओर	ईशान एवं वायव्य	दक्षिणी दीवाल
2	दक्षिण	नैऋत्य	पूर्व	मालिक के बायीं ओर	–	वायव्य, ईशान, आग्नेय
3	दक्षिण	नैऋत्य	उत्तर	मालिक के दाहिनी ओर	–	वायव्य, ईशान, आग्नेय
4	पश्चिम	नैऋत्य	उत्तर	मालिक के बायीं ओर	–	वायव्य, ईशान, आग्नेय
5	उत्तर	वायव्य	पूर्व	मालिक के दाहिनी ओर	आग्नेय एवं ईशान	उत्तरी दीवाल
6	उत्तर	वायव्य	उत्तर	मालिक के बायीं ओर	–	पश्चिमी दीवाल

दुकान या व्यापारिक भवन में दिशाओं की अपेक्षा सीढ़ियों का निर्माण निम्न सारणी के अनुसार करना श्रेष्ठ फल दायक निमित्त बनता है -

क्र.	अभिमुख दिशा	सीढ़ियां	विशिष्ट निर्देश	सीढ़ियों का निषेध
1	पूर्व	ईशान से पूर्व तक	आग्नेय में चबूतरा व सीढ़ियां ईशान से नीची हों	अर्धवृत्ताकार
2	पश्चिम	पश्चिम से वायव्य	क. पश्चिम मध्य में चबूतरा ख. पश्चिम वायव्य में सीढ़ियां ग. पश्चिम मध्य में अर्धवृत्ताकार सीढ़ियां घ. नैऋत्य में चबूतरा फर्श से नीचा न हो	नैऋत्य
3	दक्षिण	दक्षिण से आग्नेय	क. दक्षिण नैऋत्य से दक्षिण मध्य तक चबूतरा ख. दक्षिण मध्य में अर्धवृत्ताकार सीढ़ी ग. नैऋत्य में चबूतरा फर्श से नीचा न हो	दक्षिणी नैऋत्य
4	उत्तर	उत्तर से ईशान या वायव्य से ईशान	क. उत्तरी वायव्य से उत्तरी मध्य तक चबूतरा ख. ईशान में सीढ़ियां	अर्धवृत्ताकार

दुकान में दो शटर्स या दरवाजे होने पर कभी-कभी ऐसी स्थिति होती है कि एक शटर ही खोलना संभव हो पाता है। ऐसी स्थिति में सदैव ध्यान रखें कि यदि पूर्व मुखी दुकान है तो एक शटर खोलने की स्थिति में ईशान की ओर का शटर खोलें आग्नेय का नहीं।

यदि दक्षिण मुखी दुकान है तो एक शटर खोलने की स्थिति में आग्नेय तरफ की शटर खोलें तथा नैऋत्य की तरफ का न खोलें।

यदि दुकान का मुख पश्चिम की ओर हो तो एक शटर खोलने की स्थिति में वायव्य की ओर का शटर खोलें नैऋत्य की तरफ का न खोलें।

यदि दुकान उत्तरमुखी है तो एक शटर खोलने की स्थिति में ईशान की तरफ का शटर खोलें तथा वायव्य की तरफ का न खोलें।

यह सदा स्मरणीय है कि वास्तु शास्त्र का उपयोग सिर्फ आवास गृह तक सीमित न होकर सभी निर्माण संरचनाओं तक है। दुकान परिवार के अर्थोपार्जन व आजीविका का प्रमुख साधन है। ऐसी स्थिति में यदि दुकान से समुचित आय नहीं होगी तो परिवार की अर्थव्यवस्था बिगड़ जाएगी जिसका प्रभाव पारिवारिक शांति एवं धर्म कार्यों पर भी पड़ेगा। अतएव दुकान की स्थिति का ध्यान रखना सार्थक ही है।

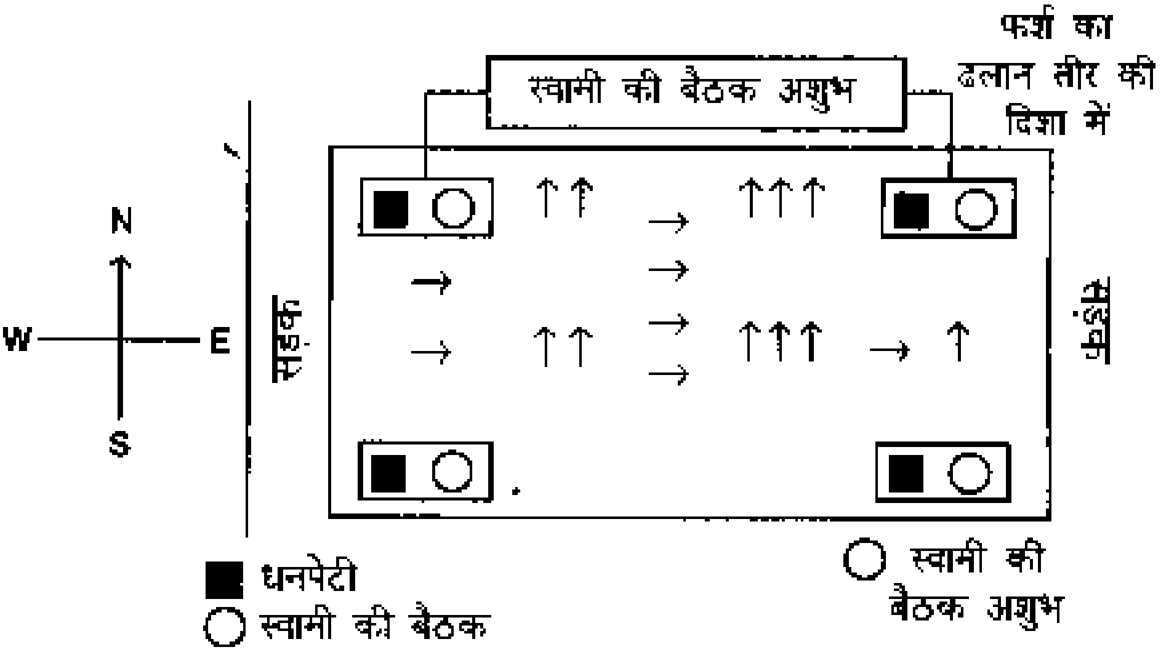

उद्योग वास्तु विचार
Vaastu of Industries

आधुनिक युग में उद्योगों का अपना विशिष्ट स्थान है। सामान्यतः उद्योगों से हमारी कल्पना बृहदाकृति महाकाय ऊंचे निर्माणों से होती है। चिमनी, बायलर, भट्टी, ऊंची एवं भारी मशीनें, बने हुए माल का आवागमन, अधबना माल, कच्चे माल का भंडारण, कर्मचारियों का कक्ष, निवास गृह आदि का समावेश उद्योग शब्द में स्वाभावतः आ जाता है। उद्योग का आकार भी सैकड़ों एकड़ भूमि में होता है। लघु एवं मध्यम आकार के उद्योग एक भवन से प्रारम्भ कर कुछ एकड़ क्षेत्र तक से हो सकते हैं। उद्योगों से सैकड़ों लोगों को रोजगार भी मिलता है। इनमें पूंजी निवेश भी काफी बड़े पैमाने पर होता है। अतएव उद्योग वास्तु को गंभीरता पूर्वक निर्णय लेकर ही निर्मित किया जाना चाहिए। यद्यपि प्राचीन शास्त्रों में पृथक से कारखानों के लिए विवरण नहीं मिलता है किन्तु वास्तु शास्त्र के सामान्य नियमों का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है। इनको दृष्टिगत रखकर ही आगे कुछ संकेत आवश्यक है। इनको दृष्टिगत रखकर ही आगे कुछ संकेत दिए हैं। निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण संकेतों को ध्यान में रखकर तदनुरूप निर्माण करने से अपेक्षित सुपरिणाम निश्चय ही मिलते हैं–

कारखाने का भूखण्ड

शास्त्रों में वर्णित नियमों को ध्यान में रखकर भूमि का चयन करें। भूखण्ड का आकार वर्गाकार अथवा आयताकार हो। यदि भूखण्ड आयताकार हो तो लम्बाई का मान चौड़ाई से दो गुना रखना श्रेष्ठ है।

.'भूखण्ड का ईशान भाग कटा हुआ न हो अन्यथा भीषण विपरीत परिस्थितियां आएंगी। ईशान भाग में न भारी सामान रखें, न भारी निर्माण करें। किसी भी स्थिति में वायव्य भाग बन्द न करें। नैऋत्य कोण सदैव समकोण 90° का ही रखना चाहिए।

परकोटा

भूखण्ड के चारों तरफ परकोटा होना श्रेष्ठ है। पूर्व एवं उत्तर की सीमा में नीचा परकोटा रखें, जबकि दक्षिण एवं पश्चिम में अपेक्षाकृत ऊंचा परकोटा रखें। यदि उत्तर एवं पूर्व में तार की फेंसिंग रखना हो तो रख सकते हैं किन्तु दक्षिण एवं पश्चिम में पत्थरों या ईंट की दीवाल अवश्य बनाना चाहिए।

धरातल

नैऋत्य में धरातल सारे भूखण्ड में सबसे अधिक ऊंचा रखना चाहिए। ईशान, उत्तरी, पूर्वी भाग अपेक्षाकृत नीचे रखना चाहिए।

रिक्त स्थान

सामान्य वास्तु सिद्धांतों के अनुरूप उद्योग भूखण्ड में उत्तरी एवं पूर्वी भाग अपेक्षाकृत अधिक खाली रखें। दक्षिणी एवं पश्चिमी भाग में रिक्त स्थान कम रखना चाहिए।

झुकावदार छत

सामान्यत: दक्षिण एवं पश्चिम में छत का झुकाव उत्तर एवं पूर्व की अपेक्षा कम होना चाहिए।

प्रवेश द्वार

कारखाने का प्रमुख प्रवेश द्वार पूर्व, उत्तर एवं ईशान दिशा में रखना चाहिए। बड़े वाहनों के आवागमन के अनुरूप दो स्थानों पर दरवाजे (गेट) बनाना चाहिए। मुख्य प्रवेश नैऋत्य में कदापि न रखें। मुख्य प्रवेश पूर्वी आग्नेय, उत्तरी वायव्य में भी न रखें।

निकास द्वार

निकास के लिए द्वार उत्तर अथवा पश्चिम दिशा में रखा जाना उपयुक्त रहता है।

प्रशासनिक कार्यालय

उद्योग का प्रशासनिक कार्यालय पूर्व अथवा उत्तर दिशा में रखना चाहिए। यदि अपरिहार्य हो तो पश्चिम में भी रखा जा सकता है। इसमें बैठने वाले अधिकारी या कर्मचारी उत्तर एवं पूर्व में मुख करके बैठें, इस प्रकार की बैठक व्यवस्था रखना चाहिए।

मशीनों की स्थापना

उद्योगों का मूल केन्द्र मशीनें होती हैं। इनमें विद्युत, अग्नि एवं रसायनों इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। भारी मशीनों की स्थापना दक्षिणी भाग में ही करना चाहिए। हल्की मशीनों की स्थापना इनके उत्तरी भाग में की जा सकती है। मशीनों की स्थापना दक्षिण से पश्चिम की ओर करना चाहिए।

भार तोलक मशीन

वजन मापने की मशीन पर स्थायी भार नहीं होता है। अतएव मध्य उत्तर अथवा मध्य पूर्व में रखना उपयुक्त है।

निर्मित माल भण्डार

निर्मित माल को रखने का सर्वाधिक उपयुक्त स्थान वायव्य भाग है। यहां माल रखने से माल का विक्रय शीघ्रता से होता है।

अर्धनिर्मित माल भण्डार

अर्धनिर्मित माल का भण्डारण भी उद्योग में आवश्यक होता है। कई बार माल एक साथ तैयार न करके अर्धनिर्मित रखकर भण्डारण करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में भण्डारण, पश्चिमी भाग में करना चाहिए। इसे दक्षिणी भाग में भी रखा जा सकता है।

कच्चे माल का भण्डारण

कच्चे माल का भण्डारण रखना प्रत्येक उद्योग की आवश्यकता है। कच्चा माल या सामग्री इतनी अवश्य रखना चाहिए कि कारखाना अविराम गति से चलता रहे। अचानक कच्चा माल कम हो जाने से मशीनें रूक सकती हैं तथा अप्रत्याशित हानि हो सकती है। कच्चे माल का भण्डारण उत्तरी भाग में करना चाहिए।

विशेष—भण्डार कक्ष यदि नैऋत्य में रखना पड़े तो उसे भरा हुआ रखना चाहिए। खाली न रखा करें। अन्यथा विपरीत परिणाम होंगे। किसी भी स्थिति में ईशान में भण्डार कक्ष न बनाएं।

निरुपयोगी एवं खराब सामग्री का भंडारण

निरुपयोगी एवं खराब सामग्री का भण्डारण कभी भी उत्तर या पूर्व में न रखें। इसे नैऋत्य दिशा में रखना श्रेयस्कर है।

कामगारों की स्थिति

कामगारों को इस तरह खड़ा करना चाहिए कि उनका मुख उत्तर या पूर्व की ओर होवे।

कर्मचारियों के रहने का स्थान

कर्मचारियों के रहने का स्थान उद्योग के ईशान भाग में किया जाना उपयुक्त है। इसे आग्नेय भाग में भी रख सकते हैं किन्तु यदि इस हेतु बहुमंजिली इमारत कारखाने से ऊंची हो तो नैऋत्य भाग में रखना चाहिए।

जल व्यवस्था

जल व्यवस्था ईशान में करना चाहिए, इसे पूर्व या उत्तर में भी रख सकते हैं। किन्तु यह ध्यान रखें कि यहां बोर वेल, कुंआ अथवा भूमिगत जल टंकी

हो। यदि ओवर हैड टांकी बनाना आवश्यक हो तो इस ईशान में न बनाएं। भूमिगत जल व्यवस्था दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम अथवा वायव्य में नहीं रखना चाहिए। ओवर हैड टांकी पश्चिमी नैऋत्य में बनाना चाहिए।

शौचालय

शौचालय की व्यवस्था वायव्य अथवा आग्नेय भाग में करना चाहिए। इनको कम्पाउन्ड वाल से लगकर न बनाएं। कुछ हटकर बनाएं। प्रशासनिक कार्यालय में भी इसी भाग में शौचालय बनाना चाहिए।

पार्किंग

वाहनों के रूकने के लिए पृथक स्थान आवश्यक है। पार्किंग की व्यवस्था उत्तरी वायव्य अथवा पूर्वी आग्नेय में रखना उपयुक्त है। पार्किंग की व्यवस्था कम्पाउन्ड वाल से लगकर न करें। थोड़ा अन्तर रखकर करें।

बायलर

बायलर, ट्रांसफार्मर, विद्युत आपूर्ति के उपकरण, जनरेटर, बिजली का खंभा आदि कारखाने के पूर्वी आग्नेय भाग में स्थापित करना चाहिए। आग भट्‌टी, आदि भी आग्नेय में रखना श्रेयस्कर है।

चिमनी

चिमनी भी पूर्वी आग्नेय में ही रखना उपयुक्त है।

वृक्ष एवं वाटिका

बगीचा या पुष्प वाटिका लगाना हो तो पूर्वी या उत्तरी भाग में लगा सकते हैं। ऊंचे वृक्ष दक्षिण या पश्चिम में लगा सकते हैं किंतु उनको इतना दूर लगाना चाहिए कि दोपहर में उनकी छाया कारखाने पर न पड़े।

द्वारपाल कक्ष

यदि पूर्वी ईशान में गेट हो तो इसके दक्षिणी भाग में द्वारपाल कक्ष बनाएं। यदि उत्तरी ईशान में गेट हो तो इसके पश्चिमी भाग में द्वारपाल कक्ष बनाना चाहिए।

उपरोक्त संकेतों के अनुरूप कारखाने का वास्तु निर्माण करना उद्योग को सुफलदायी बनाता है। यद्वा तद्वा निर्माण करने से उद्योग लाभप्रद नहीं रहता तथा विविध कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उद्योगपति एवं श्रमिकों के संबंधों में कटुता आती है। छोटी-छोटी बातों से मुकदमे बाजी आदि में उलझना पड़ता है। अतएव यह उचित ही है कि कारखाने का निर्माण वास्तु शास्त्र के नियमों के अनुरूप ही किया जाए।

कृषि भूमि का वास्तु विचार
Vaastu of Agriculture Land

कृषि कर्म आजीविका उपार्जन के लिए तो है ही, जगत के प्राणियों के आहार की पूर्ति के लिए भी अनिवार्य है। प्रथम तीर्थंकर प्रभु आदिनाथ ऋषभदेव ने गृहस्थों के लिए छह कर्मों का निरूपण किया है-

1. असि 2. मसि 3. कृषि 4. शिल्प 5. विद्या 6. वाणिज्य

अतएव कृषि कर्म यथा शक्ति आजीविका के लिए योग्य ही है। कहावत भी है-

'उत्तम खेती, मध्यम बान, अधम चाकरी निश्चय जान'

अर्थात् कृषि कार्य श्रेष्ठ कार्य है, वाणिज्य मध्यम तथा सेवा कार्य अधम कार्य है।

वर्तमान युग के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव जी ने इसी भावना को दृष्टिगत रखते हुए विश्व समुदाय को एक नया उद्बोधन दिया-

'ऋषि बनो या कृषि करो'

यदि संसार से विरक्त हो तो ऋषि बनो, यदि गृहस्थ धर्म का पालन करना है तो कृषि करो।

वर्तमान वैज्ञानिक युग में अनेकानेक नवीन अनुसंधान कृषि उपकरणों एवं बीजों के लिए चल रहे हैं। उनकी जानकारी अवश्य ही रखना चाहिए। कृषि कार्य मात्र अन्न उपार्जन का साधन न बने वरन् लाभकारी उपक्रम के रूप में करना श्रेयस्कर है।

एक विशेष बात ध्यान में रखें कि आजकल मछली पालन, मुर्गी आदि को कृषि कार्य में गिना जाने लगा है, किन्तु यह यथार्थ से विरुद्ध है। जीवित प्राणियों को वृद्धि कर मांसाहार के लिए बेचना, कृषि नहीं, वरन् महान हिंसक कर्म है। इससे बचना चाहिए।

कृषि भूमि का वास्तु विचार करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना भूस्वामी के लिये हितकारी होता है-

महत्त्वपूर्ण संकेत

1. कृषि भूमि का आकार चौकोर हो तथा उत्तर, पूर्व या ईशान की ओर उसका उतार हो तो श्रेष्ठ है। यदि चौकोर न हो तो चौकोर करवाएं।
2. कुंआ या बोरवेल ईशान या पूर्व या उत्तर में करवाएं। दक्षिण में कुंआ न खुदाएं।
3. बड़े वृक्ष दक्षिण और पश्चिम की ओर लगाएं।
4. छोटे पौधे वाली खेती पूर्व एवं उत्तर की ओर करें।
5. खेत के उत्तर, पूर्व या ईशान में कोई प्राकृतिक जलाशय, नदी, नहर, कुंआ हो तो सर्वश्रेष्ठ है।
6. खेती में बहुस्थावर, त्रस जीवघातक फसल नहीं लगाना चाहिए।
7. तम्बाकू, कन्दमूल आदि की कृषि नहीं करना चाहिए।
8. कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
9. बीजारोपण का कार्य दक्षिण से उत्तर की ओर करना चाहिए।
10. यथासंभव कृषि कार्य जुताई, बोवाई, कटाई, निंदाई आदि उचित मुहूर्त में करना श्रेयस्कर है।

उत्तम विधि से कृषि करने से उत्तम परिणाम अवश्य ही मिलते हैं।

वास्तु ज्योतिष गणित

वास्तु के अंग

देवालय, भवन या इमारत का निर्माण करने के पूर्व अग्रलिखित अंगों का शुभाशुभ फल अवश्य ही आँकलित कर लेना चाहिए। इन अंगों के नाम इस प्रकार हैं–

1. क्षेत्रफल	2. आय	3. नक्षत्र	4. नक्षत्रगण
5. नक्षत्रदिशा	6. नक्षत्रवैर	7. व्यय	8. तारा
9. नाड़ी	10. राशि	11. राशिस्वामी	12. गृहनामाक्षर
13. अंशक	14. लग्न	15. तिथि	16. वार
17. करण	18. योग	19. वर्ग	20. तत्व
21. आयु			

आकलन का उदाहरण–

यदि 5 हाथ 5 अंगुल लंबी, इतना ही चौड़ा तथा 6 हाथ 1 अंगुल ऊंची कोई वास्तु निर्मित करनी है तो सर्वप्रथम इनको अंगुलियों के मान में परिवर्तित करें।

चूंकि 1 हाथ = 24 अंगुल, अतएव

लंबाई (5 हाथ × 24) + 5 अंगुल = 125 अंगुल।

चौड़ाई (5 हाथ × 24) + 5 अंगुल = 125 अंगुल।

ऊंचाई (6 हाथ × 24) + 1 अंगुल = 145 अंगुल

1. क्षेत्रफल– चूंकि लंबाई × चौड़ाई = क्षेत्रफल

अतएव 125 × 125 = 15625 वर्गांगुल

अंगुल अंगुल

इस प्रकार क्षेत्रफल 15625 वर्गांगुल होगा।

2. आय– वास्तु के कुल क्षेत्रफल में 8 का भाग दीजिए। शेष जितना आये वह प्रथम क्रम से आय होगी।

पूर्व उदाहरण में क्षेत्रफल 15625 वर्गांगुल है, अतः

15625 ÷ 8 = 1953 लब्ध आया, शेष 1 रहा;

अतएव प्रथम ध्वज आय है और यह शुभ है।

3. **नक्षत्र**– वास्तु के कुल क्षेत्रफल में 27 का भाग देने पर शेष राशि नक्षत्र की मूल राशि है। मूलराशि को 8 से गुणा कर 27 से भाग दें। शेष अंक नक्षत्र का अंक होगा।

पूर्व उदाहरण में क्षेत्रफल 15625 वर्गांगुल है

15625 ÷ 27 = 578 लब्ध आया तथा शेष 19 रहा अतः नक्षत्र की मूल राशि 19 है।

19 × 8 = 152 लब्ध आया। अब इसमें 27 का भाग देवें।

152 ÷ 27 = 5 लब्ध आया तथा शेष 17 रहा। यही नक्षत्र अंक है।

17वां नक्षत्र अनुराधा नक्षत्र है।

4. **नक्षत्रगण**– अनुराधा नक्षत्र का देवगण है अतः भवन का भी देवगण होगा। यह शुभ है।

5. **नक्षत्र दिशा**– अनुराधा नक्षत्र पर चन्द्र पश्चिम दिशा में रहता है। अतः अनुराधा नक्षत्र की दिशा भी पश्चिम दिशा होगी।

6. **नक्षत्र वैर**– अनुराधा नक्षत्र का किसी नक्षत्र से वैर नहीं है।

7. **व्यय**– नक्षत्र की अंक संख्या में 8 का भाग देने पर जो शेष अंक रहता है। वह व्यय की संख्या है।

पूर्व उदाहरण में नक्षत्र का अंक 17 है। इसमें 8 का भाग दें।

17 ÷ 8 = 2 लब्ध आया तथा शेष 1 रहा। यह व्यय का अंक है।

अतएव यह शांता नामक प्रथम व्यय है।

8. **तारा**– गृहस्वामी के नक्षत्र से गृह तक गिनें। जो अंक आये उसे 9 से भाग देने पर जो शेष आये वह इस वास्तु का तारा होगा।

वास्तु अजित कुमार की है अतः वे ही उस वास्तु के गृहस्वामी हैं।

उनका नक्षत्र उत्तराषाढ़ा है। उत्तराषाढ़ा से अनुराधा नक्षत्र का क्रम 25वां है।

नक्षत्र क्रम में 9 का भाग देवें।

25 ÷ 9 = 2 लब्ध आया तथा शेष 7 रहा। यह तारा का अंक है।
ताराओं में 4, 6, 9 शुभ हैं।
1, 2, 8 मध्यम हैं।
3, 5, 7 अधम हैं।
अतएव 7वां तारा अधम है।

9. नाड़ी— गृहपति अजित कुमार के उत्तराषाढ़ा नक्षत्र की नाड़ी–अंत्य है तथा वास्तु के अनुराधा नक्षत्र की नाड़ी–मध्य है इन दोनों नाड़ियों में प्रीति है अत: ये शुभ हैं।

10. राशि— नक्षत्र के क्रमांक में 60 गुणा कर 135 का भाग देने से लब्धफल अंक में एक जोड़ दें। यह राशि की संख्या है। नक्षत्र क्र. 17 है।
आकलित उदाहरण में नक्षत्र का अंक 17 है।
17 × 60 = 1020 गुणनफल
1020 ÷ 135 = 7 लब्ध आया। इसमें 1 जोड़ें।
7 + 1 = 8 यह राशि का क्रमांक है।
अतएव 8वीं वृश्चिक राशि होगी।

11. राशि स्वामी— आकलित उदाहरण में भवन की राशि वृश्चिक है तथा इसका स्वामी मंगल है। गृहस्वामी की राशि धनु है। इसका स्वामी गुरु है।
गुरु एवं मंगल में मित्रता है। अत: शुभ है।

12. गृह का नामाक्षर—क्षेत्रफल में 4 का गुणा कर 16 का भाग दें। शेष अंक ध्रुव को प्रारंभ करके गृह का होगा।
आकलित उदाहरण में क्षेत्रफल 15625 वर्गांगुल है। इसमें 4 का गुणा करें तथा लब्ध में 16 का भाग देवें।
15625 × 4 = 62500 गुणनफल आया। इसमें 16 का भाग दें।
62500 ÷ 16 = 3906 लब्ध आया तथा शेष 4 रहा। यह गृह का नामाक्षर है।
4 था गृह नंद है। यह नंद वास्तु का नाम है। यह शुभ है।

13. अंशक— नक्षत्र की मूल राशि में व्यय अंक तथा नामाक्षर के अंकों को जोड़ें। उसमें 3 का भाग दें। शेष राशि अंशक है।

आकलित उदाहरण में नक्षत्र की मूल राशि 19 है।

व्यय अंक 1 है।

गृह का नामाक्षर 4 है। अतएव

19 + 1 + 4 = 24

योगफल में 3 का भाग देवें।

24 ÷ 3 = 8 लब्ध आया तथा शेष 0 रहा।

अतः राज अंशक होगा। यह शुभ है।

14. लग्न— आय अंक + नक्षत्र अंक + व्यय अंक + तारा अंक + अंशक अंक इनके योग में 12 का भाग देने पर शेष अंक लग्न होगा।

आकलित उदाहरण में,

आय अंक + नक्षत्र अंक + व्यय अंक + तारा अंक + अंशक अंक

1 + 17 + 1 + 1 + 3 = 23

योगफल 23 में 12 का भाग देने पर,

23 + 12 = 1 लब्ध आया तथा शेष 11 रहा।

यह शेषांक ही लग्न का अंक है,

अतएव 11 वां लग्न कुंभ है।

15. तिथि— लग्न संख्या में 15 का भाग दें। शेष अंक तिथि है जो नंदा को प्रथम मानकर गिन लें।

आकलित उदाहरण में लग्न संख्या 23 है

इसमें 15 का भाग देने पर

23 + 15 = 1 लब्ध आया तथा शेष 8 रहा।

यह तिथि का अंक है अर्थात 8वीं तिथि है।

8वीं तिथि जया है। यह शुभ है।

16. वार— क्षेत्रफल में 11 का गुणा कर 7 भाग दें। शेष अंक वार की संख्या है। रविवार को प्रथम मानकर गिन लें।

आकलित उदाहरण में क्षेत्रफल 15625 है।

इसमें 11 का गुणा करें,

15625 × 11 = 171875 गुणनफल
गुणनफल में 7 का भाग देवें,
171875 ÷ 7 = 24553 लब्ध आया तथा शेष 4 रहा।
यह वार का अंक है। अतः 4 था वार है।
रविवार से गिनने पर चौथा वार बुधवार है। यह शुभ है।

17. करण— क्षेत्रफल को 9 से गुणा कर 11 से भाग दें। शेषांक ही करण है।
आकलित उदाहरण में क्षेत्रफल 15625 है।
इसमें 9 का गुणा करें,
15625 × 9 = 140625 गुणनफल
गुणनफल में 11 का भाग देवें,
140625 ÷ 11 = 12784 लब्ध आया तथा शेष 1 रहा।
यह करण का अंक है। अतः 1 ला करण है।
बव से गिनने पर पहला करण बव है।

18. योग— क्षेत्रफल में 13 का गुणा कर 27 से भाग दें। शेषांक ही योग अंक है।
आकलित उदाहरण में क्षेत्रफल 15625 है।
इसमें 13 का गुणा करें,
15625 × 13 = 203125 गुणनफल
गुणनफल में 27 का भाग देवें,
203125 ÷ 27 = 7523 लब्ध आया तथा शेष 4 रहा।
यह योग का अंक है। अतः 4 था योग है।
चौथा योग सौभाग्य है। यह शुभ है।

19. वर्ग— क्षेत्रफल में ऊंचाई जोड़कर उसमें 8 का भाग दें। शेषांक वर्ग है।
आकलित उदाहरण में क्षेत्रफल 15625 है।
तथा ऊंचाई 145 है।
अतएव दोनों को जोड़ने पर,
15625 + 145 = 15770 योगफल
योगफल में 8 का भाग देने पर,
15770 ÷ 8 = 1971 लब्ध आया तथा शेष 2 रहा।

सम संख्या शेष रहने पर शुभ है।

2 सम संख्या है अतः शुभ है।

20. तत्व— क्षेत्रफल में 8 का गुणा कर 60 का भाग करें। शेषांक को 5 से विभाजित करें। इसका शेषांक तत्व है।

आकलित उदाहरण में क्षेत्रफल 15625 है।

इसमें 8 का गुणा करें,

15625 × 8 = 125000 गुणनफल

गुणनफल में 60 का भाग देवें,

125000 ÷ 60 = 2083 लब्ध आया तथा शेष 20 रहा।

इस शेषांक में 5 का भाग देवें।

20 ÷ 5 = 4 लब्ध आया तथा शेष 0 रहा।

अतः भवन का तत्व आकाश है।

वास्तु का आयु विचार

मनुष्यों एव अन्य प्राणियों की आयु ही उनकी जीवनसीमा होती है। साधारण रूप में मनुष्यों की औसत आयु साठ से सत्तर साल मानी जाती है। इसी प्रकार इमारतों तथा अन्य वास्तु निर्माण की भी आयु मर्यादा का निर्धारण किया जा सकता है। जिस प्रकार मनुष्य की आयु मर्यादा समाप्त होने पर उसका जीवन समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार वास्तु निर्माण की आयु सीमा समाप्त होने पर उसकी शक्ति समाप्त होने लगती है। वर्तमान में भी पुलों एवं बांधों की आयु सीमा समाप्त होने की बात सुनने में आती है। आयु सीमा समाप्त होने पर वास्तु की शक्ति वृद्धि करने के लिये उसका पुनर्निर्माण अथवा जीर्णोद्धार किया जाना आवश्यक है। ऐसा न किये जाने पर वह वास्तु हानिकारक अथवा निरर्थक हो सकती है।

जीर्णोद्धार अथवा पुनर्निर्माण करने के उपरांत उसका वास्तु शांति के निमित्त, वास्तुशांति विधान एवं पूजा होना आवश्यक है। यदि यह संभव न हो तो इस निमित्त शांति विधान कर ही लेना चाहिये। ऐसा करने से वास्तु का परिणाम सुख शांति कारक होता है।

आयु सीमा का निर्धारण विश्वकर्मा प्रकाश एवं मंडन सूत्रधार आदि में लिखित विधियों से किया जा सकता है।

गृहस्थ पिंडम् करिभिर्विगुणयं विभाजितं शून्य दिवाकरेण।
यच्छेषमायुः कथितं मुनीन्द्रैरायुस्य पूर्णो भवनं शुभं स्यात्॥

जिस वास्तु की आयु मर्यादा पूरी हो गई है वह भूमि तथा वास्तु निर्माण कार्य के लिये शुभ कारक है। ऐसे स्थान पर वास्तुनिर्माण या जीर्णोद्धार करके उसकी वास्तु शांति करना चाहिये, तदुपरांत उसका प्रयोग करना चाहिये। यदि आयु समाप्त होने के पश्चात् भी उसका प्रयोग बगैर किसी जीर्णोद्धार आदि के किया जायेगा तो वह निवासी के लिए पीड़ाकारक होती है।

आयुर्विहीने गेहे तु दुर्भगत्वं प्रजायते।

ऐसी वास्तु जिसकी आयु मर्यादा समाप्त हो गई है, उसमें निवास करने वालों को दुख, क्लेश की प्राप्ति होती है तथा दुर्दैव का आगमन होता है।

आयु गणना

आयु निर्धारण करने के लिए प्राचीन शास्त्रों में अनेक विधियों का उल्लेख किया गया है–

1. मिट्टी की वास्तु की आयु निकालने के लिए वास्तु का क्षेत्रफल अंगुल में निकालकर उसको 8 से गुणा कर पश्चात 60 से विभाजित करना चाहिये। भाग देने पर जितना शेष बचे वही वास्तु की आयु समझें।

   उदाहरण– वास्तु की लम्बाई 5 हाथ 5 अंगुल है तथा
   वास्तु की चौड़ाई 5 हाथ 5 अंगुल है।
   लम्बाई × चौड़ाई = क्षेत्रफल
   5 हाथ 5 अंगुल लंबाई × 5 हाथ 5 अंगुल चौड़ाई
   125 अंगुल × 125 अंगुल = 15625 वर्गांगुल
   आकलित उदाहरण में क्षेत्रफल 15625 है।
   इसमें 8 का गुणा करें,
   15625 × 8 = 125000 गुणनफल
   गुणनफल में 60 का भाग देवें,
   125000 ÷ 60 = 2083 लब्ध आया तथा शेष 20 रहा।
   20 वास्तु की आयु है अर्थात् 20 वर्ष आयु मर्यादा
2. मिट्टी की वास्तु की आयु का 10 गुना चूने की वास्तु की आयु होती है। अर्थात् उपरोक्त प्रकरण में 200 वर्ष आयु मर्यादा होगी।
3. मिट्टी की वास्तु की आयु का 30 गुना चूने पत्थर से बनी वास्तु की आयु है। उपरोक्त प्रकरण में 600 वर्ष आयु मर्यादा होगी।
4. मिट्टी की वास्तु की आयु का 90 गुना सीसे और पत्थर से बने वास्तु की आयु है। उपरोक्त प्रकरण में 1800 वर्ष होगी।
5. धातु से बनाये गये गृह की आयु मिट्टी की वास्तु की आयु का 370 गुना करने पर मिलती है। उपरोक्त प्रकरण में 7400 वर्ष आयु होगी।

वर्तमान काल में लोहा, सीमेंट से कांक्रीट के भवनादि निर्माण होते हैं। चूने के मकान की आयु के बराबर ही इसकी आयु जानना चाहिए।

वास्तु की आय

गिहसामिणो करेण भित्तिविणा मिणसु विस्थरं दीहं।
गुणि अट्ठेहिं विहत्तं सेस धयाई भवे आया।।

– वास्तुसार प्र. 1 गा. 51

चारों तरफ नींव की भूमि (अर्थात् दीवार करने की भूमि) को छोड़कर मध्य में जो भूमि है उसकी लम्बाई चौड़ाई गृहस्वामी के हाथ से नापकर उसका आपस में गुणा कर क्षेत्रफल निकालना चाहिए। इसमें आठ का भाग देने पर शेष राशि से ध्वज आदि आय जानना चाहिए।

राज वल्लभ में विवेचन है कि

मध्ये पर्यंकासने मन्दिरे च, देवागारे मंडपे भित्तिबाह्ये।

पलंग, आसन और घर इनके मध्य की भूमि को नापकर आय का आकलन करना चाहिए। देवमन्दिर तथा मंडप में दीवार करने की भूमि सहित नापकर आय का आकलन करना चाहिए।

क्रं.	आय का नाम	दिशा	फल
1	ध्वज	पूर्व	शुभ
2	धूम्र	आग्नेय	अशुभ
3	सिंह	दक्षिण	शुभ
4	श्वान	नैऋत्य	अशुभ
5	वृष	पश्चिम	शुभ
6	खर	वायव्य	अशुभ
7	गज	उत्तर	शुभ
8	ध्वांक्ष	ईशान	अशुभ

आय से द्वार का निर्धारण

सर्वद्वार इह ध्वजो वरुण दिग्द्वारं च हित्वा हरिः।
प्राग्द्वारो वृषभो गजो यमसुरे शाशामुखः स्याच्छुभः।।

– पीयूषधारा टीका

ध्वज आय आने पर पूर्वादि चारों दिशाओं में द्वार रख सकते हैं। सिंह आय आने पर पश्चिम छोड़कर शेष तीन दिशाओं में द्वार रखें। वृषभ आय आने

पर पूर्व दिशा में द्वार रखें। गज आय आने पर पूर्व और दक्षिण दिशा में द्वार रखें।

आरम्भसिद्धि में उल्लेख है-

ध्वजः पदं तु सिंहस्य तौ गजस्य वृषस्य ते।
एवं निवेशमर्हन्ति स्वतोऽन्यत्र वृषस्तु न।।

समस्त आय के स्थानों पर ध्वज आय दे सकते हैं। सिंह के स्थान पर गज आय ले सकते हैं। वृष के स्थान पर ध्वज, गज, सिंह आय ले सकते हैं। वृष आय के स्थान पर अन्य आय को स्थापन नहीं कर सकते; वृष आय के स्थान पर वही आय ले सकते हैं। सिंह आय के अभाव में ध्वज आय ले सकते हैं।

वर्णाश्रम के अनुसार आय–

विप्पे धयाउ दिज्जा खित्ते सीहाउ वइसि वसहाओ।
सुद्दे अ कुंपराओ धंखाउ मुणीण णायव्वं।।

– वास्तुसार प्र. 1 गा. 53

ब्राह्मण के घर ध्वज आय, क्षत्रिय के घर सिंह आय, वैश्य के घर वृष आय शूद्र तथा म्लेच्छों के घर पर श्वान आय तथा मुनि, साधु, संन्यासी के आश्रम में ध्वांक्ष आय लेना चाहिये।

स्थानानुरुप आय का विभाजन–

ध्वज, गज, सिंह ये तीनों आय उत्तम स्थानों में देना चाहिये। ध्वज आय सर्वत्र देना चाहिए।, गज, सिंह तथा वृष आय गांव, किला आदि स्थानों में देना चाहिये। वापिका, कूप, तालाब, शय्या में गज आय श्रेष्ठ है। सिंहासनादि आसन में सिंह आय श्रेष्ठ है। भोजनपात्र में वृष आय तथा छत्र तोरणादि में ध्वज आय श्रेष्ठ है। नगर प्रासाद, देवालय सब प्रकार के घर में वृष, गज एवं सिंह ये तीनों आय दे सकते हैं। श्वान आय म्लेच्छों के घरों में तथा ध्वांक्ष आय तपस्वियों के उपाश्रय, मठ, कुटी में देना चाहिए। भोजन बनाने के कक्ष में तथा अग्नि से आजीविका करने वाले रसोइया, लुहार आदि के घर में धूम्र आय देना उपयुक्त है।

मनुष्य की आय निकालने की दूसरी विधि –

निम्नलिखित सारणी में मनुष्य के नाम का प्रथम अक्षर जिस अंक कक्ष में हो उस अंक में मनुष्य के नामाक्षरों की संख्या का गुणा कर 8 का भाग देवें। शेषांक जो आयेगा वह ध्वजादि आय का क्रम जानना चाहिये।

14	27	2	12	15	8	4	3	5	6	9
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह

उदाहरण - शीतलचन्द्र के लिये श के खाने में संगत अंक 3 है

शीतलचन्द्र की नामाक्षर संख्या 5 है।

इनका आपस में गुणा करने पर

3 × 5 = 15 गुणनफल

गुणनफल में 8 का भाग देवें।

15 ÷ 8 = 1 लब्ध आया तथा शेष 7 रहा।

ध्वजादि क्रम से 7वीं आय गज आय होगी।

वास्तु की आय का मनुष्य की आय के साथ मिलान करके यह देखना चाहिये कि वह शुभ है या अशुभ। उपरोक्त उदाहरण में शीतलचंद्र की आय 7 है अर्थात् गज आय है।

शीतलचंद्र के मकान की आय का आकलन

शीतलचंद्र के मकान की लम्बाई = 9 हाथ

शीतलचंद्र के मकान की चौड़ाई = 3 हाथ

लम्बाई × चौड़ाई = क्षेत्रफल

9 हाथ × 3 हाथ = 27 वर्गहाथ

क्षेत्रफल में 8 का भाग देने पर,

27 ÷ 8 = 3 लब्ध तथा शेष 3 रहा

अर्थात् तीसरी आय सिंह है।

यह आय गृहपति की आय का भक्ष्य है। अतः मृत्युकारक होने से अशुभ है। अब यही मकान यदि एक एक अंगुल अधिक कर दिया जाये तो

शीतलचंद्र के मकान की आय का आकलन

शीतलचंद्र के मकान की लम्बाई = 9 हाथ 1 अंगुल

शीतलचंद्र के मकान की चौड़ाई = 3 हाथ 1 अंगुल

लम्बाई × चौड़ाई = क्षेत्रफल

(9 हाथ + 1 अंगुल) × (3 हाथ + 1 अंगुल) =

217 × 73 = 15841 गुणनफल

गुणनफल में 8 का भाग देने पर,

18841 ÷ 8 = 2355 लब्ध आया तथा शेष 1 रहा।

यह शीतलचंद्र के मकान की आय है।

अर्थात् प्रथम आय ध्वज आय है। यह आय भक्ष्य नहीं है अतः शुभ, श्रेष्ठ फलदायक है।

इसी प्रकार मंदिर, शय्या, पाटा, चौकी, आसन आदि पदार्थों की आय निकालकर उसका शुभाशुभ फल देखा जा सकता है।

गृहारम्भ मुहुर्त मास प्रकरण

मकान का निर्माण प्रारम्भ करने के लिए वर्ष के कुछ मास शुभ कुछ अशुभ होते हैं। वास्तुसार में इसके लिए निम्नलिखित विवेचन है–

सोय धण मिच्चु हाणि अत्थं सुन्नं च कलह उव्वसियं।
पूया संपय अग्गी सुहं च चित्ताइमासफलं।।
वइसाहे मग्गसिरे सावणि फग्गुणि मयंतरे पोसे।
सियपक्खे सुह दिवसे कए हवइ सुहरिद्धी।।

– वास्तुसार प्र. 1 गा. 23, 24

साथ ही हीरकलश मुनि लिखते हैं–

कत्तिय माह भद्दवे चित्त आसो य जिट्ठ आसाढे।
गिह आरंभ न कीरइ अवरे कल्लाणमंगलं।।

गृहारम्भ करने के लिये मास विश्लेषण इस प्रकार है–

माह	फल	माह	फल
चैत्र	शोक	आश्विन (क्वांर)	कलह
वैशाख	धनप्राप्ति	कार्तिक	उजाड़
ज्येष्ठ	मृत्यु	मगसिर (अगहन)	पूजा सम्मान
आषाढ़	हानि	पौष (पूस)	सम्पदा प्राप्ति
श्रावण	अर्थप्राप्ति	माघ	अग्निभय
भाद्रपद	गृहशून्यता	फाल्गुन	सुखदायक

हीरकलश मुनि शुभ मास के शुक्लपक्ष तथा शुभतिथि में गृहारम्भ करने पर सुखऋद्धि दायक मानते हैं।

पीयूषधारा टीका में जगमोहन का कथन है कि निंदनीय मास में पत्थर, ईंट के मकान नहीं बनाना चाहिए। घास, लकड़ी का मकान बनाने में मास दोष नहीं लगता है।

राशि शुभाशुभ प्रकरण

धनुमीणमिहुण कण्ण संकंतीए न कीरए गेहं।
तुलविच्छियमेसविसे पुव्वावर सेस सेस दिसे।।

– वास्तुसार प्र. 1 गा. 22

धनु, मीन, मिथुन तथा कन्या इन राशियों पर सूर्य होने पर गृह कार्यारम्भ नहीं करें। तुला, वृश्चिक, मेष तथा वृषभ में से किसी भी राशि का सूर्य होने पर सिर्फ पूर्व या पश्चिम द्वार का मकान बनवाना नहीं चाहिये, उत्तर या दक्षिण द्वार का मकान बनवा सकते हैं।

पृथक राशियों के सूर्य में गृहारम्भ करने का फल नारद मुनि ने कहा है वह इस प्रकार है–

राशि	फल	राशि	फल
मेष	शुभ	तुला	सुखकारक
वृष	धनवृद्धि कारक	वृश्चिक	धनवृद्धि कारक
मिथुन	मृत्यु कारक	धनु	महा हानिकारक
कर्क	शुभ	मकर	धनप्राप्ति कारक
सिंह	सेवकों में वृद्धि	कुम्भ	शुभ
कन्या	रोग कारक	मीन	भयदायक

मुहूर्त चिंतामणि ग्रंथ में उल्लेख है कि इन राशियों में सूर्य होने पर वास्तु का निर्माण आरंभ करना श्रेष्ठ है–

1. चैत्र में मेष का सूर्य
2. ज्येष्ठ में वृषभ का सूर्य
3. आषाढ़ में कर्क का सूर्य
4. भाद्रपद में सिंह का सूर्य
5. आश्विन में तुला का सूर्य
6. कार्तिक में वृश्चिक का सूर्य
7. पौष में मकर का सूर्य तथा
8. माघ में मकर या कुंभ का सूर्य

गृहारम्भ कार्य में नक्षत्र विचार

शुभ लग्न तथा चन्द्रमा का बल देखकर अधोमुख नक्षत्रों में खात मुहुर्त करना चाहिये। शुभ लग्न तथा चन्द्रमा बलवान देखकर ऊर्ध्व नक्षत्रों में शिला का रोपण करना चाहिये।

सुह लग्गे चंद बले खणिज्ज नीमीउ अहोमुहे रिक्खे।
उड्ढमुहे नक्खत्ते चिणिज्ज सुहलग्गि चंदबले।।

– वास्तुसार प्र. 1 गा. 25

इसी प्रकार माण्डव्य ऋषि ने पीयूष धारा टीका में उल्लेख किया है कि

अधोमुखैर्भैर्विदधीत खातं, शिलास्तथा चोर्ध्वमुखैश्चपट्टम्।
तिर्यङ मुखैर्द्वारक पाटयानं, गृहप्रवेशो मृदुभिर्ध्रुवर्क्षैः।।

अधोमुख नक्षत्र में खात कार्य करना चाहिये। ऊर्ध्वमुख नक्षत्रों में शिला तथा पाटड़ा की स्थापना करें। द्वार, आलमारी, रथ, वाहन आदि का निर्माण तिर्यकमुख नक्षत्रों में करें। ध्रुव नक्षत्रों में गृह प्रवेश करें। मृदु नक्षत्रों में भी गृह प्रवेश कर सकते हैं।

अधोमुख नक्षत्र	ऊर्ध्वमुख नक्षत्र	तिर्यकमुख नक्षत्र
भरणी	श्रवण	पुनर्वसु
आश्लेषा	आर्द्रा	अनुराधा
पूर्वाफाल्गुनी	पुष्य	ज्येष्ठा
पूर्वाषाढ़ा	रोहिणी	हस्ता
पूर्वाभाद्रपद	उत्तराफाल्गुनी	चित्रा
मूल	उत्तराषाढ़ा	स्वाति
मघा	उत्तरा भाद्रपद	अश्विनी
विशाखा	शतभिषा	मृगशिर
कृतिका	घनिष्ठा	रेवती

अधोमुख नक्षत्र –खात कार्य सिद्धि के लिए श्रेष्ठ
तिर्यकमुख नक्षत्र–खेती यात्रा सिद्धि के लिए श्रेष्ठ

ऊर्ध्वमुखी नक्षत्र –ध्वजा, छत्र, राज्याभिषेक, वृक्षारोपण के लिए श्रेष्ठ

ध्रुव नक्षत्रों के नाम– उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपद तथा रोहिणी

मृदु नक्षत्रों के नाम– मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा

मुहूर्त चिन्तामणि ग्रंथ में नक्षत्रों के शुभाशुभ फल का वर्णन किया गया है। गृह निर्माण एवं प्रवेश के दृष्टि कोण से भी इनके फल का विचार किया गया है।

पुत्र एवं राज्यदायक नक्षत्र – उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, मृगशिरा, श्रवण, आश्लेषा, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रों में ही किसी पर यदि गुरु हो तब अथवा इन नक्षत्र एवं गुरुवार का दिन होने पर वास्तु निर्माण कार्य प्रारम्भ करने पर वह वास्तु पुत्र एवं राज्य दोनों का प्रदान करता है।

धनधान्यदायक नक्षत्र – विशाखा, आश्विनी, चित्रा, धनिष्ठा, शतभिषा तथा आर्द्रा नक्षत्रों में से किसी नक्षत्र पर शुक्र होने पर या शुक्रवार के दिन वह नक्षत्र होने पर यदि वास्तु निर्माण आरम्भ किया जाता है तो वह परिवार में धनधान्य वृद्धि कारक होता है।

दाहकारक व पुत्रनाशक नक्षत्र – हस्ता, पुष्य, रेवती, मघा, पूर्वाषाढ़ा तथा मूला नक्षत्रों में से किसी पर मंगल हो या मंगलवार के दिन इन नक्षत्रों में से किसी में काम आरम्भ करें तो घर में अग्निभय होता है। तथा संतति विच्छेद एवं पुत्र पीड़ा होती है।

सुखकारक एवं पुत्रदायक नक्षत्र – रोहिणी, आश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा तथा हस्ता नक्षत्रों में से किसी पर बुध हो या बुधवार को इन नक्षत्रों में से किसी के होने पर यदि वास्तु निर्माण कार्य शुरु किया जाये तो धन, धान्य, सुख, समाधान तथा पुत्रों की प्राप्ति होती है।

राक्षसकृत पीड़ादायक नक्षत्र – पूर्वा भाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, ज्येष्ठा, अनुराधा, स्वाति और भरणी नक्षत्रों में से किसी पर शनि होने या शनिवार को इन नक्षत्रों के होने पर निर्माण कार्यारम्भ करने पर घर भूत पिशाच राक्षस आदि का निवास बन जाता है।

दाहकारक नक्षत्र – कृत्तिका नक्षत्र पर सूर्य या चन्द्र के होने पर घर का निर्माण करना आरम्भ करने से घर अग्नि से जलने का संकट आता है।

खात लग्न नक्षत्र विचार

खात काम शुरू करने हेतु नक्षत्र का निर्धारण करने के लिए वास्तुसार में उल्लेख किया गया है–

भिगु लग्गे बुहु दसमे दिणयरु लाहे बिहप्फई किन्दे।
जइ गिहनीमारंभो ता वरिस सयाउयं हवइ।।28।।
दसमचउत्थे गुरुससि सणिकुजलाहे अ लच्छि वरिस असी।
इग ति चउ छ मुणि कमसो गुरुसणिभिगुर विबुहम्मिसयं।।29।।
सुक्कुदए रविलइए मंगलि छट्टे अ पंचमे जीवे।
इउ लग्गकए गेहे दो वरिससयाउयं रिद्धी।।30।।
सगिहत्थो ससि लग्गे गुरुकिन्दे बलजुओ सुविद्धिकरो।
कूरट्टम अइअसुहा सोमा मज्झिम गिहारम्भो।।31।।

- वास्तुसार प्र. 1

शुक्र लग्न में बुध दसवें स्थान पर, सूर्य 11वें स्थान पर तथा गुरु केन्द्र (1–4–7–10 स्थान पर) पर हो तो नवीन वास्तु का खात काम शुरू करने पर उस मकान की आयु 100 वर्ष होती है।

गुरु एवं चन्द्र 10वें एवं 4वें स्थान पर हों, 11वें स्थान पर शनि तथा मंगल हो तो ऐसे नक्षत्र में गृहारम्भ करने पर 80 वर्ष तक धन-संपत्ति स्थिर रहती है।

गुरु पहले स्थान में, शनि 3रे में, शुक्र 4थे, रवि 6वें में तथा बुध 7वें स्थान में होने पर गृहारम्भ किया जाये तो 100 वर्ष तक घर में वैभव, धनलक्ष्मी स्थिर रहती है।

शुक्र लग्न में, सूर्य तीसरे में, मंगल 6वें में, गुरु 5वें में होने पर खातमुहूर्त पूर्वक गृहकार्यारम्भ करने पर 200 वर्ष तक घर सुख, संपदायुक्त, समृद्धिपूर्ण रहता है।

स्वगृही चन्द्र लग्न में हो अर्थात् कर्क राशि का चन्द्रमा लग्न में हो तथा गुरु केन्द्र (1–4–7–10वें स्थान) में बलवान होकर रहा हो तो ऐसे समय गृहकार्यारम्भ करने पर घर में प्रतिदिन अधिकाधिक वृद्धि होती है।

खात मुहूर्त एवं गृहारम्भ के समय लग्न से आठवें स्थान में क्रूर ग्रह होने पर अतिअशुभ फल होता है तथा सौम्य ग्रह होने पर मध्यम फल प्राप्त होता है।

यदि कोई भी एक ग्रह नीच स्थान का, शत्रु स्थान का या शत्रु के नवांशक का होकर सातवें स्थान में या बारहवें स्थान में हो तथा गृहपति के वर्ण का स्वामी निर्बल हो तो ऐसे समय प्रारम्भ किया गया घर निश्चय ही शत्रु के हाथों में चला जाता है।

गृहस्वामी या गृहपति का वर्ण स्वामी विचार

बंभण सुक्क विहप्फइ रवि कुज खत्तिय मयं अवइसो अ।
बुहु सुद्दु मिच्छसणितमु गिहसामि यवण्णनाह इमं।।

- वास्तुसार प्र. 1 गा. 33

ब्राह्मण वर्ण के स्वामी शुक्र एवं बृहस्पति हैं। इसी प्रकार क्षत्रिय वर्ण के स्वामी रवि एवं मंगल, वैश्य वर्ण के स्वामी चन्द्र, शूद्र वर्ण के स्वामी बुध, म्लेच्छ वर्ण के स्वामी शनि व राहू हैं। ये गृहस्वामी के वर्ण स्वामी कहलाते हैं।

शेषनाग (राहू) चक्र विचार

विश्वकर्मा ग्रंथ में यह वर्णन है कि खात मुहूर्त करने के पूर्व शेषनाग चक्र या राहू चक्र का अवलोकन अवश्य ही कर लेना चाहिये–

ईशानतः सर्पति कालसर्पो विहाय सृष्टिं गणयेद् विदिक्षु।
शेषस्य वास्तोर्मुख मध्यपुच्छं त्रयं परित्यज्य खनेच्च तुर्यम्।।

प्रथम ईशान कोण से शेषनाग (राहू) चलता है। जब सूर्य कन्या आदि तीन राशियों में हो तब शेषनाग का मुख पूर्व में होता है। बाद में सृष्टि क्रम से धनु आदि तीन राशियों में दक्षिण में तदनन्तर मीन आदि तीन राशियों में पश्चिम में तथा मिथुन आदि तीन राशियों में नाग का (राहू का) मुख उत्तर में रहता है।

ईशान कोण में नाग का मुख, वायव्य में मध्य भाग या पेट, नैऋत्य कोण में पूंछ रहती है। इन तीन कोणों को छोड़कर चतुर्थ आग्नेय कोण में प्रथम खात मुहूर्त करना चाहिये।

मुख, नाभि एवं पूंछ वाले स्थान पर खातमुहुर्त करने से नाना प्रकार की हानि होती है। नाग का मुख पूर्व में हो तो खात मुहूर्त वायव्य कोण में करें। नाग का मुख दक्षिण में होने पर खात मुहूर्त आग्नेय कोण पर करना चाहिये। नाग का मुख उत्तर दिशा में होने पर खात मुहूर्त नैऋत्य कोण में करना चाहिये।

शेषनाग के मस्तक या मुख पर खातमुहुर्त करने से माता पिता की मृत्यु या मृत्युसम कष्ट होता है। मध्यभाग या नाभि पर खात मुहुर्त करने से राज भय, रोग, पीड़ा होती है। पूंछ भाग में खात मुहुर्त करने से स्त्री, पुत्र, सौभाग्य एवं वंश की हानि होती है। शेष नाग के चक्र के खाली होने वाले स्थान पर प्रथम खात मुहूर्त करने से स्त्री, पुत्र, धन, धान्य, रत्न एवं सुख सौभाग्य की प्राप्ति होती है।

शेषनाग चक्र बनने की विधि

सर्वप्रथम आठ-आठ कक्ष का वर्गाकार 64 कक्षों का निर्माण करना चाहिये। प्रथम कक्ष में रविवार लिखकर आगे-आगे के वार लिखते जायें। अंतिम कक्ष में भी रविवार हो। जहां शनि और मंगलवार आए उसको छूता हुआ नाग बनाएं। प्रारम्भ ईशान से करें।

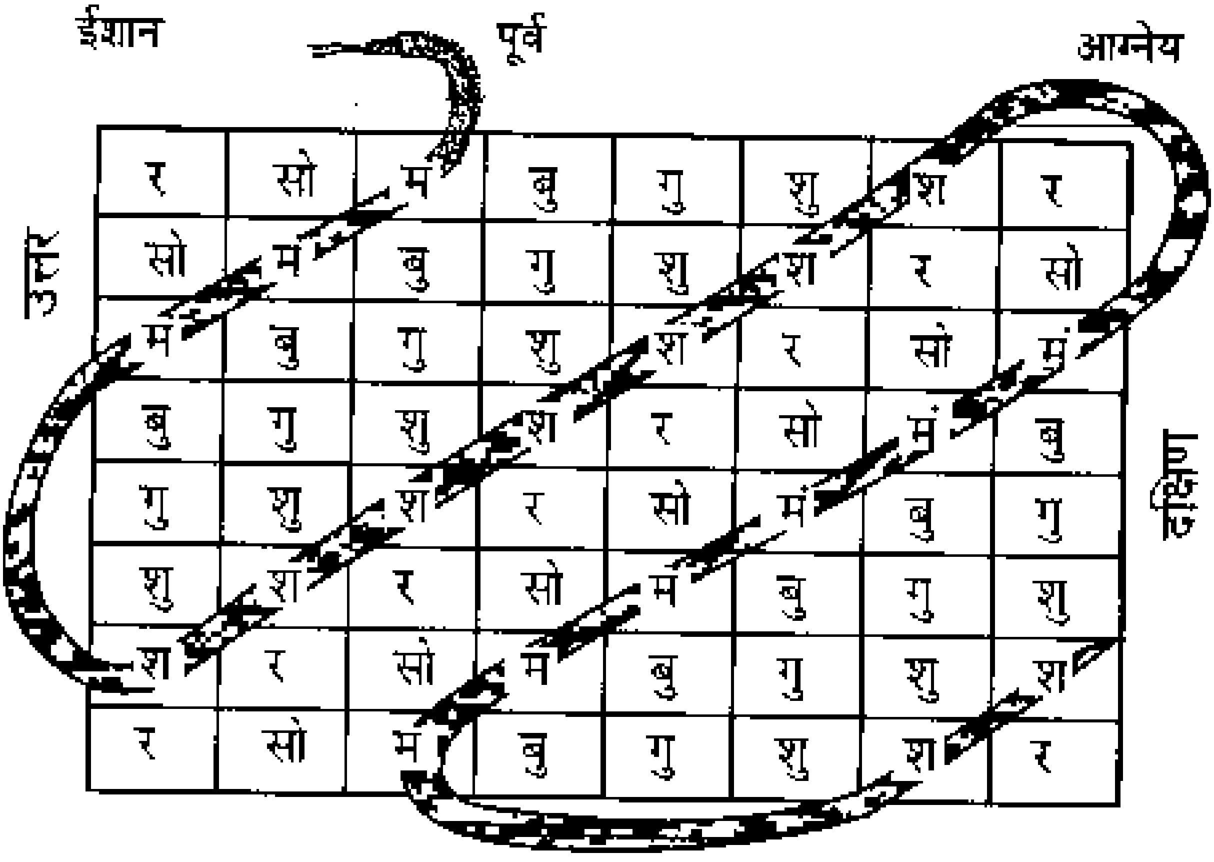

र	सो	म	बु	गु	शु	श	र
सो	म	बु	गु	शु	श	र	सो
म	बु	गु	शु	श	र	सो	मं
बु	गु	शु	श	र	सो	मं	बु
गु	शु	श	र	सो	मं	बु	गु
शु	श	र	सो	म	बु	गु	शु
श	र	सो	म	बु	गु	शु	श
र	सो	म	बु	गु	शु	श	र

इस चक्र में जहां-जहां मंगल और शनि आते हैं अर्थात् नाग की आकृति है वहां से खात मुहूर्त करना अनिष्ट है।

खात मुहूर्त करने का स्थान निर्धारण

किसी भी वास्तु का खात मुहुर्त नागमुख स्थिति के पिछले भाग में ही करना चाहिए-

नागमुख ईशान में होने पर खात मुहुर्त आग्नेय दिशा में करें।
नागमुख वायव्य में होने पर खात मुहुर्त ईशान दिशा में करें।
नागमुख नैऋत्य में होने पर खात मुहुर्त वायव्य दिशा में करें।
नागमुख आग्नेय में होने पर खात मुहुर्त नैऋत्य दिशा में करें।

जिनालय निर्माण के समय नाग मुख की स्थिति

ईशान में मुख होगा यदि मीन, मेष और वृषभ का सूर्य हो
वायव्य में मुख होगा यदि मिथुन, कर्क और सिंह का सूर्य हो
नैऋत्य में मुख होगा यदि कन्या, तुला, वृश्चिक का सूर्य हो
आग्नेय में मुख होगा यदि धनु, मकर, कुम्भ का सूर्य हो

घर निर्माण के समय नाग मुख की स्थिति

ईशान में मुख होगा यदि सिंह, कन्या, तुला का सूर्य हो
वायव्य में मुख होगा यदि वृश्चिक, धनु, मकर का सूर्य हो
नैऋत्य में मुख होगा यदि कुंभ, मेष, मीन का सूर्य हो
आग्नेय में मुख होगा यदि वृषभ, मिथुन, कर्क का सूर्य हो

जलाशय निर्माण करते समय नागमुख की स्थिति

कुंआ, बावड़ी, तालाब, नलकूप आदि निर्माण करते समय नाग का मुख निम्नानुसार रहता है-

ईशान में मुख होगा यदि मकर, कुंभ, मीन राशि का सूर्य हो
वायव्य में मुख होगा यदि मेष, वृषभ, मिथुन राशि का सूर्य हो
नैऋत्य में मुख होगा यदि कर्क, सिंह, कन्या राशि का सूर्य हो
आग्नेय में मुख होगा यदि तुला, वृश्चिक, धनु राशि का सूर्य हो

वत्सबल प्रकरण

वास्तु निर्माण कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व यह निर्धारण करना उपयोगी है कि कार्यारम्भ सही समय पर किया जाए। कार्यारम्भ करने के लिए मुहूर्त निर्धारण करने से पूर्व उसके वत्सबल का आकलन करना चाहिए। वत्सचक्र में जहां पर वत्स का मुख रहता है वहां पर खात मुहूर्त, प्रतिष्ठा, द्वारप्रवेश आदि कार्य नहीं करना चाहिए। वत्स प्रत्येक दिशा में तीन माह तक मुख रखता है तथा इतने समय तक कार्यारम्भ रोकना अनुपयुक्त है अतएव इसके लिए शास्त्रानुकूल वत्सचक्र का निर्माण करके तदनुसार कार्य करना चाहिए। वास्तुसार में वत्सचक्र का उल्लेख इस प्रकार है–

तंजहा कन्नाइतिगे पुव्वे वच्छो सहा दाहिणे धणाइतिगे।
पश्छिमदिसि मीणतिगे मिहुणतिगे उत्तरे हवइ।।19।।
गिह भूमि सत्तभाए पण दह तिहि तीस तिहि दहक्खकमा।
इअ दिणसंखा चउदिसि सिरपुच्छसमंकि वच्छठिई।।20।।

– वास्तुसार प्र. 1

कन्या, तुला, वृश्चिक राशि का सूर्य होने पर वत्स का मुख पूर्व दिशा में रहता है। धनु, मकर, कुम्भ राशि का सूर्य होने पर वत्स का मुख दक्षिण दिशा में रहता है। मीन, मेष, वृषभ राशि का सूर्य होने पर वत्स का मुख पश्चिम दिशा में रहता है। मिथुन, कर्क, सिंह राशि का सूर्य होने पर वत्स का मुख उत्तर दिशा में रहता है।

वत्सचक्र बनाने के लिए भूमि प्रत्येक दिशा के सात भाग करें। प्रथम भाग में वत्स का मुख पांच दिन, दूसरे में दस दिन, तीसरे में पन्द्रह दिन, चौथे में बीस दिन, पांचवें में पन्द्रह दिन, छठवें में दस दिन तथा सातवें में पांच दिन रहता है। चारों भाग में इसी क्रम से दिन की संख्या जानना चाहिए। वत्स का जिस अंक पर मुख होता है ठीक उसी के सामने वाले अंक पर पूंछ रहती है।

वत्स सम्मुख होने पर आयु का नाश करता है। पीछे की तरफ होने पर धनक्षय करता है। दायें या बायें तरफ होने पर सुखदायक होता है।

पूर्व दिशा में खात का कार्य करना है तो यदि उसमें सूर्य कन्या राशि का हो तो प्रथम भाग में पांच दिन तक काम न करें, अन्यत्र करें। आगे द्वितीय भाग में दस दिन तक न करें, अन्य भाग में करें। आगे तीसरे भाग में पन्द्रह

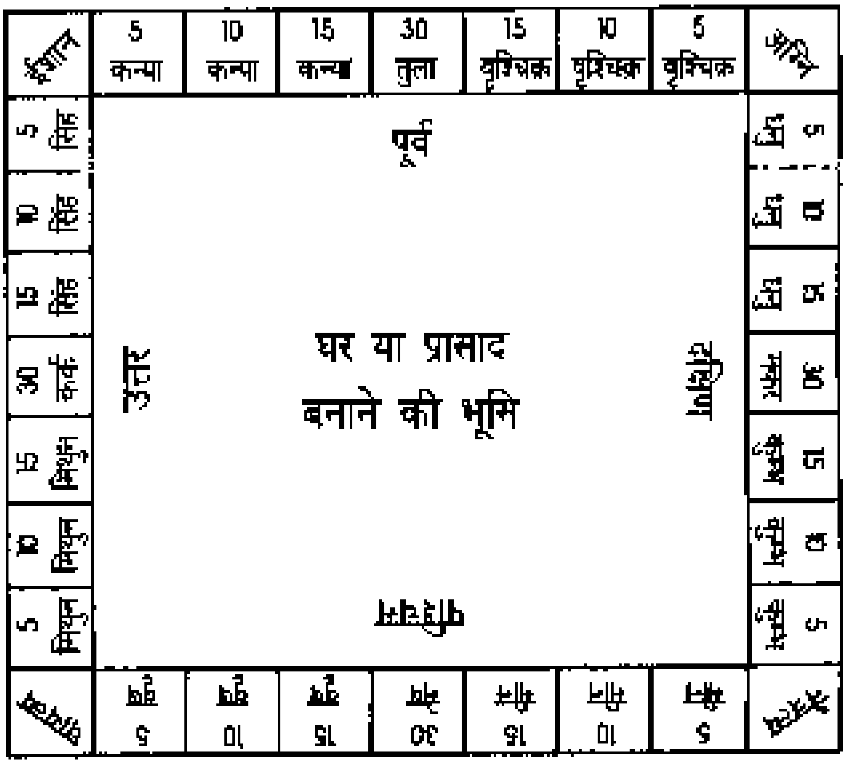

दिन तक न करें, फिर अन्यत्र करें। तुला राशि का सूर्य होने पर मध्यभाग में तीस दिन तक न करें। वृश्चिक राशि के सूर्य होने पर प्रथम पन्द्रह दिन पांचवें भाग में काम न करें, फिर दस दिन छठवें भाग में तथा फिर पांच दिन सातवें भाग में काम न करें। अन्यत्र कार्य कर सकते हैं।

पूर्व दिशा की भांति अन्य दिशाओं का भी विचार कर लेना चाहिए।

गृहारम्भ में वृषभ वास्तु चक्र

गृह, प्रासाद आदि के निर्माण कार्य का प्रारम्भ करने से पूर्व वृषभ वास्तु चक्र का भी निरीक्षण करना चाहिए। जिस नक्षत्र पर सूर्य हो उससे चन्द्रमा के नक्षत्र तक की गिनती करना चाहिए। प्रथम तीन नक्षत्र वृषभ के मस्तिष्क पर समझें। तदुपरान्त आगे आगे के नक्षत्र अलग-अलग अंगों पर समझना चाहिए।

नक्षत्र	स्थिति	परिणाम
प्रथम तीन नक्षत्र	मस्तक पर	अग्नि उपद्रव
पश्चात् चार नक्षत्र	अग्रपाद पर (पंजे पर)	निर्मित गृह निर्जन रहता है
पश्चात् चार नक्षत्र	पिछले पाद पर	स्थिरता, गृह में दीर्घकाल तक वास
पश्चात् तीन नक्षत्र	पीठ पर	लक्ष्मी की प्राप्ति
पश्चात् चार नक्षत्र	दाएं पेट पर	लाभ, धन धान्य की प्राप्ति
पश्चात् तीन नक्षत्र	पूंछ पर	गृह स्वामी का नाश
पश्चात् चार नक्षत्र	बाएं पेट पर	गृह स्वामी को दरिद्रता
पश्चात् तीन नक्षत्र	मुख पर	निरन्तर कष्ट

सामान्य रूप से सूर्य नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र तक गिनना चाहिए। इनमें प्रथम सात नक्षत्र अशुभ हैं, फिर आठ से अठारह तक के ग्यारह नक्षत्र शुभ हैं, पश्चात् उन्नीस से अट्ठाईस तक अशुभ हैं।

गृह प्रवेश समय विचार

जिस घर में छत या छप्पर न हो, चौखट या दरवाजे स्थापित न किए हों तथा वास्तु पूजन न किया गया हो, उस घर में प्रवेश नहीं करना चाहिए। उस घर में वास करना उपयुक्त नहीं है।

जातु न प्रविशेदीमान्ननाच्छन्नं नवं ग्रहम्।
कपाट रहितं तद्वद्वास्तुपूजनं वर्जितम्।।

– ज्यो. म.

प्रवेश करते समय उपयुक्त मुहुर्त आदि का निर्धारण करके प्रवेश करना ही शुभफल प्रदायक होता है। प्रवेश चार प्रकार का है–

1. अपूर्व 2. सपूर्व 3. द्वंद्वाभय 4. वधू

नवीन गृह निर्माण के उपरांत वास्तु शांति पूजन सहित जो प्रवेश किया जाता है वह अपूर्व प्रवेश कहलाता है।

तीर्थयात्रा या इस प्रकार की कोई लम्बी यात्रा, प्रवास के उपरांत गृहप्रवेश को सपूर्व प्रवेश कहते हैं।

जल, अग्नि, भूकम्प आदि विपदाओं से मकान उध्वस्त हो जाने पर उसे ठीक करवाने के बाद उसमें प्रवेश करने को द्वंद्वाभय प्रवेश कहते हैं।

विवाहोपरान्त नववधू के पतिगृह में प्रथम प्रवेश को वधू प्रवेश कहा जाता है।

प्रवेश समय विचार

उत्तरायण में ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, वैशाख माह में अपूर्व या सपूर्व प्रवेश कर सकते हैं। मुख्य गृह प्रवेश द्वार की दिशा के नक्षत्रों में अनुराधा, रेवती, मार्गशीर्ष, चित्रा, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तरा-भाद्रपदा, रोहिणी नक्षत्र प्रवेश के लिए शुभ नक्षत्र माने गये हैं।

प्रत्येक दिशा के सात नक्षत्रों का ज्ञान सप्तशलाका चक्र एवं पंचांग से किया जाता है। प्रवेशकर्ता की जन्मराशि एवं जन्म लग्न से तीसरे, 6वें, 10वें और 11वें लग्न में अथवा स्थिर लग्न में गृह प्रवेश किया जाना चाहिए। वृषभ, सिंह, वृश्चिक तथा कुम्भ स्थिर माने गए हैं।

तीनों उत्तरा, रोहिणी, हस्त, घनिष्ठा, शततारका, पुष्य, चित्रा, मूला, ये नक्षत्र वास्तुशांति के लिए शुभ माने गए हैं।

चित्रा, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, रेवती, मृगशिर, रोहिणी नक्षत्रों में गृह प्रवेश धन धान्य वृद्धिकारक होता है।

नवीन गृह प्रवेश अथवा जीर्णोद्धारित गृह प्रवेश के लिए श्रावण, मार्गशीर्ष, कार्तिक मास भी शुभ माने गए हैं।

विशिष्ट अशुभ मुहुर्त

नवीन गृह प्रवेश के लिए अत्यंत अशुभ मुहुर्त ये हैं-

चैत्र मास, रविवार या मंगलवार, अमावस्या, रिक्ता तिथि, दुष्ट चन्द्र तथा जन्म चन्द्र, जन्मस्थ चन्द्र व जन्म लग्न ये योग नवीन वास्तु में प्रवेश करने के लिए अति अशुभ हैं।

मेष, कर्क, तुला एवं मकर इन चार लग्नों में गृहप्रवेश शुभ नहीं है। खात के आरम्भ में तथा नवीन गृह प्रवेश करते समय आठवें स्थान में क्रूर ग्रह होने पर सभी अन्य शुभयोग होने पर भी कार्य नहीं करना चाहिए। अन्यथा गृहपति का नाश होता है।

मूल, आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा नक्षत्रों में गृहारम्भ या गृहप्रवेश पुत्र हानि का कारण होता है।

तीनों पूर्वा, मघा, भरणी नक्षत्रों में गृहारम्भ या गृहप्रवेश से गृहपति का विनाश होता है।

विशाखा नक्षत्र में गृहप्रवेश करने से स्त्री का विनाश होता है।

कृतिका नक्षत्र में गृहप्रवेश करने से अग्नि भय होता है।

ग्रह फल

क्रूर ग्रह केन्द्र स्थान (1-4-7-10) में तथा 2, 8, 12वें स्थान में हों तो अशुभ फल होगा किन्तु 3, 6, 11वें स्थान में शुभ फलदायक होंगे।

शुभग्रह केन्द्र स्थान (1-4-7-10) में, त्रिकोण स्थान (9-5) में, तीसरे या ग्यारहवें स्थान में हों तो शुभकारक हैं किन्तु 2, 6, 8, 12वें स्थान में अशुभ फल दायक हैं।

ग्रह संज्ञा विचार

सूर्य गृहस्थ, चंद्रमा गृहिणी, शुक्र धन तथा गुरु सुख है। ये ग्रह बलवान होने पर अपने संज्ञा वाले को बलवान करते हैं। जैसे सूर्य बलवान होने पर गृहस्वामी को, चंद्र बलवान होने पर स्त्री को शुभफल देता है। शुक्र बली होने पर धन तथा गुरु बली होने पर सुखदायक होता है।

गृह प्रवेश में मास विचार

ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, वैशाख में गृहप्रवेश उत्तम माना जाता है। कार्तिक एवं मार्गशीर्ष में गृहप्रवेश मध्यम माना जाता है।

आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, अगहन, पौष में गृहप्रवेश का फल हानि एवं शत्रु भय है। चैत्र में गृह प्रवेश धन हानि का कारण है।

माघ में गृह प्रवेश से धन लाभ, फाल्गुन में पुत्र एवं धन लाभ, वैशाख में धन-धान्य लाभ तथा ज्येष्ठ में पशु एवं पुत्र लाभ होता है।

गृह प्रवेश में नक्षत्र विचार

चित्रा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, अनुराधा, धनिष्ठा, रेवती एवं शतभिषा नक्षत्रों में गृहप्रवेश उत्तम है तथा धन, स्वास्थ्य, पुत्र एवं यश लाभ देता है।

रेवती, धनिष्ठा, शतभिषा, रोहिणी तीनों उत्तरा में चन्द्र के पूर्ण बली में शुभवार में रिक्ता तिथि को छोड़कर अन्य तिथियों में गृह प्रवेश शुभ है।

मतान्तर - पुष्य, अनुराधा, मृगशिरा स्वाति, तीनों उत्तरा, चित्रा, रेवती, धनिष्ठा, शतभिषा में गृह प्रवेश शुभ हैं। (शार्गंधर)

प्रवेश में लग्न विचार

मेष	-	सुखद, शुभयात्रा
कुम्भ	-	रोग
मकर	-	धान्य हानि
कर्क	-	नाश

शेष लग्न शुभ हैं।

बृहस्पति एवं शुक्र उदयी हों, रवि, मंगलवार छोड़कर रिक्ता तिथि छोड़कर धनिष्ठा, पुष्य, रेवती, मृगशिरा, शतभिषा, चित्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा नक्षत्र में प्रवेश करें।

निन्दित लग्न भी शुभ नवांश से युक्त हों अथवा तुला, मेष, कर्क, मकर राशियां भी गृहपति की राशि से उपचय होकर लग्न में हो तो प्रवेश शुभ होता है।

प्रवेश में तिथि विचार

शुक्ल पक्ष तथा कृष्णपक्ष में दशमी तक प्रवेश कर सकते हैं।

वास्तु पुरुष चक्र प्रकरण

वास्तु निर्माण की जाने वाली भूमि पर निर्माण की जाने वाली स्थितियों को वास्तु पुरुष की आकृति बनाकर समझाया जाता है। जिस स्थान पर वास्तुपुरुष के मस्तक, हृदय, नाभि, शिखा का भाग आता है, वहां पर वास्तु के स्तम्भ नहीं रखना चाहिए।

भूमि की आकृति में वास्तु पुरुष की कल्पना करने के लिए उसके 108 भाग किए जाते हैं। इसका अंग विभाग अगले पृष्ठ पर दी गई सारणी के अनुसार करना चाहिए।

वास्तु पुरुष अंग विभाग निम्न श्लोकों के अनुरूप किया जाता है–

ईशो मूर्ध्निसमाश्रितः श्रवणयोः पर्जन्यनामादिति–
रापस्तस्य गले तदंशयुगले प्रोक्तो जयश्चादितिः।
उक्तावर्यमभूधरौ स्तनयुगे स्यादापवत्सो हृदि,
पञ्चेन्द्रादिसुराश्च दक्षिणभुजे वामे च नागादयः।।
सावित्र सविता च दक्षिणकरे वामे द्वयं रुद्रतो,
मृत्युर्मैत्रगणस्तथोरुविषये स्यान्नाभिपृष्ठे विधिः।
मेढ्रे शक्रजयौ च जानुयुगले तौ वह्निरोगौ स्मृतौ,
पूषानंदिगणाश्च सप्तविबुधा नल्योः पदोः पैतृकाः।।

– वास्तु सार पृ. 64

इस श्लोक के अर्थ के अनुरूप वास्तु पुरुष के जिस अंग पर जिस देवता का नाम उल्लेखित है वहां उस देवता की स्थापना करना चाहिए। प्रस्तुत सारणी में इसको स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है।

इस प्रकार स्थापित वास्तुपुरुष के मुख, हृदय, नाभि, मस्तक, स्तन, लिंग आदि मर्मस्थानों पर दीवार, स्तम्भ या द्वार नहीं बनाना चाहिए। ये गृहस्वामी के लिए अहितकर होते हैं।

वास्तुपुरूष का चित्र

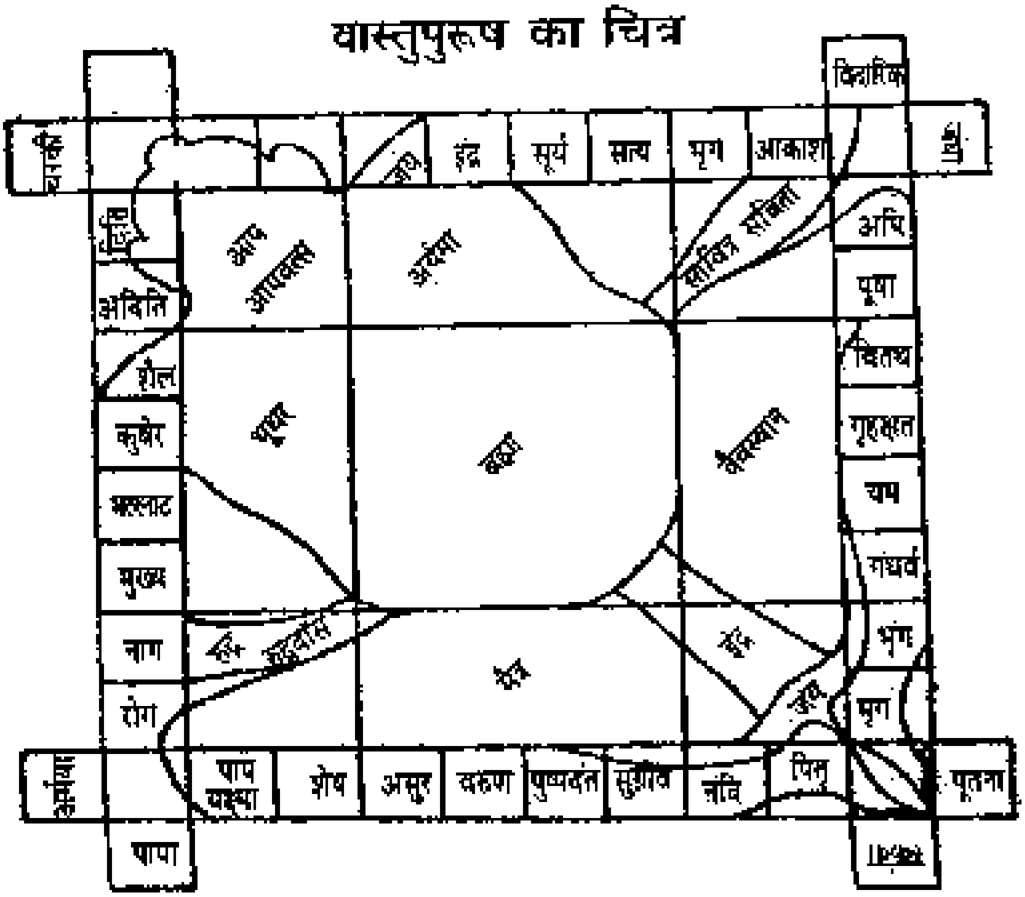

उक्त चित्र का अवलोकन करने पर वास्तु देवताओं की स्थापना वास्तु पुरुष चक्र में किन-किन स्थानों पर है यह ज्ञात होता है। ईशान कोण में वास्तु पुरुष का सिर है अतः इसके ऊपर ईश देव अर्थात् देवालय या चैत्यालय की स्थापना करनी चाहिए। अन्य देवताओं की स्थिति भी यथास्थान समझना चाहिए।

वास्तुपुरुष का अंग विभाग

वास्तु पुरुष का अंग	संबंधित देव
ईशान कोण	ईश देव
दोनों कान	पर्जन्य तथा दिति देव
गला	आपदेव
दोनों कंधे	दिति तथा अदिति
दोनों स्तन	अर्यमा तथा पृथ्वीधर
हृदय	आपवत्स
दाहिनी भुजा	इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश तथा आकाश
बायीं भुजा	नाग, मुख्य, भल्लाट, कुबेर, शैल
दाहिना हाथ	सावित्र तथा सविता
बाया हाथ	रुद्र तथा रुद्रदास
जंघा	मृत्यु तथा मैत्रदेव
नाभि का पृष्ठ भाग	ब्रह्मा
गुह्येन्द्रिय स्थान	इन्द्र एवं जय
दोनों घुटने	अग्नि एवं रोगदेव
दाहिने पग की नली	पूषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गंधर्व, भृंग, मृग
बायें पग की नली	नंदी, सुग्रीव, पुष्पदंत, वरुण, असुर, शेष, पापयक्ष्मा
पांव	पितृदेव

उपसंहार

'वास्तु चिन्तामणि' ग्रंथ के पठन से आप निश्चय ही विषय से अवगत हो गए होंगे। जैन वाङ्मय के अतिगहन महासागर से निकला यह रत्न आपके उपयोग में आए, यही आंतरिक भावना है। 'वास्तु चिन्तामणि' शास्त्र का लेखन करने का उद्देश्य तभी सार्थक होगा, जब विवेकी पाठक इसका सारभूत तथ्य समझकर अपनी आकुलता दूर करेंगे। इससे न केवल जिनवाणी पर पाठकों की आस्था का विकास होगा बल्कि तदनुसार आचरण कर विवेकी श्रावक अपना लक्ष्य जैन धर्म की ओर लगाएंगे तथा धर्म पुरुषार्थ का कर्त्तव्य पूर्ण करेंगे।

हमने भरसक प्रयास किया है कि जैन वास्तु अर्थात् स्थापत्य से संबंधित सभी सारभूत तथ्य इस पुस्तक में सम्मिलित हो जायें। रेखा-चित्रों के माध्यम से यथा संभव विषय को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। गृह चैत्यालय के प्रकरण में यह स्मरणीय है कि उल्लेखित आकृति से बड़ी जिन प्रतिमा पूजा गृह में न रखें। जिन प्रतिमा अप्रतिष्ठित न रखें। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित प्रतिमा ही पूज्य होती है। प्रतिमा का अभिषेक, प्रक्षाल, पूजनादि क्रियाएं नियमित रूप से करना आवश्यक है। इस प्रकरण में कोई भी शंका होने पर मुनिराजों अथवा प्रतिष्ठाचार्यों से परामर्श अवश्य कर लेवें।

नवीन आवास गृह निर्माण करने से पूर्व वास्तु शास्त्र के नियमों का ध्यान रखकर ही कुशल आर्किटेक्ट से मानचित्र बनवाना चाहिये। निर्माण संपूर्ण हो जाने के बाद सुधारने के लिए तोड़ फोड़ करना उपयुक्त नहीं है। ऐसा करने से अनावश्यक परेशानी, आर्थिक क्षति एवं समय का अपव्यय होता है। यथासंभव ऐसी दुविधाओं से बचना उचित है। पूर्व-निर्मित गृह को तभी क्रय करें जबकि वह शास्त्र के नियमों के अनुकूल हो। संभव है कि पूर्व निवासी उस मकान के वास्तु दोष के कारण पीड़ित हो तथा अपनी परेशानियों से मुक्त होने के लिए गृह को बेच रहा हो। वास्तुदोष आकलन करना भी आवश्यक है। अनेकों बार निर्माण 100 प्रतिशत वास्तु शास्त्र के अनुरूप नहीं हो पाता, प्राकृतिक अथवा मनुष्य निर्मित कई ऐसी असमर्थताएं होती हैं, जिनका न तो निराकरण हो पाता है, न ही उस संपदा से मुक्ति मिल पाती है। ऐसा पारिवारिक विभाजन के द्वारा प्राप्त सम्पत्ति के प्रकरण में अक्सर देखा जाता

है। उदाहरणार्थ पूर्व में पहाड़ी या बहुमंजिली इमारत होने पर हटाई जाना असंभव है। ऐसी परिस्थिति में नियमों के अनुकूल वास्तु निर्माण करने से दोष कम हो जाते हैं। जितना बन सके उतना वास्तु दोष कम आए, ऐसी डिजाइन बनाकर ही निर्माण कार्यारम्भ करना चाहिए।

वास्तु निर्माण प्रारम्भ करने से पूर्व सुयोग्य मुहूर्त अवश्य निकालना चाहिए। निर्माण कार्य दक्षिण एवं पश्चिम दिशा से प्रारम्भ करना चाहिए। कच्चा मटेरियल भी प्लॉट में इन्हीं दिशाओं में गिरवाना चाहिए। ध्यान रखें कि निर्माण के दौरान भी उत्तर, पूर्व एवं ईशान की तरफ अपेक्षाकृत कम भार रखें। पानी के लिए कुंआ या बोर वेल ईशान की तरफ पहले बनवाना फायदेमंद रहता है। पुरानी सामग्री को प्रयोग न करना श्रेयस्कर होता है, क्योंकि पुरानी वास्तु में उसकी आयु एवं शक्ति पहले ही क्षीण हो चुकी होती है।

अन्ततः मैं सिर्फ इतना कहना चाहता हूं कि वास्तु शास्त्र के नियम सभी निर्माण संरचनाओं में लागू होते हैं। चाहे वे बंगले हों या महल अथवा छोटे मकान हों या आधुनिक फ्लैट्स वाले अपार्टमेन्ट्स। पुरुषार्थ के अनुरूप फल मिलना स्वाभाविक ही है। इतना अवश्य है कि पूर्वोपार्जित कर्म तथा वर्तमान कर्मों का मिला जुला परिणाम ही सामने आता है तथा पूर्वोपार्जित कर्म यदि तीव्र हों तो उन्हें किसी सीमा तक भोगना अवश्य पड़ता है। अतएव सत्पुरुषार्थ करने की प्रेरणा देना ही हमारा उद्देश्य है। विवेकी पाठक यदि इसके माध्यम से अपना गृहस्थ जीवन सुखमय एवं निराकुल बनाते हैं, तो ग्रंथकार अपने आपको सफल मानेगा। पाठक धर्म पुरुषार्थ करके वीतरागी अहिंसामयी जिनवाणी का आश्रय लेकर जिन गुरुओं के सदुपदेश से आत्म कल्याण करें। सभी जीवों का कल्याण हो। सभी सुखी हों तथा संसार पाश से मुक्त होकर आत्म कल्याण करें, यही आंतरिक भावना है। इति।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुख भाग् भवेत्।।
संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र सामान्य तपो धनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शांतिं भगवान् जिनेन्द्रः।।
प्रध्वस्त घाति कर्माणः केवलज्ञान भास्कराः।
कुर्वन्तु जगतां शांति वृषभाद्या जिनेश्वराः।।

प्रज्ञाश्रमण आचार्य देवनन्दि

वास्तु पूजन

जब किसी नवीन वास्तु का निर्माण कराया जाता है अथवा नया मन्दिर निर्मित किया जाता है तो उसके निमित्त वास्तु शान्ति विधान अवश्य ही किया जाना चाहिए। तालाब, कुंआ, बोरवेल इत्यादि का निर्माण कराने पर भी वास्तु शान्ति किया जाना आवश्यक होता है। दुकान, उद्योग, विद्यालय, चिकित्सालय या कोई अन्य वास्तु हो तो भी वास्तु शांति किया जाना आवश्यक है।

जिनागम में वास्तु शान्ति के लिए पृथक-पृथक प्रकार के वास्तु चक्रों को बताया गया है। इनको एक बड़े तख्ते पर मण्डल मांडकर बनाना चाहिये। तत्पश्चात् उस वास्तु देवता के लिए दर्शाये अनुसार पूजा में नैवेद्य पृथक-पृथक कोष्ठक में रखना चाहिए।

ग्रामे भूपतिमन्दिरे च नगरे पूज्यश्चतुष्टिकै-
रेकाशीतिपदैः समस्त भवनेजीर्णे नवाब्ध्यंशकैः।
प्रासादे तु शतांशकैस्तु सकले पूज्यस्तथा मंडपे,
कूपे षण्णाव चन्द्रभाग सहितैर्वाप्यां तड़ागे वने।।

गांव, राजमहल, नगर में चौंसठ पद का वास्तु चक्र पूजन करना चाहिए। सभी प्रकार के घरों में इक्यासी पद का, जीर्णोद्धार में उनचास पद का, समस्त देवालयों तथा मंडप में सौ पद का तथा कुंए, बावड़ी, तालाब एवं वन में एक सौ छियानवे पद का वास्तु पूजन करना चाहिए।

वास्तु शांति विधान

जैन एवं जैनेतर दोनों में वास्तु शांति पूजा का प्रचलन है किन्तु इसके लिए समुचित जानकारी सामान्य जनों को नहीं होती। कुछ गृहस्थ शांति विधान अथवा अन्य सामान्य पूजा पाठ करके अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेते हैं। जैनेतर सम्प्रदायों में अनेकों स्थानों पर पूजा के स्थान पर विभिन्न हिंसा जन्य क्रियाएं तथा बलि का आयोजन करने की पद्धति देखी जाती है। गृह प्रवेश एक अत्यंत मंगलमय शुभ कर्म है तथा इस अवसर पर किसी भी प्राणी का वध करना तथा उसकी बलि से शांति मानना केवल भ्रम है। यह एक पापमूलक क्रिया है तथा गृह प्रवेश के निमित्त की जाने वाली पशु बलि से कभी भी गृह उपयोग कर्ता सुखी नहीं रह सकता है।

प्राचीनकाल से प्रचलित शास्त्रों के अनुरूप आशाधरजी विरचित वास्तु विधान को आधार करके यह वास्तु शांति विधान प्रस्तुत है। गृहस्थजन इसका सदुपयोग करें। श्री जिनेन्द्र प्रभु की पूजा समाहित वास्तु शांति विधान करके वास्तु भूमि पर स्थित वास्तु देवों को अर्घ्य देकर गृह प्रवेश करना इष्ट है।

देवालय निर्माण करते समय निम्नलिखित चौदह अवसरों पर शांति पूजा करने का निर्देश शिल्प शास्त्रों में किया गया है–

1.	भूमि का आरम्भ	2.	कूर्म न्यास
3.	शिलान्यास	4.	सूत्रपात (नल निर्माण)
5.	खुर शिला स्थापन	6.	द्वार स्थापन
7.	स्तम्भ स्थापन	8.	पाट चढ़ाते समय
9.	पद्म शिला स्थापन	10.	शुकनास स्थापन
11.	प्रासाद पूरूष स्थापन	12.	आमलसार चढ़ाना
13.	कलशारोहण	14.	ध्वजारोहण

प्रासाद मंडन 4/36-37-38

यदि अपरिहार्य कारणों से चौदह अवसरों पर शांति पूजा न हो सके तो कम से कम पुण्याह सप्तक की सात पूजा अवश्य करें।

निर्माण प्रारम्भ के पूर्व भूमि शुद्धि पूजन विधान

घर या मन्दिर निर्माण प्रारम्भ करने के लिए सर्वप्रथम शुभ मुहुर्त का चयन विद्वान प्रतिष्ठाचार्य से कर लेना चाहिए। मन्दिर निर्माण कर्ता, व्यक्तियों एवं समाज के परमपूज्य आचार्य परमेष्ठी से विनय पूर्वक मन्दिर निर्माण कार्य प्रारम्भ करने के लिए विधि पूर्वक निवेदन करना चाहिए। आर्शीवाद प्राप्त कर चतुर्विध संघ की उपस्थिति में समस्त समाज के साथ प्रभु के प्रति भक्ति भाव रखते हुए अभिमान आदि का कषाय विचारों को त्याग कर वास्तु निर्माण हेतु भूमि पूजन करना चाहिए। भूमि पूजन विधि के द्वारा वहां के निवासी देवों से इस सत्य कार्य को करने की अनुमति एवं सहयोग की प्रार्थना करना चाहिए। मन्दिर निर्माण कर्ता द्वारा अत्यंत प्रसन्नता पूर्वक विनय गुण से सहित होकर भूमि पूजनादि कार्यों को सम्पन्न करने से कार्य निर्विघ्न होता है। इस अवसर पर प्रतिष्ठाचार्य एवं सूत्रधार का यथोचित सम्मान करना चाहिए। सर्वप्रथम मंगल द्रव्यों से वास्तु विधान मंडल बनायें। तदुपरांत वास्तु शांतिपूजन करें। इसके उपरान्त ही भूमि पर कार्य आरम्भ करें।

चौंसठ पद के वास्तु चक्र का स्वरूप

चौंसठ पद के वास्तु में चार पद का ब्रह्मा; चार-चार पद का अर्यमादि चार देव; मध्य कोने में आप, आपवत्स आदि आठ देव दो-दो पद के; ऊपर के कोने में आठ देव आधे-आधे पद के तथा शेष देव एक-एक पद के रखना चाहिए।

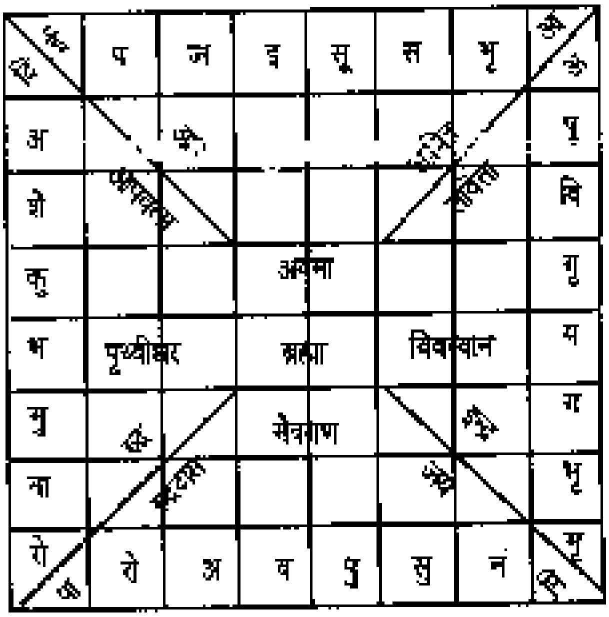

चौंसठ पद का वास्तु चक्र

इक्यासी पद का वास्तु चक्र

इसमें नवपद का ब्रह्मा, अर्यमादि चार देव छह-छह पद के, मध्य कोने में आप, आपवत्सादि आठ देव दो-दो पद के, ऊपर के बत्तीस देव एक-एक पद के हैं।

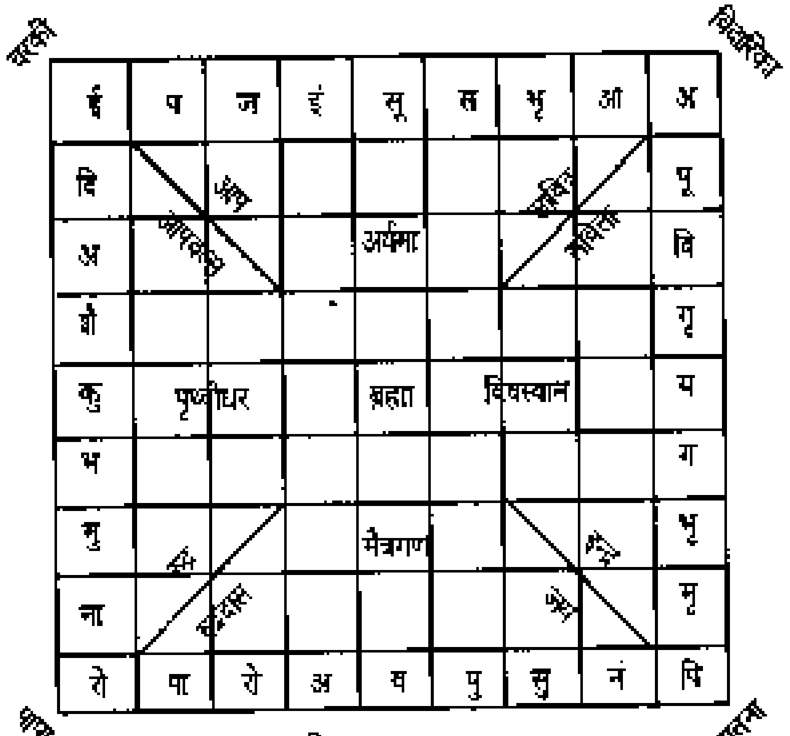

इक्यासी पद का वास्तु चक्र

सौ पद का वास्तु चक्र

ब्रह्मा सोलह पद का; ऊपर के कोने में आठ देव डेढ़-डेढ़ पद के; अर्यमादि चार देव आठ-आठ पद के; आप आपवत्सादि आठ देव दो-दो पद के मध्य कोने में तथा शेष देव एक-एक पद के हैं।

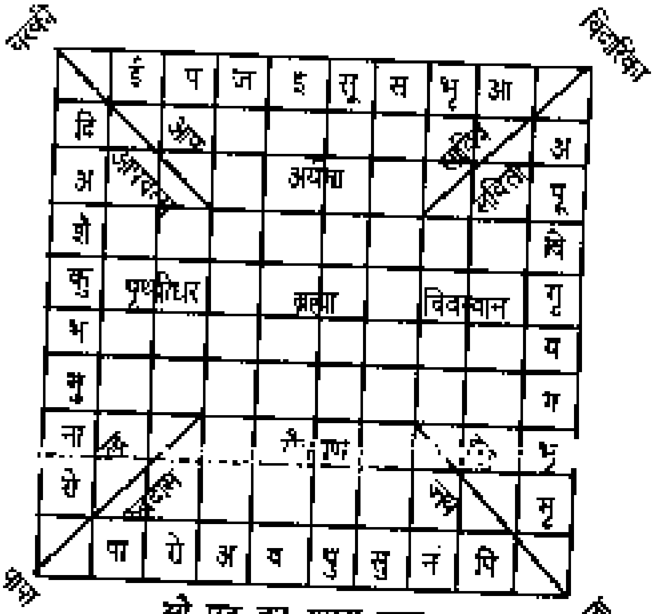

सौ पद का वास्तु चक्र

उनचास पद का वास्तु चक्र

इसमें चार पद का ब्रह्मा; अर्यमादि चार देव तीन-तीन पद के आप आदि आठ देव नौ पद के, कोने के आठ देव आधे-आधे पद के, बाकी के चौबीस देव बीस पद में स्थापित करना चाहिए। बीस पद में प्रत्येक के 6-6 भाग करने पर 120 भाग हुए। इनमें 24 का भाग देने से 5 भाग प्रत्येक देव के आते हैं।

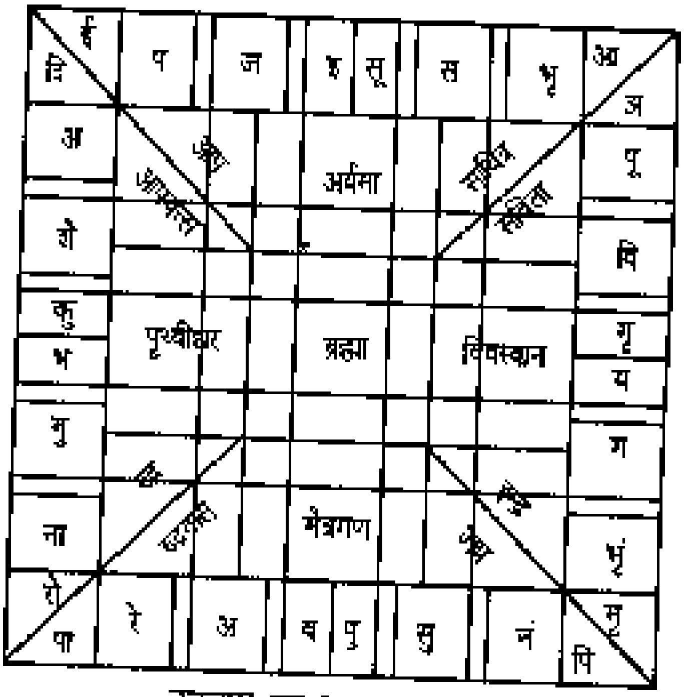

उनचास पद का वास्तु चक्र

आचार्य वसुनन्दि ने अपने ग्रंथ प्रतिष्ठासार में इक्यासी पद के वास्तु चक्र का पूजन बताया है। प्रथम भूमि को पवित्र करके वास्तु पूजा करनी चाहिए। अग्र भाग में वज्राकृतिवाली तिरछी और खड़ी 10-10 रेखाएं खींचे! इस पर पंचवर्ण के चूर्ण से 81 पद वाला अच्छा मंडल बनाना चाहिए।

मंडल के बीच के नौ कोठों में आठ पांखुड़ी का कमल तथा उसके मध्य में अरिहंत परमेष्ठी को णमोकार मंत्र पूर्वक स्थापित करना व पूजन करना चाहिए। कमल के कोने वाली चार पांखुड़ियों में जया, विजया, जयंता तथा अपराजिता देवियों की स्थापना कर पूजा करें। चार दिशा वाली पांखुड़ियों में सिद्ध, आचार्य उपाध्याय एवं साधु की स्थापना कर पूजन करना चाहिए। कमल के ऊपर के 16 कोठे में 16 विद्यादेवियां तथा इनके ऊपर के 24 कोठों में 24 शासन देवताओं को तथा इनके ऊपर के 32 कोठों में इन्द्रों को क्रमशः स्थापित करना चाहिए।

तदनन्तर अपने-अपने देवों के मन्त्राक्षर पूर्वक गंध, पुष्प, अक्षत, दीप, धूप, फल, नैवेद्य आदि चढ़ाकर पूजन करें। दस दिक्पाल तथा 24 यक्षों की भी यथाविधि पूजा करना चाहिए। जिनबिम्ब पर अभिषेक तथा अष्ट प्रकार पूजा करना चाहिए।

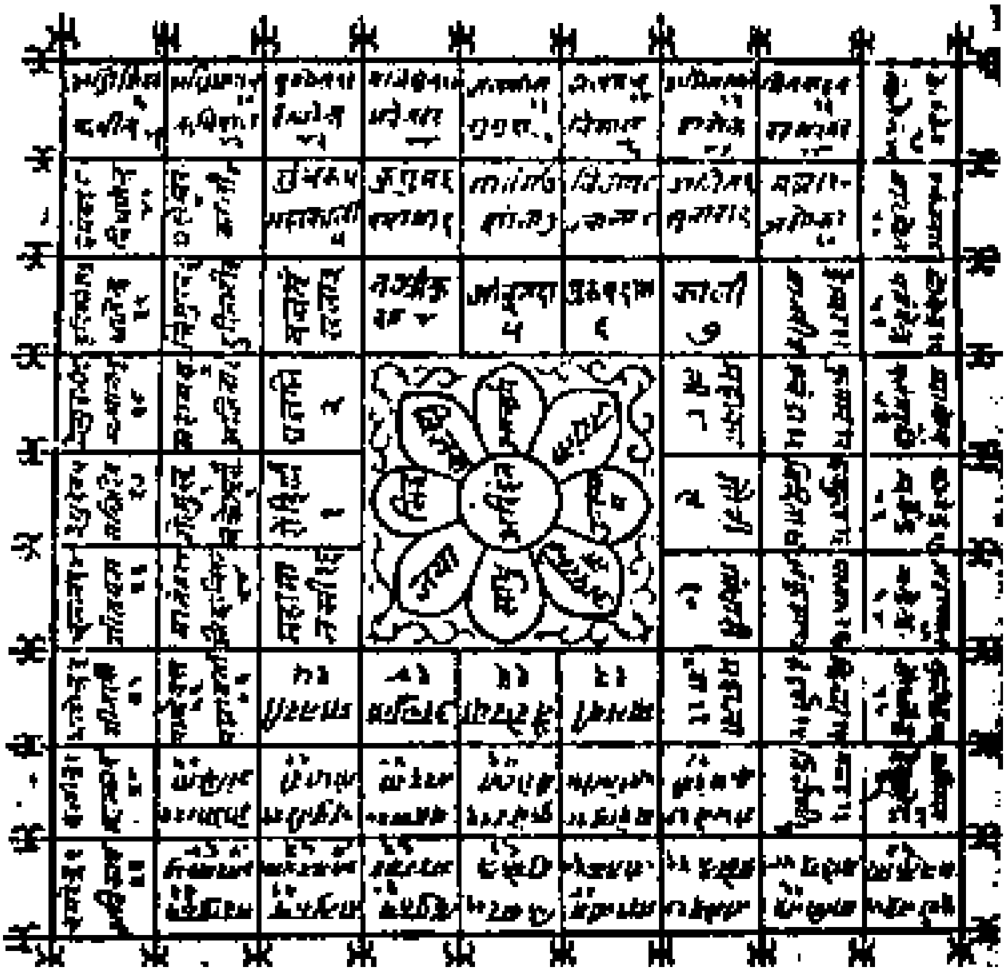

वास्तु विधान करने की विधि

इस विधान हेतु इन्द्राणी व प्रतिष्ठाचार्य स्नानादिक से निवृत्त हो शुद्ध वस्त्र (धोती-दुपट्टा) पहनें, मन्दिर में ईर्यापथ शुद्धि करके भगवान के दर्शन करें। जिस स्थान, भूमि पर यह विधान होना है वहाँ पर जिन भगवान की प्रतिमा लें जाकर वेदी में विराजमान करें या उच्चासन पर वेदी को तोरण आदि से सजाएँ। माँडला माँड कर इन्द्र-इन्द्राणी सकलीकरण, इन्द्र प्रतिष्ठा, मण्डप शुद्धि आदि करने के बाद पंचामृत अभिषेक करके जिन भगवान को मण्डल पर विराजमान करें। फिर सभी मिलकर देव, शास्त्र, गुरु की पूजा करें। अन्य अर्घ चढ़ाएँ और यह विधान प्रारम्भ करें। विधान समाप्त होने पर विसर्जन कर दें, होमादि करें।

विधान हेतु पूजन सामग्री

65 पानी नारियल या हरे फल या 7 सुपारी या बादाम, शक्ति अनुसार, दो किलो चावल, 100-100 ग्राम बादाम, छुहारा, सुपारी, गोले की चिटक, काजू, बड़ी इलायची, कपूर 50 ग्राम, लौंग 50 ग्राम छोटी इलायची, 10 फूल मालाएँ, 500 ग्राम घी, 75 जनेऊ एवं अलग-अलग भक्ष्य पदार्थ या घर पर बनी गोले की कोई मिठाई आदि।

पंचामृत अभिषेक की सामग्री

शुद्ध जल, दूध, दही, घी, चन्दन, केसर, फलों का रस, चावल, कपूर, चन्दन का बुरादा, जायपत्री, इक्षुरस, सर्वौषधि, हरे फल, फूल आदि।

वास्तु विधान मंडल

ऊपर लिखे अनुसार वास्तु पूजन के लिए 49 वास्तु देवताओं के वास्तु मंडल में 76 कोठे बनाना चाहिए। उसमें पूजन में और वास्तु देवता के नीचे लिखे अनुसार दिया हुआ नैवेद्य पदार्थ, अलग नैवेद्य पात्र में चढ़ावें।

वास्तु देवता के नैवेद्य पदार्थ

सामान्य नैवेद्य पदार्थ – चावल के बड़े, घी, मोदक

विशेष नैवेद्य पदार्थ – निम्नलिखित सारणी के अनुसार लें-

क्र.	वास्तु देवता का नाम	नैवेद्य पदार्थ	नैवेद्य पात्र संख्या
1.	ब्रह्म	चावल की धानी, शक्कर, घी, दूधपाक	4
2.	इन्द्र	कोष्ठ, उपलेट, फूल	2
3.	अग्नि	दूध, घी, तगर	1
4.	यम	तिल पपड़ी, तुअर की गुगरी	2
5.	नैऋत	तिल्ली का तेल, तिल पपड़ी	1
6.	वरुण	धाना, दूधपाक	2
7.	पवन	पिसी हल्दी	1
8.	कुबेर	दूधपाक	2
9.	ईशान	घी, दूधपाक	1
10.	आर्य	मैंदा का गुगरा, फल	3
11.	विवस्वान्	उड़द का गुगरा, तिल	3
12.	मित्र	दही, धरो, मैंदा का गुगरा	3
13.	भूधर	दूध	3
14.	सविंद्र	धाना, चावल का मुरमुरा, धाणी (लावा)	1
15.	साविंद्र	कपूर, काश्मीर, लौंग, उपलेट आदि से सुगंधित जल	1
16.	इन्द्र	मूंग का चूर्ण, फल	1
17.	इन्द्रराज	चावल के बड़े, मूंग का चूर्ण	1
18.	रुद्र	गुड़, मैदा का गुगरा	1
19.	रुद्रराज	गुड़, चावल का लोट, अम्बोली	1
20.	आप	गुड़, चावल का आटा, सफेद कमल, शंख, अम्बोली	1
21.	आपवत्स	गुड़, चावल का आटा, सफेद कमल, शंख, अम्बोली	1

क्र.	वास्तु देवता का नाम	नैवेद्य पदार्थ	नैवेद्य पात्र संख्या
22.	पर्जन्य	घी	1
23.	जयंत	ताजा मक्खन	1
24.	भास्कर	गुड़, सफेद फूल	2
25.	सत्यक	गुड़, सफेद फूल	2
26.	भृष	ताजा मक्खन का गोला	2
27.	अंतरिक्ष	हल्दी, उड़द का चूर्ण	1
28.	पूष	अरहर के बाकरे, दूध	1
29.	वितथ	सुंठ, काली मिर्च, पिंपल	1
30.	राक्षस	गुड़	2
31.	गन्धर्व	कपूर और चन्दन मिश्रित गंध	2
32.	भृंगराज	दूधपाक (रबड़ी)	2
33.	मृषराज	उड़द की गुगरी	1
34.	दौवारिक	चावल का आटा	1
35.	सुग्रीव	मोदक (लड्डू)	1
36.	पुष्पदंत	पुष्प, जल	2
37.	असुर	लाल भात	2
38.	शोष	तिल, अक्षत	2
39.	रोग	गुड़ डाली हुई वेढमी (मीठी पुरी)	1
40.	नाग	शक्कर, दूध, पका हुआ भात	1
41.	मुख्य	श्रीखण्ड	1
42.	भल्लाट	गुड़, भात	2
43.	मृगदेव	गुड़ के मालपुआ	2
44.	अदिति	मोदक	2
45.	उदिति	तिल पपड़ी	1
46.	विचारी	नमक डाला हुआ भात (चावल)	1
47.	पूतना	तिल, चावल (भात)	1
48.	पापराक्षसी	मूंग की गुगरी	1
49.	चरकी	गुड़	1

अथ वास्तु विधानम्

ॐ परमब्रह्मणे नमो नमः। स्वस्ति स्वस्ति। जीव जीव। नंद नंद। वर्धस्व वर्धस्व। विजयस्व विजयस्व।अनुशाधि अनुशाधि। पुनीहि पुनीहि। पुन्याहं पुन्याहं। मांगल्यं मांगल्यं। पुष्पांजलिः।।

घंटाटंकार वीणाक्कणित मुरजधां धां क्रियां काहलार्चि।
झींकारोदारभेरी पटहदलदलंकार संभूत घोषैः।।
आक्रम्याऽशेषकाष्ठातटमघाटितं प्रोद्घटं दभ्रटिभ।
मिष्ठाधिष्ठार्हविष्ठि प्रमुखमिह लसांतांजलि प्रोद्धिपामि।।
ॐ ह्रीं वाद्यमुद्घोषयामि स्वाहा। वाद्यमुद्घोषणं।

वाद्य बजवाएं।

ॐ जलस्थलशिलावालुका पर्यन्तरभूमिशोधनपुरः सरपरिपूरित शुद्धवालु केष्टकोमल मृत्स्नाधिष्ठिताधिष्ठाने। पंचविधरत्नरमणीय पंचालंकारोपितशाल कुथंमयस्तम्भ संभृते। सततशैत्य मांद्य सौरभ संसक्तमंदानिलांदोलित पताका पंक्ति विलसिते। सुवर्णशिखर विन्यस्तमाणिक्य मयूखमालांवर विरचित श्रीविमानविराजमाने। चतुर्दिक्षुगोपुर द्वारतोरणोभय पार्श्वप्रदेश विनिहित मणिमय मंगलकलशे।। विविध-विमलांबर विरचितवितान विलंबित मुक्तादामाद्यलंकृते। मुक्तिवधूस्वयंवर श्रीविवाहविभव निवासभासुरे। समुचित समस्तस पर्यायदृव्यसंदोहसमन्वित विपुलतरललित चैत्यायतने। जिनेन्द्र कल्याणभ्युदय महामहोत्सवभिरामेषु। वास्तु मंडपभ्यंतरेषु पुष्पांजलि।

पुष्पांजलिः।

अथ पूजाक्रमः

पूर्ववद्वायुकुमारादिप्रयोगेणभूमिसंस्कारः।
यहां पंचकुमार पूजा करना चाहिए।

श्री मोक्ष लक्ष्मीश जिनेन्द्रबिम्बं श्री मोक्षलक्ष्मीशवचो विलासं।
श्री मोक्षलक्ष्मीशगणेन्द्र पादौ श्री मोक्षलक्ष्मीशपुरः समर्चे।।1।।
वातारवग्निसुधाशनैश्च भुजनाम् श्री क्षेत्रपालं कृतं।
संतर्प्याऽऽशु कुशान् दिशासु नवसु ब्रह्मादिकासु क्रमात्।।
गंधार्द्रहरितालितालिकलितान् रत्निप्रमाणान्विता।
विन्यस्याऽक्षय संपदे बहुफलैः श्रीवास्तुभूमियजे।।2।।

ॐ सर्वाभ्युदयनिश्रेयसदुस्तर निस्थितसुखसाधक तथा रत्नत्रय सद्धर्म प्रतिपादक सर्व वीतराग परमार्हत्परमेश्वर स्थापना न्यासनि बंधन चैत्य चैत्यालय संरक्षण सर्वविघ्नोपनोदन निकायिकानां। संभावित सर्वमाननीय भाव्यधिप वास्तुदेव पूजाधिकरण भूतस्य।समुचितोद्देश विरचित एकचतुर्द्वादश विंशत्यष्ठोत्तर विंशतिषट्त्रिंशत्प्रमाणाष्टक माला शिलाषट्कसूत्र सन्धि चतुष्टयादि विशिष्ट लक्षणोपलक्षित चतुःषष्ठिकोष्ठ मंडित मंडूक पदस्य। मध्यमभागे स्थित ब्रह्मण स्तदभिमुख देवभागाः। पूर्वादि दिग्गत त्रि त्रि भाग भागिनां चतुर्णा मार्यादि देवानां। मानुष पदाग्नेयादि कोण चतुष्ठयार्धार्धि समस्थिति सविंद्राद्यष्ट देवानां। पूर्वादि दिग्गताष्ट दिक्पाल केशवामतरालादिपदवर्तिपजघन्यादिचतुर्विंशतिदेवोपलक्षितपै शचिकपदे वर्तमानानां। स्वस्व दक्षिणैकैकांत पदभोगिनां। जयांतांतरे पर्जन्य दिपावक पूषनैऋत दौवारिक पवन नाग भिधान देवानां। अग्नेयादि चतुःकोण बहिर वस्थितानां। विचारी प्रभृत्यपदचतुर्देवानां। ब्रह्मणो दक्षिमवलोकं यथा महेशां सर्वेषां। आर्यशिरोब्रह्मकायविवस्वदभूधरदक्षिणोत्तरपार्श्व मित्रमोहन सविंद्रा युगापनवेतरभुजेन्द्रद्वयदक्षिणोत्तरभरणकुब्जदौर्मुखशायिनां। मर्मादिनीत वास्तु सहभरितसर्ववास्तुदेवानां। जलगन्धाक्षतपुष्पदीपधूपान्वितेन पूपव्यंजन मोदक स्वस्वरूप सामान्य बलिना जलधारांत्य वंक्ष्यमाण विशेष बालिना। पूनर्जलधारावसानेन स्वस्वमंत्राभिमंत्रितेन समलंकृतकन्या सुयोग गणिकान्यलमो द्वतेन सुप्रसादमापाद यतुकामाः। स्नानानुस्नान सितधौतांतरियोत्तारीय परिवासभूषानुलेपनमाल्यप्रासादन्कलिताः। कृत सकलीकरण क्रियाः। तत्प्रतीन्द्राः सत्परिचारकाः एते वयं देवाद्यर्हत्सुहृदादि स्वग्रहादि सुख विविधेच्छितेषु। विधियमानेष्वष्ट कर्मणिदैवितोपद्रवे वा भवद्भवित सर्व विन्धोपशमतासुमुक्त सर्व वास्तुदेवानां प्रत्येक पूजाक्रमंयथाक्रममुपक्रमामहे।

पुनः पुष्पांजलिः।।

अथाऽर्हदीशप्रतिमाप्रतिष्ठा, विधाननिर्विघ्न समाप्त सिद्धयै।
ततोऽकुरार्चा दिवसाच्च पूर्वे, दिने क्षपायां विदधीत नांदी।।1।।
तत्राऽपि पूर्वविदधीत वास्तु दिवाकसां भेकपदे स्थितानाम्।
ततः परे वा विधिवत्सपर्यां, क्रमेण सामान्य विशेष कल्पां।।2।।
नत्वा समार्चम्य समेत्य धाम, कृत्वा तदीर्यापथशोधनं च।
स्तुत्वा च सिद्धान सकलीविधानं, कृत्वैकतानो विजनप्रदेशे।।3।।
कृत्वा समासाज्जिनराजपूजां, श्रुतं समाराध्य तथा मुनीद्रान्।
गुरोरनुज्ञां शिरसा गृहीत्वा दत्वा नियोगं परिचारकाणां।।4।।
प्रत्यग्रधौतोत्तम शुभावासः कृत्कंतरीय च तथोत्तरीयं।
हैमोपवीतांगदहारमुद्रा किरीट कर्णाभरणैर्विभूषितः।।5।।
तद्देवपूजासमये समुक्त मंत्रात्परं वाक्यमभाष्यमाणः।
चतुः परिचार विधिज्ञयुक्तः समाहितात्मा यजनप्रवीणः।।6।।
इन्द्रः प्रतीन्द्रेण समं विधाय, पदं क्रियार्थे मुखमंडपादौ।
पदेऽत्र दद्यात् पददेवतानां, बलिं सुयोगगणिकादिनित्यं।।7।।
बलिश्च सामान्य विशेषभेदात सुरादितुष्टो द्विविधः पदेशां।
एकस्तु सव्यंजनपूपभक्तः शेषस्तु तत्वपृथगिष्टवेद्यः।।8।
ब्रह्माणमिंद्राधिवसादिनाथा नर्यादिदेवांश्च सविंदपूर्वान्।
पर्जन्य पौरस्त्यदिवौकसोंऽपि विचारीकाद्याश्च यजे क्रमेण।।9।।
तदा तु पूजां सकलामराणामुश्चारयन्मानस एव मंत्रं।
तत्र प्रयुक्तं वचनं च यद्योतन्मंत्रतः प्राक् पठनीयमेव।।10।।

इति प्रारंभनिरुपणम्

विदधामि सलिलमलयजकुसुमैः संपूर्णपाणिपात्रेण।
आह्वाहनस्य करणं स्थितिकरणं सन्निधीकरणं।।

ॐ ह्रीं अर्हत्परमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर संवौषट स्वाहा। आव्हानम्
ॐ अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्वाहा। स्थापनम्
ॐ अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् स्वाहा। सन्निधिकरणं

अष्टकम्

गंगादितीर्थह्रददिव्यतोयैर्गांगेय मुख्योज्वलकुंभ पूर्णैः।
शीतांशु शीतैर्भवतापहारैः संपूजयामो जिनपादपद्मो।।

ॐ ह्रीं अर्हत् परमेष्ठिने जलं निर्वपामि स्वाहा।1।

काश्मीर कालागरु पुष्करेन्दु व्यामिश्रितात्युत्तमगंधसारैः।
तापापनोदैः सुरभी कृताशैः संपूजयमों जिनपादपद्मौ।।
ॐ ह्रीं अर्हत् परमेष्ठिने गन्धम् निर्वपामि स्वाहा।2।
शालीय शुभ्राक्षत मंजु पूंजैरावि ष्कृताराधन पुण्य पुंजैः।
पाथेय भूतैः सुदृशां सुमार्गे संपूजयमों जिनपादपद्मौ।।
ॐ ह्रीं अर्हत परमेष्ठिने अक्षतान् निर्वपामि स्वाहा।3।
आध्राणनप्रीणनकरिपुरि सौरम्य संतर्पितसर्वलोकैः।
सत्पुरुष माल्यैः श्रित पुरपलिङ्भिः संपूजयामो जिनपादपद्मौ।।
ॐ ह्रीं अर्हत् परमेष्ठिने पुष्पम् निर्वपामि स्वाहा।4।
सुभक्ष्य संव्यजन सोपदंशैः शेषार्थतालस्थित शालिवभ्दिः।
सौरभ्यवभ्दिर्मधुरैः सदुष्मैः संपूजयामो जिनपादपद्मौ।।
ॐ ह्रीं अर्हत् परमेष्ठिने चरुं निर्वपामि स्वाहा।5।
कर्पूरधुलिकृतगर्भ सर्पि रभ्याक्तवर्तिज्वलित प्रदीपैः।
सदुज्वलैर्धूत तमः समूहैः संपूजयामो जिनपादपद्मौ।।
ॐ ह्रीं अर्हत् परमेष्ठिने दीपम् निर्वपामि स्वाहा।6।
कर्कोलजातीफल पत्रकादि गंधोल्वण द्रव्य कृतोद्ध धूपैः।
अंगार संगप्रभवत्रधूपैः संपूजयामो जिनपादपद्मौ।।
ॐ ह्रीं अर्हत् परमेष्ठिने धूपं निर्वपामि स्वाहा।7।
जम्बीर जम्बू कदली कपित्थ नारगंधात्री सहकार पूर्वैः।
फलोत्करैः पुण्य फलोपमानैः संपूजयामो जिनपादपद्मौ।।
ॐ ह्रीं परमेष्ठिने फलम् निर्वपामि स्वाहा।8।
वार्गंधपूर्वैर्वरवस्तुजातैः सिद्धार्थ दूर्वादिसु मंगलैश्च।
पवित्र पात्रे रचितं महार्घ्यं निवर्तमायाः पुरतो जिनस्य।। अर्घ्यं
शांतिं करोतु सततं यतिनां गणस्य। शांतिं करोतु सततं जिन भक्तिकानां।।
शांतिं करोतु सततं जनपस्य दांतुः। शांति करोतु सततं कृत शांतिधारा।।
शांतिधारा

देवेन्द्र वृंदमणि मौलिसमर्चितांध्रे देवाधिदेव परमेश्वर कीर्ति भाजः
पुष्पायुध प्रमथनस्य जिनेश्वरस्य पुष्पांजलिर्विरचितोऽस्तविने यशांत्यै।।
पुष्पांजलि।

अथ श्रुत पूजा

स्याद्वादकल्पतरु मूल विराजमानां, रत्नत्रयांबुज सरोवर राजहंसीं।
अंग प्रकीर्णक चतुर्दश पूर्वकायामार्हंत्य सद्गुणमयीं गिरमाह्वयामि।।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं हस्क्लीं हस्क्लीं ह्रौं हः सर्वशास्त्र प्रकाशिनी वद वद वाग्वादिनि अत्र अवतर अवतर संवौषट् स्वाहा। आह्वानं
ॐ अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्वाहा। स्थापनं
ॐ अत्र मम सन्निहिता भव भव वषट् स्वाहा। सन्निधीकरणं

अष्टकम्

वारिताघौर्जलौघैश्च सत्तीर्थानि पवित्रितैः।
श्रीमज्जैनेश्वरीं वाणीं यायजे ज्ञानसंपदे।।
ॐ ह्रीं शब्द ब्रह्मणे जलं निर्वपामि स्वाहा।1।

सौगन्धिबन्धुरैः सर्वानन्दनैर्हरिचन्दनैः।
श्री मज्जैनेश्वरीं वाणीं यायजे ज्ञानसंपदेः।।
ॐ ह्रीं शब्द ब्रह्मणे गंधं निर्वपामि स्वाहा।2।

अक्षुण्णैः क्षीरवाराशिवलक्षैः कलमाक्षतैः।
श्रीमज्जैनेश्वरीं वाणीं यायजे ज्ञानसंपदेः।।
ॐ ह्रीं शब्द ब्रह्मणे अक्षतान् निर्वपामि स्वाहा।3।

उत्फुल्लैर्मल्लिकामल्यै रतुलैरलि झंकृतैः।
श्रीमज्जैनेश्वरीं वाणीं यायजे ज्ञानसंपदेः।।
ॐ ह्रीं शब्द ब्रह्मणे पुष्पम् निर्वपामि स्वाहा।4।

क्षीरान्नैश्चरुकैर्दिव्यैर्बाष्पमुद्वहमानकैः।
श्रीमज्जैनेश्वरीं वाणीं यायजे ज्ञानसंपदेः।।
ॐ ह्रीं शब्द ब्रह्मणे चरुं निर्वपामि स्वाहा।5।

दैदिप्यमानैर्माणिक्यदीपैर्द्विगुणितातपैः।
श्रीमज्जैनेश्वरीं वाणीं यायजे ज्ञानसंपदेः।
ॐ ह्रीं शब्द ब्रह्मणे दीपं निर्वपामि स्वाहा।6।

दशांगैर्द्वादशांगीयां धूपैस्तुष्ठदिशाधिपैः।
श्रीमज्जैनेश्वरीं वाणीं यायजे ज्ञानसंपदेः।
ॐ ह्रीं शब्द ब्रह्मणे धूपं निर्वपामि स्वाहा।7।

विनम्रैः स्तबकैश्चंचद्रसालादिफलैरलं।
श्रीमज्जैनेश्वरीं वाणीं यायजे ज्ञानसंपदे।

ॐ ह्रीं शब्द ब्रह्मणे फलम् निर्वपामि स्वाहा।8।

गंधाढ्योदकधारया हृदययहृद्रथैर्विशुद्धक्षतै–
रोचिष्णुप्रसवैर्विचित्रसुरभिस्फारस्फुरद्दीपकैः।
गीर्वाणस्पृहणीयधूमविलसध्द्धूपैः सुधासत्फल–
स्तोमैः स्वस्तिकपूर्वकैः सुरुचिरं श्रुत्यैददेऽर्घ्यं विभो।9।

अर्घ्यं

इत्यमीभिः समाराध्य पूजाद्रव्यं श्रुतं वरं।
भवसंतापविच्छेदा शांतिधारा विधीयते।10।

शांतिधारा

द्वादशांगांगिनीं भास्वद्रत्नत्रयाविभूषणां।
सर्वभाषात्मकां स्वच्छंजैनीं वाणीमुपास्महे।11।

पुष्पांजलिः

अथ गणधर पूजा (आचार्य पूजा)

स्थापना

ये येऽनगरा ऋषयो यतींद्रा मुनीश्वरा भव्य भवद्व्यतीताः।
तेषां व्रतीशां पदपंकजानि संपूजयामो गुणशीलसिद्ध्यै।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपवित्रतरगात्रचतुरशीतिलक्षगुणधरचरणा अत्र अवतरतावतरत संवौषट् स्वाहा। आह्वानं।

ॐ अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्वाहा। स्थापनं।

ॐ अत्र मम सन्निहिता भव–भव वषट् स्वाहा। सन्निधीकरणं।।

अष्टकम्

पुनातु नः सौरभलोललोभ मधुव्रत श्रेणिहतानुषंगा।
नादेय गंगा यमुनार्जितेषा मुनींद्रपादार्चन वारिधारा।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र पवित्रतरगात्र चतुरशीतिलक्ष गुणगणधर चरणेभ्यो जलं निर्वपामि स्वाहा।।1।। जलं।।

भितोपमिश्रीकृत विश्वगंध परिस्फूरन्नूतन वासवृन्दः।
तपोधनादेशपदानुलेपो यशो मदीयं विशदीकरोतु।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र पवित्रतरगात्र चतुरशीतिलक्ष गुणगणधर चरणेभ्यो गंधं निर्वपामि स्वाहा।।2।। गंधं।।

शशिप्रभाबीजसमानरोचिर्विनेयपुण्यांकुरजालकांतिः।
क्षुधादि दुःखक्षतये मुनींद्र पादाब्जतस्तंडुल राशिरस्तु।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र पवित्रतरगात्र चतुरशीतिलक्ष गुणगणधर चरणेभ्यो अक्षतान् निर्वपामि स्वाहा।।3।। अक्षतान्।।

प्रगल्भगंधाहृतषट्पदालिर्विनाकुलाशागजगंधभाजः।
करोतु योगींद्रपदावतीर्णो मनःसमाधिं सुमनः समूहः।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र पवित्रतरगात्र चतुरशीतिलक्ष गुणगणधर चरणेभ्यो पुष्पं निर्वपामि स्वाहा।।4।। पुष्पं।।

सितांबुवाहाहित भक्ष्यभूषं निभर्म यद् योगिपदार्चितं नः।
करोति तृप्तं परिणामसद्य सुगंध शालीमयि बंधुबुद्धया।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र पवित्रतरगात्र चतुरशीतिलक्ष गुणगणधर चरणेभ्यो चरुं निर्वपामि स्वाहा।।5।। चरुं।।

मधुव्रतालंबित कोटिभाग प्रत्युज्वलच्चंपककुड्मलश्रीः।
सगर्जनो योगिवरार्घ्य दीपः करोति तीतस्तमहापहारः।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र पवित्रतरगात्र चतुरशीतिलक्ष गुणगणधर चरणेभ्यो दीपम् निर्वपामि स्वाहा।।6।। दीपम्।।

मदन्मयन्विभ्रमभूमिरोहस्तमालनीलः सुरभिः करोतु।
विभास्वदंगारविरूढयश्रीर्गणेश्वराधनधूपधूमः।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र पवित्रतरगात्र चतुरशीतिलक्ष गुणगणधर चरणेभ्यो धूपम् निर्वपामि स्वाहा।।7।। धूपम्।।

हस्तद्वये संकरनीरमूर्ध्नि गंधच्छलाब्जांतनभोंऽतराणि।
मुनीश्वरश्रीचरणार्चितानि स्वयं फलानीष्टफलाय संतु।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र पवित्रतरगात्र चतुरशीतिलक्ष गुणगणधर चरणेभ्यो फलम् निर्वपामि स्वाहा।।8।। फलम्।।

गुणगणमणिसिंधून् भव्यलोकैकबंधून्।
प्रकटितजिनमार्गान् तथ्यनित्यात्मवर्गान्।।
परिचितनिजतत्वान् पादकेशषदत्तान्।
समरसजिनचंद्रानर्घ्ययामो मुनींद्रान्।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र पवित्रतरगात्र चतुरशीतिलक्ष गुणगणधर चरणेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामि स्वाहा।।9।। अर्घ्यं।।

ज्वलितसकललोकालोकलोकत्रयश्री।
कलितललितमूर्तें कीर्तितेद्वैर्मुनींद्रैः।।
मुनिवर तव पादोपांततः पातयामो।
जिनसमयविधत्तान् वर्तितान् शांतिधारां।।10।।

शांतिधारा

देवासुरेंद्र मनुजेंद्र फणीश्वराणाम्।
रत्नोज्ज्वलन्मुकुटकुंडलभूषिताग्रे।।
सिद्धेंदु यक्ष खचर स्तवनीय वंदे।
पुष्पांजलिप्रकरपादयुगं मुनीश।।11।

पुष्पांजलिः

सकलीकरण

हिन्दी पद्यानुवाद–गणधराचार्य श्री 108 कुन्थुसागर जी महाराज

हाथ में जल लेकर शरीर शुद्धि करें

सौगंध्य संगत मधुव्रतझंकृतेन संवर्ण्यमानमिवगन्धमनिन्द्यमादौ।
आरोपयामिविबुधेश्वरवृन्दवन्द्यं पादारविन्दमभिवन्द्य जिनोत्तमानाम्।।

ॐ ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृत वर्षिणी अमृतं स्रावय–स्रावय सं सं क्लीं क्लीं ब्लूं ब्लूं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय सं हं झं क्ष्वीं हं सः स्वाहा।

जल लेकर वस्त्र शुद्धि निम्न मंत्र से करें–

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा मम् सर्वांग वस्त्रशुद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।

निम्न मंत्र से भूमि शुद्धि करें–

ॐ ह्रीं वायुकुमारेण सर्वविघ्नविनाशाय महींपूतां कुरु कुरु हुं फट् स्वाहा। ॐ क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः ॐ ह्रीं मेघकुमाराय धरा प्रक्षालय प्रक्षालय अं हं तं पं स्वं झं झं यं क्षः फट् स्वाहा।

तिलक लगाना

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः मम सर्वांगशुद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।
श्री मन्मन्दर सुन्दरे (मस्तक) शुचिजलै धौतैः सदर्भाक्षतैः,
पीठे मुक्तिवरं निधाय रचितं त्वत्पादपद्मस्त्रजः,
इन्द्रोऽहं निज भूषणार्थ कमिदं यज्ञोपवीतं दधे
मुद्रा कंकणशेखराण्यपि तथा जन्माभिषेकोत्सवे।

यज्ञोपवीत धारण करना

ॐ नमः परमशान्ताय शांतिकराय पवित्रिकरणायाहं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि, मम गात्रं पवित्रं भवतु, अर्हं नमः स्वाहा।

मुद्रिका धारण करना

ॐ ह्रीं रत्नमुद्रिकां अवधारयामि स्वाहा।

मुकुट धारण करना

ॐ ह्रीं मुकुटं अवधारयामि स्वाहा।

हार पहनना

ॐ ह्रीं हार अवधारयामि स्वाहा।

कुण्डल पहनना

ॐ ह्रीं कुंडलं अवधारयामि स्वाहा।

पूर्व दिशा में पुष्प क्षेपण

ॐ ह्रॉं णमो अरिहंताणं ह्रां पूर्वदिशात् आगत
विघ्नान्-निवारय-निवारय, माम् रक्ष-रक्ष स्वाहा।

दक्षिण दिशा में

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं दक्षिणदिशात् आगत।
विघ्नान्-निवारय-निवारय, माम् रक्ष-रक्ष स्वाहा।

पश्चिम दिशा में

ॐ ह्रूं णमो आयरियाणं ह्रूं पश्चिमदिशात् आगत
विघ्नान्-निवारय-निवारय, माम् रक्ष-रक्ष स्वाहा।

उत्तर दिशा में

ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौं उत्तरदिशात् आगत
विघ्नान्-निवारय-निवारय, माम् रक्ष-रक्ष स्वाहा।

सर्व दिशाओं में

ॐ ह्रः णमो लोएसव्वसाहूणं, ह्रः सर्वदिशात् आगत
विघ्नान्-निवारय-निवारय, माम् रक्ष-रक्ष स्वाहा।

निम्नलिखित मंत्र पढ़कर अपने ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करें।

ॐ ह्रूं फट् किरिटिय-किरिटिय घातय-घातय परविघ्नान् स्फोटय-स्फोटय सहस्रखण्डान् कुरु-कुरु परमुद्रान् छिन्द-छिन्द परमन्त्रान् भिन्द-भिन्द वाः वाः ह्रूं फट् स्वाहा।

देवों का आगमन

चतुर्णिकायामर संघ एष आगत्य-यक्षे विधिना नियोगम्।
स्वीकृतभक्त्या हि यथार्हदेशे सुस्था भवंत्वान्हि कल्पनायाम्
हे जिनभक्तन्चतुर्णिकाय देव आगच्छ-आगच्छ तिष्ठ तिष्ठ

पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

आयात मारुतसुराः पवनोभ्द्रटाशाः संघट्टसंलसित निर्मल तांतरिक्षाः।
वात्यादि दोष परिभूत वसुन्धरायां प्रत्यूह कर्म निखिलं परिमार्जयन्तु।।
हे पवनकुमार जाति देवो आगच्छ-आगच्छ तिष्ठ-तिष्ठ*

पुष्पांजलि क्षिपेत्।

आयात वास्तुविधि धूदभटसंनिवेशाः योग्यांशभापरिपुष्टवपुप्रदेशाः।
अस्मिन् मखे रुचिर सुस्थिर भूषणांके सुस्था यथार्ह विधिना जिनभक्तभाजः।।
हे वास्तुकुमार जातिदेवो आगच्छ-आगच्छ तिष्ठ-तिष्ठ

पुष्पांजलि क्षिपेत्।

आयात निर्मलनभः कृतसंनिवेशाः मेघासुराप्रमदभारनमच्छिरस्का।
अस्मिन् मखे विकृतविक्रिययानितांते सुस्थाभवन्तु जिनभक्तिमुदाहरन्तु।।
हे मेघ कुमारजातिदेवो आगच्छ आगच्छ तिष्ठ-तिष्ठ।

पुष्पांजलि क्षिपेत्।

आयात पावकसुरा सुरराजपूज्या संस्थापना विधिषु संस्कृत विक्रियार्हः।
स्थाने यथोचितकृते परिबद्धकक्षा संतु श्रियं लभत पूज्यसमाजभाजाः।।
हे अग्निकुमारजातिदेवो आगच्छ आगच्छ तिष्ठ-तिष्ठ।

पुष्पांजलि क्षिपेत्।

नागा समाविशत भूतलसंनिवेशा स्वां भक्तिमुल्लसितगात्रतया प्रकाश्य।
आशिर्विषादिकृतविघ्नविनाशहेतोः स्वस्था भवंतु निज योग्यमहासनेषु।।
हे नागकुमारजातिदेवो आगच्छ-आगच्छ तिष्ठ-तिष्ठ।

पुष्पांजलि क्षिपेत्।

मंगल कलश स्थापना

ॐ आद्यानाम् आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे भारत देशे......अमुक प्रदेशे... अमुक नाम नगरे अमुक जिन मन्दिरे वीर निर्वाण सं..........मासोत्तममासे ...... अमुक पक्षे........ अमुक वासरे अमुक तिथौ ......अमुक विधान अवसरे यजमानस्य श्री ....हस्ताभ्यां मंगलकलशं स्थापयामि करोम्यहम् क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा।

अखंड दीप स्थापना

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं आद्यानाम् आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे भारतदेशे .... अमुक प्रदेशे .... अमुक नाम नगरे वीर निर्वाण सं.......वि........जिन मन्दिरे मासोत्तमासे .... अमुक पक्षे .... अमुक वासरे .... अमुक तिथौ .....अमुक जिन मन्दिरे अमुक विधान अवसरे यजमानस्य श्री हस्तेन अखण्ड द्वीपं प्रज्वालयामि। इदं मोहांधकारमपहाय मम हृदये ज्ञान ज्योतिं स्फुरायमानं करोतु इति स्वाहा।

(दश दिक्पाल के मंत्र)

इन्द्राग्नि दंडधर नैऋत पाशपाणि, वायुतरेश शशिमौलि फणीन्द्र चन्द्राः। आगत्य यूयमिह सानुचराः सचिन्हाः, स्वं स्वं प्रतीच्छत वलिं जिनपाभिषेके।

ॐ आं क्रौं ह्रीं इन्द्र आगच्छ-आगच्छ इन्द्राय स्वाहा।
ॐ आं क्रौं ह्रीं अग्ने आगच्छ-आगच्छ आग्नेय स्वाहा।
ॐ आं क्रौं ह्रीं यम आगच्छ-आगच्छ यमाय स्वाहा।
ॐ आं क्रौं ह्रीं नैऋत आगच्छ-आगच्छ नैऋताय स्वाहा।
ॐ आं क्रौं ह्रीं वरुण आगच्छ-आगच्छ वरुणाय स्वाहा।
ॐ आं क्रौं ह्रीं पवन आगच्छ-आगच्छ पवनाय स्वाहा।
ॐ आं क्रौं ह्रीं धरणेन्द्र आगच्छ-आगच्छ धरणेन्द्राय स्वाहा।
ॐ आं क्रौं ह्रीं ऐशान आगच्छ-आगच्छ ऐशानाय स्वाहा।
ॐ आं क्रौं ह्रीं कुबेर आगच्छ-आगच्छ कुबेराय स्वाहा।
ॐ आं क्रौं ह्रीं सोम आगच्छ-आगच्छ सोमाय स्वाहा।

मंगल

नमन करूँ अरहंत को श्रुत को सुमरूँ आज।
गुरु पद चरणन नमूँ, रचूँ वास्तु विधान।।1।।
जिनमन्दिर गृह आदि का वास्तु करो सुजान।
बिना वास्तु गृह आदि तो करे उपद्रव हान।।2।।
वास्तु पूजा द्रव्य ले, और पुष्पांजलिं हाथ।
जिनेन्द्रादि सब देव मिल, मुझको करो सहाय।।3।।
पुष्पांजलि अर्पण करूँ, मन में मोद भराय।
दुख दारिद्र सभी टले, घर में आनन्द छाय।।4।।

ॐ परम ब्रह्मणे नमो नमः। स्वस्ति-स्वस्ति, जीव-जीव, नन्द-नन्द वर्धस्व-वर्धस्व, विजयस्व-विजयस्व, अनुशाधि-अनुशाधि, पुनीहि-पुनीहि, पुन्याहं-पुन्याहं मांगल्यं मांगल्यं।।

पुष्पांजलि क्षिपेत्।

बाजे बजाने का मन्त्र

घंटा झालर ढोल बजाऊँ वीणा बांसुरी आदि।
सब वाद्यों को पुष्प ले अर्पण नाना आदि ।।5।।

ऊँ ह्रीं वाद्यमुद्घोषयामि स्वाहा।।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

जल थल शिला बालुका लेकर, भूमि शोधन करता हूँ।
हीरा माणिक मोती लेकर सुन्दर मंडल रचता हूँ।
आम्र अशोकादिके पल्लव से मंडप को सजाया आज।
नानाविध के पुष्प चढ़ाकर, पुष्पांजलि मैं करता आज।।6।।

ऊँ ह्रीं वास्तुमंडपे

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

पंचकुमार पूजा

वास्तु कुमार देव को, पूजूँ मन हर्षाय।
यज्ञ भाग का अंश दे, अर्घ्य चढ़ाऊँ आय।।7।।

ऊँ ह्रीं हे वास्तु कुमार देव अत्र आगच्छ आगच्छ इदं अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।।

शान्तिधारा पुष्पांजलि क्षिपेत्

वायुकुमार देव को, पूजूँ मन वच काय।
अष्ट द्रव्य से पूजहूँ, मन में बहु हर्षाय।।8।।

ऊँ ह्रीं हे वायु कुमार देव अत्र आगच्छ आगच्छ इदं अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

ऊँ ह्रीं हे वायु कुमार देव सर्वविघ्न विनाशनाय महीं पूतां कुरु-कुरु हूं फट् स्वाहा।

(दर्भपूले से भूमि संमार्जन करें)

मेघ गर्जना करते करते, मेघ कुमार पधारो आज।
यज्ञ भाग में जल बरसा कर, भूमि प्रक्षालन कर दो आज।।
जल चन्दनादि द्रव्य सजाकर अर्घ्य समर्पण करता हूँ।
मन वच तन से पूजा करके, मन में शांति भरता हूँ।।9।।

ऊँ ह्रीं हे मेघकुमारदेव अत्र आगच्छ आगच्छ इदं अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

ऊँ ह्रीं हे मेघकुमारदेव धरां प्रक्षालय-प्रक्षालय अं हं सं वं झं ढं यक्ष फट् स्वाहा।

दर्भपूले से भूमि संमार्जन करें

अग्निकुमार देव को पूजूँ मन वच काय।
अष्ट द्रव्य से पूजहूँ तुम को करो सहाय।।10।।

ॐ ह्रीं हे अग्नि कुमार देव अत्र आगच्छ आगच्छ इदं अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

ॐ ह्रीं हे अग्निकुमारदेव भूमिं ज्वालय-ज्वालय अं हं सं वं झं ढं यक्ष फट् स्वाहा।

दर्भ की पूली जलाकर रखें।

सहस्र नाग स्थापना करूँ अर्चूं मन हर्षाय।
जलांजलि यहाँ देयकर, यज्ञ को करो सहाय।।11।।

ॐ ह्रीं हे नागकुमारदेव अत्र आगच्छ आगच्छ इदं अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

(ईशान दिशा में जल हाथ में लेकर छोड़े)

पुष्पांजलि अर्पण करूँ, पुष्पों को लेकर हाथ।
वास्तु यज्ञ प्रारम्भ करूँ, जिन चरणन धरूँ माथ।।12।।

प्रारम्भ निरुपण

जिन प्रतिष्ठा विधान में, वास्तु करो विधान।
प्रथम अंकुरारोपण करो, करो सुमंगल गान।।1।।
ध्वजारोहण विधि करो, जिन मन्दिर में जाय।
इर्यापथशुद्धि करो, करो अमंगल हान।।2।।
तीन प्रदक्षिणा देय कर, दर्शन करो जिनराय।
जिन प्रतिमा का न्हवन करो, शांति मंत्र का पाठ।।3।।
देव-शास्त्र-गुरु आदि की, पूजा करो सुजान।
सकलीकरण, मंडपशुद्धि, इन्द्रप्रतिष्ठा जान।।4।।
आद्यविधि सभी करो, फिर करो वास्तु विधान।
अष्ट द्रव्य से पूजा करो, मन में शांति लाय।।5।।
जिन मन्दिर, गृह आदि में, वास्तु करो सुजान।
विघ्न उपद्रव शांत हो, मन में शांति जान।।6।।

अर्हन्त पूजा

अर्हन्त श्रुत सूरि चरणों में, मैं पुष्प सुगन्धित ले आया।
आह्वानन स्थापना विधि करके, जिन चरणों में मन भाया।।
अनन्तगुणों के साथ प्रभु जी, तेरी पूजा को आया।
विघ्न उपद्रव शांत करो तुम, पूजा से मन सुख पाया।।1।।

ऊँ ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरु। अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननम्।
ऊँ ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरु! अत्रतिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ऊँ ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरु अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।।

गंगा नदी का नीर भरकर, प्रासुक करके मैं लाया।
जन्म मृत्यु जरा मिटावन, प्रभु जी मैं तुम ढिग आया।
अनन्तगुणों के साथ प्रभु जी, तेरी पूजा को आया।
विघ्न उपद्रव शांत करो तुम, पूजा से मन सुख पाया।।2।।

ऊँ ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरु चरणेभ्यो जन्मजरा मृत्यु विनाशनायजलं निर्वपामीति स्वाहा।

काश्मीर अगरु चन्दनादि ले, घिसकर प्रभुजी ले आया।
सुगन्धित देह के प्राप्त करन को, जिन जी चरणों में आया।।
अनन्तगुणों से सहित प्रभु जी, तेरी पूजा को आया।
विघ्न उपद्रव शांत करो तुम, पूजा से मन सुख पाया।।3।

ऊँ ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरु चरणेभ्यो संसार ताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

शालि धान के शुद्ध बनाकर, प्रासुक अक्षत ले आया।
अखण्ड अक्षय सुख पाने को, अक्षत को मैं ले आया।।
अनन्तगुणों से सहित प्रभु जी, तेरी पूजा को आया।
विघ्न उपद्रव शांत करो तुम, पूजा से मन सुख पाया।।4।।

ऊँ ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरु चरणेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

चम्पा चमेली केतकी पुष्प सुगन्धित मैं लाया।
काम बाण के नाश करन को प्रासुक जल से धो लाया।
अनन्तगुणों से सहित प्रभु जी, तेरी पूजा को आया।
विघ्न उपद्रव शांत करो तुम, पूजा से मन सुख पाया।।5।।

ऊँ ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरु चरणेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

बूँदी लाडू और जलेबी, प्रासुक घृत से बना लाया।
क्षुधा वेदनी नाश करन को, नैवेद्य चढ़ाने मैं आया।।
अनन्तगुणों से सहित प्रभु जी, तेरी पूजा को आया।
विघ्न उपद्रव शांत करो तुम, पूजा से मन सुख पाया।।6।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरु चरणेभ्यो: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वर्ण दीप में घृत को भरकर, दीप जलाकर ले आया।
मोहान्धकार के नाश करन को आरती करने मैं आया।।
अनन्तगुणों से सहित प्रभु जी, तेरी पूजा को आया।
विघ्न उपद्रव शांत करो तुम, पूजा से मन सुख पाया।।7।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरु चरणेभ्यो: मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर कपूर सुगन्धित चन्दन तेरे चरणों में लाया।
धूप दशांगी खेय अग्नि में अष्ट कर्म दहने आया।।
अनन्तगुणों से सहित प्रभु जी, तेरी पूजा को आया।
विघ्न उपद्रव शांत करो तुम, पूजा से मन सुख पाया।।8।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरु चरणेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

लौंग सुपारी आम आदि को स्वर्ण पात्र में भर लाया।
मोक्ष महल को पाने हेतु तेरे चरणों में आया।।
अनन्तगुणों से सहित प्रभु जी, तेरी पूजा को आया।
विघ्न उपद्रव शांत करो तुम, पूजा से मन सुख पाया।।9।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरु चरणेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन नैवेद्य आदि का अर्घ्य बनाकर लाया हूँ।
रत्नत्रय की प्राप्ति होवे अरज सुनाने आया हूँ।।
अनन्तगुणों से सहित प्रभु जी, तेरी पूजा को आया।
विघ्न उपद्रव शांत करो तुम, पूजा से मन सुख पाया।।10।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरु चरणेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांति करने हेतु मैं, शांति धारा देत।
जिन भक्तों की शांति हो, जग की शांति हेत।।
शान्तये शान्ति धारा।
नाना विधि के पुष्प ले मन में हर्ष अपार।
पुष्पांजलि चढ़ाय के होवे सुख अपार।।
पुष्पांजलि क्षिपेत्।

वास्तु देव पूजा

प्रथम कोष्ठ का अर्घ्य

समस्त वास्तु कुमार को पूजूँ मन हर्षाय।
पुष्पांजलि क्षेपण करूँ, विघ्न शांत हो जाय।।

ॐ ह्रीं भो भूः स्वाहा।

पुष्पांजलि क्षिपेत्।

(1) ब्रह्म देव पूजा

जय ब्रह्म वास्तु तुम हो महान, इस यज्ञ भूमि में तिष्ठो आय।
वसुद्रव्य भक्ष्य में लाया आज, अर्पूं मैं तुमको यज्ञ माय।।1।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं रक्तवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे ब्रह्मन् अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

बलि मंत्र

ॐ ह्रीं ब्रह्मणे स्वाहा, ब्रह्म परिजनाय स्वाहा, ब्रह्म अनुचराय नमः, वरुणाय नमः, सोमाय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, ॐ स्वाहा। ॐ भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, भूर्भुव स्वाहा, स्वः स्वाहा, स्वधा स्वाहा, हे ब्रह्मण! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् इति अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

(शांतिधारा, पुष्पांजलि क्षिपेत्)

नोट- अर्घ्य के साथ चावल की धानी, घी, शक्कर, खीर और तगर चढ़ाएं इस प्रकार आगे भी जिस जिस देव के जो जो भक्ष्य पदार्थ हैं उन्हें उनके कोठों पर अर्घ्य के साथ चढ़ाएँ। तथा प्रत्येक अर्घ्यं के साथ ध्वजा लें। इस प्रकार 49 कोठों पर ही चढ़ाएँ।

(2) इन्द्रदेव पूजा

हे इन्द्र देव तुम आओ इस यज्ञ मांहि।
जो भक्ष्य हैं वो ग्रहण करो यज्ञ मांहि।।
इस यज्ञ में अर्चन मैं करूँ पूजा विधि से।
सन्तुष्ट हो सुख करो हम पे विधि से।।2।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं सुवर्ण वर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे अग्निदेव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

ॐ ह्रीं इन्द्राय स्वाहा, इन्द्र परिजनाय स्वाहा, इन्द्र अनुचराय नमः, वरुणाय स्वाहा, सोमाय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, ॐ स्वाहा। ॐ भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, भूर्भुव स्वाहा, स्वः स्वाहा, स्वधा स्वाहा, हे इन्द्रदेव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंध, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् इति अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

(शांतिधारा, पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ कोष्ट, उपलेट, फूल चढ़ाएँ।

(3) अग्नि देव पूजा

अग्निकुमार देव की यहाँ पर पूजा करने आया हूँ।
नाना विधि से पूजा करके मन में शांति पाया हूँ।।
जल चंदन अक्षत आदि ले मैं अर्घ्य बनाकर लाया हूँ।
सुख समृद्धि सब शांति पाने, अर्चन करने आया हूँ।।3।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं रक्तवर्ण सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे अग्निदेव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे अग्निदेव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा (पुष्पांजलि क्षिपेत्)।

अर्घ्य के साथ (दूध, घी, तगर चढ़ाएँ)।

(4) यमदेव पूजा

यम कुमार देव की यहाँ पर पूजा करने आया हूँ।
नाना विधि से पूजा करके मन में शांति पाया हूँ।।
जल चंदन अक्षत आदि ले मैं अर्घ्य बनाकर लाया हूँ।
सुख समृद्धि सब शांति पाने, अर्चन करने आया हूँ।।4।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं कृष्णवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे यमदेव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे यमदेव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ तिल का चूर्ण, तुअर का बाकरा चढ़ाएँ।

(5) नैऋत्य देव पूजा

नैऋत्य देव की यहाँ पर पूजा करने आया हूँ।
नाना विधि से पूजा करके मन में शांति पाया हूँ।।
जल चंदन अक्षत आदि ले मैं अर्घ्य बनाकर लाया हूँ।
सुख समृद्धि सब शांति पाने, अर्चन करने आया हूँ।।5।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं नीलवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे नैऋत्य देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे नैऋत्य देव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ तिल का तेल, तिल की पापड़ी चढ़ाऐं।

(6) वरुणदेव पूजा

वरुण कुमार देव की यहाँ पर पूजा करने आया हूँ।
नाना विधि से पूजा करके मन में शांति पाया हूँ।।
जल चंदन अक्षत आदि ले मैं अर्घ्य बनाकर लाया हूँ।
सुख समृद्धि सब शांति पाने, अर्चन करने आया हूँ।।6।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं सुवर्ण वर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे वरुणदेव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे वरुणदेव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ धाणी, दूध पाक (रबड़ी), खीर चढ़ाएँ।

(7) पवन देव पूजा

पवन कुमार देव की यहाँ पर पूजा करने आया हूँ।
नाना विधि से पूजा करके मन में शांति पाया हूँ।।
जल चंदन अक्षत आदि ले मैं अर्घ्य बनाकर लाया हूँ।
सुख समृद्धि सब शांति पाने, अर्चन करने आया हूँ।।7।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं सुवर्ण वर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे पवन देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे पवन देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ पिसी हल्दी चढ़ाएँ।

(8) कुबेर देव पूजा

कुबेर धनपति की यहाँ पर पूजा करने आया हूँ।
नाना विधि से पूजा करके मन में शांति पाया हूँ।।
जल चंदन अक्षत आदि ले मैं अर्घ्य बनाकर लाया हूँ।
सुख समृद्धि सब शांति पाने, अर्चन करने आया हूँ।।8।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं सुवर्ण वर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे कुबेर देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे कुबेर देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ दूध में मिलाया हुआ भात चढ़ाएँ।

(9) ईशान देव पूजा

ईशान कुमार देव की यहाँ पर पूजा करने आया हूँ।
नाना विधि से पूजा करके मन में शांति पाया हूँ।।
जल चंदन अक्षत आदि ले मैं अर्घ्य बनाकर लाया हूँ।
सुख समृद्धि सब शांति पाने, अर्चन करने आया हूँ।।9।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं शुभ्रवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे ईशान देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे ईशान देव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ घी, क्षीरान्न चढ़ाएँ।

(10) आर्य देव पूजा

आर्य कुमार देव की यहाँ पर पूजा करने आया हूँ।
नाना विधि से पूजा करके मन में शांति पाया हूँ।।
जल चंदन अक्षत आदि ले मैं अर्घ्य बनाकर लाया हूँ।
सुख समृद्धि सब शांति पाने, अर्चन करने आया हूँ।।10।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं शुभ्रवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे आर्य देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे आर्य देव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलिं, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ मैदा का घूगरा और फल चढ़ाएँ।

(11) विवस्वान देव पूजा

विवस्वान देव की यहाँ पर पूजा करने आया हूँ।
नाना विधि से पूजा करके मन में शांति पाया हूँ।।
जल चंदन अक्षत आदि ले मैं अर्घ्य बनाकर लाया हूँ।
सुख समृद्धि सब शांति पाने, अर्चन करने आया हूँ।।11।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं रक्तवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे विवस्वान देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे विवस्वान देव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ उड़द की घूंगरी तिल चढ़ाएँ।

(12) मित्र देव पूजा

शत्रु शक्ति निवारण देव हो, जगत शांतिकरण तुम हेत हो।
हम यजें तुम्हें अर्घ्य आदि से, ग्रहण करो तुम देव शांति से।।12।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं सुवर्णवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे मित्रदेव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे मित्रदेव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि,

फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ 'दही बड़ा, मैदा की भुजिया' चढ़ाएँ।

(13) भूधर देव पूजा

भूधर देव पधारो यज्ञ में, गृह शांति करो परिवार में।
वसुद्रव्य भक्ष्य सब वस्तु ले, जजत हूँ इस यज्ञ आदि में।।13।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं कृष्णवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे भूधर देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे भूधर देव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलिं, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ दूध चढ़ाएँ।

(14) सविन्द्र देव पूजा

सविन्द्र देव पधारो यज्ञ में, गृह शांति करो परिवार में।
वसुद्रव्य भक्ष्य सब आदि ले, जजत हूँ इस यज्ञ आदि में।।14।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं नीलवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे सविन्द्र देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे सविन्द्र देव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलिं, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ चावल की धाणी और धनिये की धाड़ी चढ़ाएँ।

(15) साविन्द्र देव पूजा

साविन्द्र देव पधारो यज्ञ में, गृह शांति करो परिवार में।
वसुद्रव्य भक्ष्य सब आदि ले, जजत हूँ इस यज्ञ आदि में।।15।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं धूम्रवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे साविन्द्र देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे साविन्द्र देव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं,

बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ कपूर, कश्मीर केशर, लवंग आदि सुगन्धित द्रव्यों से मिश्रित जल चढ़ाएँ।

(16) इन्द्र देव पूजा

हे इन्द्र देव पधारो यज्ञ में, गृह शांति करो परिवार में।
वसुद्रव्य भक्ष्य सब आदि ले, जजत हूँ इस यज्ञ आदि में।।16।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं रक्तवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे इन्द्र देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे इन्द्र देव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ मूंग का चूर्ण और फूल चढ़ाएँ।

(17) इन्द्रराज देव पूजा

हे इन्द्र देव पधारो यज्ञ में, गृह शांति करो परिवार में।
वसुद्रव्य भक्ष्य सब आदि ले, जजत हूँ इस यज्ञ आदि में।।17।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं श्वेतवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे इन्द्रराज देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे इन्द्रराज देव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ चावल के बड़े और मूँग का चूर्ण चढ़ाएँ।

(18) रुद्र देव पूजा

हे रुद्रदेव पधारो यज्ञ में, गृह शांति करो परिवार में।
वसुद्रव्य भक्ष्य सब आदि ले, जजत हूँ इस यज्ञ आदि में।।18।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं प्रवालवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे रुद्र देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे रुद्र देव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि,

फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ गुड़, मैदा का घूगरा चढ़ाएँ।

(19) रुद्रराज देव पूजा

हे रुद्रराजदेव पधारो यज्ञ में, गृह शांति करो परिवार में।
वसुद्रव्य भक्ष्य सब आदि ले, जजत हूँ इस यज्ञ आदि में।।19।।

ॐ आं क्रों ह्रीं पीतवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे रुद्रराज देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे रुद्रराज देव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ गुड़ चावल का आटा, अम्बोली (इमली) चढ़ाएँ।

(20) आप्देव पूजा

हे आप् देव पधारो यज्ञ में, गृह शांति करो परिवार में।
वसुद्रव्य भक्ष्य सब आदि ले, जजत हूँ इस यज्ञ आदि में।।20।।

ॐ आं क्रों ह्रीं श्वेतवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे आप्देव देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे आप्देव देव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ गुड़, चावल, आटा, सफेद कमल, शंख अम्बोली चढ़ाएँ।

(21) आपवत्स देव पूजा

हे आपवत्स देव पधारो यज्ञ में, गृह शांति करो परिवार में।
वसुद्रव्य भक्ष्य सब आदि ले, जजत हूँ इस यज्ञ आदि में।।21।।

ॐ आं क्रों ह्रीं शंखवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे आपवत्स देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे आपवत्स देव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ गुड़, चावल का आटा, सफेद कमल, शंख अम्बोली चढ़ाएँ।

(22) पर्जन्य देव पूजा

हे पर्जन्य देव पधारो यज्ञ में, गृह शांति करो परिवार में।
वसुद्रव्य भक्ष्य सब आदि ले, जजत हूँ इस यज्ञ आदि में।।22।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं जलवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे पर्जन्य देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे पर्जन्य देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतं पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ घी चढ़ाएँ।

(23) जयन्त देव पूजा

हे जयन्त देव पधारो यज्ञ में, गृह शांति करो परिवार में।
वसुद्रव्य भक्ष्य सब आदि ले, जजत हूँ इस यज्ञ आदि में।।23।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं कृष्णवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे जयन्त देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे जयन्त देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम् पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ ताजा मक्खन चढ़ाएँ।

(24) भास्कर देव पूजा

हे भास्कर देव पधारो यज्ञ में, गृह शांति करो परिवार में।
वसुद्रव्य भक्ष्य सब आदि ले, जजत हूँ इस यज्ञ आदि में।।24।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं श्वेतवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे भास्कर देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे भास्कर देव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम् पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ गुड़ और सफेद फूल चढ़ाएँ।

(25) सत्यक् देव पूजा

हे सत्यकाय देव पधारो यज्ञ में, गृह शांति करो परिवार में।
वसुद्रव्य भक्ष्य सब आदि ले, जजत हूँ इस यज्ञ आदि में।।25।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं श्यामवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे सत्यक् देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे सत्यकाय देव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम् पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ ताजा मक्खन चढ़ाएँ।

(26) भृषदेव देव पूजा

हे भृषदेव देव पधारो यज्ञ में, गृह शांति करो परिवार में।
वसुद्रव्य भक्ष्य सब आदि ले, जजत हूँ इस यज्ञ आदि में।।26।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं पुष्पवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे भृषदेव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे भृषदेव! इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम् पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ ताजा मक्खन का गोला चढ़ाएँ।

(27) अन्तरिक्ष देव पूजा

अन्तरिक्ष देव को यहां हम पूजते, ग्रह शांति के लिए हम अर्चते।
वसुद्रव्य को लेकर आ गए, दुख दूर करो मन भा गए।।27।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं कुंदवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे अन्तरिक्ष देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे अन्तरिक्ष देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम् पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं,

बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ हल्दी और उड़द का चूर्ण चढ़ाएँ।

(28) पूषदेव पूजा

पूषदेव को यहां हम पूजते, ग्रह शांति के लिए हम अर्चते।
वसुद्रव्य को लेकर आ गए, दुख दूर करो मन भा गए।।27।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं रक्तवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे पूषदेव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे पूषदेव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम् पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ तुअर के बाकरे व दूध चढ़ाएँ।

(29) वितथ देव पूजा

वितथ देव को यहां हम पूजते, ग्रह शांति के लिए हम अर्चते।
वसुद्रव्य को लेकर आ गए, दुख दूर करो मन भा गए।।27।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं इन्द्रचापवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे वितथ देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे वितथ देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम् पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ सौंठ, काली मिर्च व पीपल चढ़ाएँ।

(30) राक्षस देव पूजा

राक्षस देव को यहां हम पूजते, ग्रह शांति के लिए हम अर्चते।
वसुद्रव्य को लेकर आ गए, दुख दूर करो मन भा गए।।30।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं इन्दुवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे राक्षस देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे राक्षस देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम् पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि,

फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ गुड़ चढ़ाएँ।

(31) गन्धर्व देव पूजा

गन्धर्व देव को यहां हम पूजते, ग्रह शांति के लिए हम अर्चते।
वसुद्रव्य को लेकर आ गए, दुख दूर करो मन भा गए।।31।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं पद्मवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे गन्धर्व देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे गन्धर्व देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम् पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ कपूर और सुगन्धित चढ़ाएँ।

(32) भृंगराज देव पूजा

भृंगराज देव को यहां हम पूजते, ग्रह शांति के लिए हम अर्चते।
वसुद्रव्य को लेकर आ गए, दुख दूर करो मन भा गए।।32।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं नीलवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे भृंगराज देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे भृंगराज देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ रबड़ी चढ़ाएँ।

(33) मृषदेव देव पूजा

मृषदेव को यहां हम पूजते, ग्रह शांति के लिए हम अर्चते।
वसुद्रव्य को लेकर आ गए, दुख दूर करो मन भा गए।।33।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं मेषवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे मृषदेव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे मृषदेव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि,

फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ उड़द की घूगरी चढ़ाएँ।

(34) दोवारिक देव पूजा

दोवारिक देव को यहां हम पूजते, ग्रह शांति के लिए हम अर्चते।
वसुद्रव्य को लेकर आ गए, दुख दूर करो मन भा गए।।34।।

ॐ आ क्रौं ह्रीं सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे दोवारिक देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे दोवारिक देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ चावल का आटा चढ़ाएँ।

(35) सुग्रीव देव पूजा

सुग्रीव देव को यहां हम पूजते, ग्रह शांति के लिए हम अर्चते।
वसुद्रव्य को लेकर आ गए, दुख दूर करो मन भा गए।।35।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं चन्द्रवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे सुग्रीव देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे सुग्रीव देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ लड्डू चढ़ाएँ।

(36) पुष्पदंत देव पूजा

पुष्पदंत को यहां हम पूजते, ग्रह शांति के लिए हम अर्चते।
वसुद्रव्य को लेकर आ गए, दुख दूर करो मन भा गए।।36।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं श्वेतवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे पुष्पदंत अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे पुष्पदंत इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि,

फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ फूल और जल चढ़ाएँ।

(37) असुर देव पूजा

असुरदेव को यहां हम पूजते, ग्रह शांति के लिए हम अर्चते।
वसुद्रव्य को लेकर आ गए, दुख दूर करो मन भा गए।।37।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं कृष्णवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे असुर देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे असुर देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ लाल रंग का भात चढ़ाएँ।

(38) शोष देव पूजा

शोष देव को यहां हम पूजते, ग्रह शांति के लिए हम अर्चते।
वसुद्रव्य को लेकर आ गए, दुख दूर करो मन भा गए।।38।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं धवलवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे शोष देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे शोष देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ तिल और अक्षत चढ़ाएँ।

(39) रोगदेव पूजा

रोगदेव को आज मैं पूजूँ भक्ति समेत।
रोग शोक सब दूर हो मन को शांति देत।।39।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं सवितृवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे रोगदेव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे रोग देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि,

फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ गुड़ की मीठी पूड़ी चढ़ाएँ।

(40) नागदेव पूजा

नागदेव की आज मैं पूजा करूँ हर्षाय।
अष्ट द्रव्य सब आदि से अर्चूं सुख को पाय।।40।।

ऊँ आं क्रौं ह्रीं शंखवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे नागदेव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे नाग देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ शक्कर मिला हुआ दूध और पका भात चढ़ाएँ।

(41) मुख्यदेव पूजा

मुख्यदेव की आज मैं पूजा करूँ हर्षाय।
रोग शोक सब ही टले मन में शांति पाय।।41।।

ऊँ आं क्रौं ह्रीं मौक्तिकवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे मुख्यदेव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे मुख्यदेव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ श्रीखंड चढ़ाएँ।

(42) भल्लाट देव पूजा

भल्लाट देव की आज मैं पूजा करूँ हर्षाय।
रोग शोक सब ही टले मन में शांति पाय।।42।।

ऊँ आं क्रौं ह्रीं श्वेतवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे भल्लाट देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे भल्लाट देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ गुड़ और भात चढ़ाएँ।

(43) मृगदेव पूजा

मृगदेव की आज मैं पूजा करूँ हर्षाय।
रोग शोक सब ही टले मन में शांति पाय।।43।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं रक्तोत्पलवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे **मृगदेव** अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे **मृग** देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ गुड़ के मालपूआ चढ़ाएँ।

(44) अदिति देव पूजा

अदिति देव परिवार सहित, पूजूँ मन हर्षाय।
रोग शोक सब ही टले मन में शांति पाय।।44।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं कपिलवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे अदिति देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे अदिति देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ मोदक (लड्डू) चढ़ाएँ।

(45) उदिति देव पूजा

उदिति देव परिवार सहित पूजूँ मन हर्षाय।
रोग शोक सब ही टले मन में शांति पाय।।45।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं कुंदवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे उदितिदेव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे उदितिदेव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ मोदक लड्डू चढ़ाएँ।

(46) विचार्य देव पूजा

विचार्य देव परिवार सहित, पूजूँ मन हर्षाय।
रोग शोक सब ही टले मन में शांति पाय।।46।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं अग्निवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे विचार्य देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे विचार्य देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ नमक डला हुआ भात चढ़ाएँ।

(47) पूतनादेव पूजा

पूतना देव परिवार सहित, पूजूँ मन हर्षाय।
रोग शोक सब ही टले मन में शांति पाय।।47।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं हेमवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे पूतनादेव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे पूतना देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ तिल और भात चढ़ाएँ।

(48) पाप राक्षसी देव पूजा

पाप राक्षसी देव को पूजूँ मन हर्षाय।
रोग शोक सब ही टले मन में शांति पाय।।43।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं मेघवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे पाप राक्षसी देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे पाप राक्षसी देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ उबाले हुए मूँग चढ़ाएँ।

(49) चरकी देव पूजा

चरकी देव परिवार सहित, पूजूँ मन हर्षाय।
रोग शोक सब ही टले, मन में शांति पाय।।49।।

ॐ आं क्रौं ह्रीं शंखवर्णे सम्पूर्ण लक्षण स्वायुध वाहन वधु चिन्ह सपरिवार हे चरकी देव अत्र आगच्छ-आगच्छ, स्वस्थाने तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।

हे चरकी देव इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा, (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अर्घ्य के साथ घी और गुड़ चढ़ाएँ।

(50) पूर्णार्घ्य

सब ही वास्तु देव को, सब परिवार सहित।
अष्ट द्रव्य से पूजहूँ मैं परिवार सहित।।
सब प्रकार के भक्ष्य को अर्पण करता आज।
शांति से तुम ग्रहण करो, मिटे सकल संताप।।

हे वास्तु देव सपरिवार सहितेभ्यो इदमर्घ्यं पाद्यं जलं, गंधं, अक्षतम्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलि, फलं स्वस्तिकं यज्ञ भागं च यजामहे-यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् अर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

शांतिधारा (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

इस वास्तु विधान में जो जो आए देव।
वे सब मिलकर शांति करें सकल उपद्रव शोक।।

यह श्लोक पढ़कर हाथ जोड़कर प्रार्थना करें, पुष्पांजलि अर्पण करें।

घर अथवा मन्दिर में अष्टकोण कलश स्थापना।
आठ दिशा में आठ कलश, जल के करे परिपूर्ण।
पूजा कर स्थापन करें, विघ्न होत सब दूर।।

ॐ समस्तनदीतीर्थजलं भवतु, कुंभेषु हिरण्यं निक्षिपामि स्वाहा। नेत्राय संवौषट् कलशार्चनम्।

वास्तु विधान करके होम करें, फिर विसर्जन कर दें।

नोट- इस वास्तु विधान को ग्रह शांति के लिए, नवीन गृह प्रवेश के समय या जिन मन्दिर प्रतिष्ठा के समय पहले करके फिर गृह प्रवेश करें, फिर मन्दिर प्रतिष्ठा करें। गृह प्रवेश के पूर्व किसी भी शांति मंत्र का 21 हजार जाप अवश्य कर लें और दशांश आहुति करें। समस्त भूमिगत उपद्रव शांत हो जाएंगे, घर की शुद्धि और मन्दिर की शुद्धि हो जाएगी।

"इति वास्तु विधान समाप्त"

मंत्र

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथाय जगत शांतिकराय मम सर्वपरिवारस्य गृहस्य सर्वोपद्रवशांतिं कुरु कुरु स्वाहा।

शांति हवन विधि

एक मिट्टी का हवन कुंड लें,

निम्न मंत्र बोलकर शुद्ध करें (डाभ के पत्तो से)

ॐ ह्राँ ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः नमः स्वाहा।

दीपक जलाएँ निम्नलिखित मंत्र बोलें-

ॐ ह्रीं अज्ञानतिमिरहरं दीपकं संस्थापयामि

भूमि शुद्धि करें-

ॐ ह्रीं मेघकुमाराय धरा प्रक्षालय-प्रक्षालय, अं हं तं पं वं झं झं यं क्षः फट् स्वाहा।

पहले यंत्र का प्रक्षालन करें फिर अर्घ्य चढाएँ।

ॐ भूर्भुवः स्वाहा एतद् विघ्नौघवारकं यंत्रमहं परिषिंचयामि।

अब हवन कुण्ड में अग्नि स्थापित करें, कपूर रखें।

ॐ ॐ ॐ ॐ रं रं रं रं अग्निं संस्थापयामि ग्राईपत्ये।

मंत्र बोलें, फिर अर्घ्य चढाएं

1. ॐ ह्रीं चतुष्कोणे तीर्थंकरकुण्डे ग्राईपत्याग्नये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
2. ॐ ह्रीं गोलगणधरकुण्डे आह्वनीयाग्नेयं अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
3. ॐ ह्रीं त्रिकोणकेवलीकुण्डे दक्षिणाग्नेय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आहुति पीठिका मंत्र

1. ॐ सत्यजाताय नमः। ॐ अर्हज्जाताय नमः। ॐ परमजाताय नमः। ॐ अनुपमजाताय नमः। ॐ स्वप्रधानाय नमः। ॐ अचलाय नमः। ॐ अक्षयाय नमः। ॐ अव्याबाधाय नमः। ॐ अनन्तदर्शनाय नमः। ॐ अनन्त ज्ञानाय नमः। ॐ अनन्त सुखाय नमः। ॐ अनन्तवीर्याय नमः। ॐ नीरज से नमः। ॐ निर्मलाय नमः। ॐ अच्छेदाय नमः। ॐ अभेद्याय नमः। ॐ अजराय नमः। ॐ अमराय नमः। ॐ अप्रमेयाय नमः। ॐ अगर्भवासाय नमः। ॐ अक्षोभाय नमः। ॐ अविलीनाय नमः। ॐ परमधानाय नमः। ॐ परमकाष्ठयोग रूपाय नमः। ॐ लोकाग्रवासिने नमो नमः। ॐ केवली सिद्धेभ्यो नमो नमः। ॐ अन्तःकृतसिद्धेभ्यो नमो नमः। ॐ परम्परा सिद्धेभ्यो नमो नमः। ॐ अनादिपरम्परा सिद्धेभ्यो नमो नमः। ॐ अनाद्यनुपम सिद्धेभ्यो नमो नमः। ॐ सम्यकदृष्टे सम्यकदृष्टे पूजार्ह आसन्न भव्य पूजार्ह पूजार्ह अग्नीन्द्राय स्वाहा।

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु अपमृत्युविनाशनं भवतु।

जाति मंत्र

ॐ सत्य जन्मनः शरणं प्रपद्ये नमः। ॐ अर्हज्जन्मनः शरणं प्रपद्ये नमः। ॐ अर्हन्मातुः शरणं प्रपद्ये नमः। ॐ अर्हसुतस्य शरणं प्रपद्ये नमः। ॐ अनादिगमनस्य शरणं प्रपद्ये नमः। ॐ अनुपम जन्मनः शरणं प्रपद्ये नमः। ॐ रत्नत्रयस्य शरणं प्रपद्ये नमः। ॐ सम्यकदृष्टे-सम्यग्दृष्टे ज्ञानमूर्ते ज्ञानमूर्ते सरस्वति-सरस्वति स्वाहा। सेवाफलंषट्परमस्थानं भवतु अपमृत्युविनाशनं भवतु।

निस्तारक मंत्र

ॐ सत्यजाताय स्वाहा। ॐ अर्हज्जाताय स्वाहा। ॐ षट्कर्मणे स्वाहा। ॐ ग्रामपतये स्वाहा। ॐ अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा। ॐ स्नातकाय स्वाहा। ॐ श्रावकाय स्वाहा। ॐ देव ब्रह्मणाय स्वाहा। ॐ सुब्रह्मणाय स्वाहा। ॐ अनुपमाय स्वाहा। ॐ सम्यकदृष्टे सम्यग्दृष्टे निधिपते-निधिपते, वैश्रवण-वैश्रवण स्वाहा। सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु। अपमृत्युविनाशनं भवतु।

ऋषि मन्त्र

ॐ सत्यजाताय नमः। ॐ अर्हज्जाताय नमः। ॐ निर्ग्रन्थाय नमः। ॐ वीतरागाय नमः। ॐ महाव्रताय नमः। ॐ त्रिगुप्तये नमः। ॐ महायोगाय नमः।ॐ विविध योगाय नमः। ॐ विविधर्द्धये नमः। ॐ अंगधराय नमः। ॐ पूर्वधराय नमः। ॐ गणधराय नमः। ॐ परमऋर्षिभ्यो नमः। ॐ अनुपमजाताय

नमः। ॐ सम्यग्दृष्टे-सम्यग्दृष्टे, भूपते-भूपते, नगरपते-नगरपते, कालश्रमण-कालश्रमण स्वाहा।

सेवाफलं षट्परम स्थानं भवतु। अपमृत्युविनाशनं भवतु।

सुरेन्द्र मंत्र

ॐ सत्यजाताय स्वाहा। ॐ अर्हज्जाताय स्वाहा। ॐ दिव्यजाताय स्वाहा। ॐ दिव्यार्चिजाताय स्वाहा। ॐ नेमिनाथाय स्वाहा। ॐ सौधर्माय स्वाहा। ॐ कल्पाधिपतये स्वाहा। ॐ अनुचराय स्वाहा। ॐ परमेन्द्राय स्वाहा। ॐ अहमिन्द्राय स्वाहा। ॐ परमार्हताय स्वाहा। ॐ अनुपमाय स्वाहा। ॐ सम्यग्दृष्टे-सम्यग्दृष्टे, कल्पपते-कल्पपते, दिव्यमूर्ते-दिव्यमूर्ते, वज्रनामन्-वज्रनामन् स्वाहा।

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु। अपमृत्युविनाशनं भवतु।

परमराजादि मंत्र

ॐ सत्यजाताय स्वाहा। ॐ परमजाताय स्वाहा। ॐ अर्हज्जाताय स्वाहा। ॐ अनुपमेन्द्राय स्वाहा। ॐ विजयार्च्यजाताय स्वाहा। ॐ नेमिनाथाय स्वाहा। ॐ परमजाताय स्वाहा। ॐ परमर्हताय स्वाहा। ॐ अनुपमाय स्वाहा। ॐ सम्यग्दृष्टे-सम्यग्दृष्टे, उग्रतेज-उग्रतेज, दिशांजय-दिशांजय, नेमिविजय-नेमिविजय स्वाहा। सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु। अपमृत्युविनाशनं भवतु।

परमेष्ठि मंत्र

ॐ सत्यजाताय नमः। ॐ अर्हज्जाताय नमः। ॐ परमजाताय नमः। ॐ परमर्हताय नमः। ॐ परमरूपाय नमः। ॐ परमतेजसे नमः। ॐ परमगुणाय नमः। ॐ परमस्थानाय नमः। ॐ परमयोगिने नमः। ॐ परमभाग्याय नमः। ॐ परमर्द्धये नमः। ॐ परमप्रसादाय नमः। ॐ परमकांक्षिताय नमः। ॐ सत्यजाताय नमः। ॐ परमविजयाय नमः। ॐ परमविज्ञानाय नमः। ॐ परमदर्शनाय नमः। ॐ परमवीर्याय नमः। ॐ परमसुखाय नमः। ॐ परमसर्वज्ञाय नमः। ॐ परमपरमेष्ठिने नमः। ॐ परमनेत्रये नमः। ॐ अर्हते नमः। ॐ सम्यग्दृष्टे-सम्यग्दृष्टे, त्रैलोक्यविजय-त्रैलोक्यविजय, धर्ममूर्ते-धर्ममूर्ते, धर्मने-धर्मने स्वाहा।

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु।

लोंग एवं घी से आहुति दें।

ॐ ह्रीं श्रीमज्जिनश्रुतगुरुभ्यो नमः। ॐ ह्रीं पंचपरमेष्ठिभ्यो नमः। ॐ ह्रीं अर्हत्परमेष्ठिने नमः। ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिने नमः। ॐ ह्रीं आचार्य परमेष्ठिने

नमः। ॐ ह्रीं उपाध्यायपरमेष्ठिने नमः। ॐ ह्रीं साधुपरमेष्ठिने नमः। ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनाय नमः। ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानाय नमः। ॐ ह्रीं सम्यग्चरित्राय नमः। ॐ ह्रीं जिनधर्मेभ्यो नमः। ॐ ह्रीं जिनागमेभ्यो नमः। ॐ ह्रीं जिनचैत्येभ्यो नमः। ॐ ह्रीं जिनचैत्यालयेभ्यो नमः। ॐ ह्रीं अस्मद्गुरुभ्यो नमः। ॐ ह्रीं अस्मद् विद्यागुरुभ्यो नमः। ॐ ह्रीं तपेभ्यो: नमः।

शांति मंत्र

ॐ नमो अर्हते भगवते प्रक्षीणदोषाय, दिव्यतेजोमूर्तये शान्तिकराय, सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगमृत्यु विनाशनाय, श्री शान्तिनाथाय नमः।।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा सर्व शान्तिं कुरु-कुरु स्वाहा।

यदि किसी मंत्र की जाप बैठाई हो तो उस मंत्र की एक माला का हवन (दशवां अंश आहुति देना चाहिए।)

इति हवन विधि सम्पूर्णम्